: 302, 'Krishna-Kunj', Plot No.30, Navyug CHS Ltd., V. L Mehta Marg, Vile Parle(w), Mumbai–400056
Phone No. : (022) 2613 0820. **Website**: www.vitragvani.com **Email**: vitragva@vsnl.com

"Varangchariu" has been published by us & the PDF version of the same has been put on our website www.vitragvani.com

We have taken due care, while preparing the same. However, if you find any typographical error, you may kindly inform us on info@Vitragvani.com

By "Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust"
(Shri Shantilal Ratilal Shah-Parivar, Mumbai)

पंडिय तेयपाल विरइउ

वरंगचरिउ

(अद्यावधि अप्रकाशित दुर्लभ पाण्डुलिपि का सर्वप्रथम सम्पादन, हिन्दी अनुवाद एवं अध्ययन)

सम्पादक एवं अनुवादक

डॉ. सुमत कुमार जैन

प्राकृत–अध्ययन–शोध–केन्द्र, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान
(मानित विश्वविद्यालय) जयपुर परिसर, जयपुर

प्रकाशक

श्री कुन्दकुन्द–कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्ण कुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी. एच. एस. लिमिटेड, वी. एल. मेहता मार्ग,
विले पार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400056, फोन - 022 26130820

प्रथम आवृत्ति : 1000

लागत मूल्य : 65/-

मूल्य : 20/- रुपये

ISBN NO : 978-93-81057-12-4

प्राप्ति स्थान

1. **श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट**
   302, कृष्ण कुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी. एच. एस. लिमिटेड
   वी.एल. मेहता मार्ग, विले पार्ले (वेस्ट)
   मुम्बई-400056, फोन (022) 26130820, 26104912
   Website : www.vitragvani.com, E-mail : info@vitragvani.com
2. **श्री कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन विद्यार्थी गृह**
   राजकोट रोड, पेट्रोल पंप के सामने,
   सोनगढ़, जिला-भावनगर-364250 (गुजरात), फोन (02846) 244334
3. **श्री आदिनाथ कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट (मंगलायतन)**
   अलीगढ़-आगरा रोड, सासनी-202001 (उत्तर प्रदेश)
4. **पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट**
   ए-4, बापू नगर, जयपुर-302015 (राजस्थान), फोन (0141) 2707458
5. **पूज्य श्री कानजी स्वामी स्मारक ट्रस्ट**
   कहान नगर, लाम रोड, देवलाली-422401, फोन (0253) 2491044

लेजर टाइप सेटिंग :
प्रीति कम्प्यूटर्स, जयपुर

मुद्रक :
प्री एलविल सन
डी. 136 सावित्री पथ, बापू नगर,
जयपुर-302015, 095092 32733

प्रकाशकीय

वीतरागी जिनशासन की महान परम्परा में दिगम्बर जैन आचार्यों एवं जिनवाणी के आराधक विद्वानों के द्वारा किया गया लेखन कार्य सम्पूर्ण जगत को संजीवनी प्रदान करता है। इस कलिकाल में भव्यजीवों को सुख का मार्ग बताने के लिए जिनवाणी ही श्रेष्ठ विकल्प है। जिनवाणी के रहस्यों को समझकर उन्हें आत्मसात् करना ही सुखी होने का एक मात्र उपाय है।

पंद्रहवीं शताब्दी के विद्वान कवि पंडित तेजपाल द्वारा रचित 'वरंगचरिउ' नामक इस ग्रंथ को प्रकाशित करते हुए हमें हार्दिक प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। प्रथमानुयोग की मुख्यता वाले इस ग्रंथ में भगवान नेमिनाथ के काल में हुए कुमार वरांग का जीवन वृत्त वर्णित है।

आध्यात्मिक सत्पुरुष पूज्य गुरुदेव श्री कानजी स्वामी के पुण्य प्रभावना योग में स्थापित श्री कुन्दकुन्द–कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई वीतरागी जिनेन्द्र वाणी को जन–जन तक पहुँचाने हेतु संकल्पित है।

ट्रस्ट की विभिन्न योजनाओं में अप्रकाशित ग्रंथों के प्रकाशन के साथ–साथ श्रेष्ठ शोधकार्यों के प्रकाशन में सहयोग करना भी शामिल है। वरंगचरिउ ग्रंथ अद्यतन हस्तलिखित पाण्डुलिपि के रूप में उपलब्ध था। इस पर डॉ. सुमत कुमार जैन ने जैन विश्वभारती विश्वविद्यालय, लाडनूँ से शोधकार्य करते हुए डॉक्ट्रेट की उपाधि प्राप्त की। उन्होंने इसके सम्पादन एवं अनुवाद में जो महत्त्वपूर्ण श्रम किया है, उसके लिए ट्रस्ट उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता है।

ग्रंथ की कंपोजिंग एवं सुंदर मुद्रण व्यवस्था में श्री संजय शास्त्री, जयपुर ने जो सहयोग दिया है, उसके लिए हम उनको हार्दिक धन्यवाद देते हैं।

आशा है, सुधी पाठकों को प्रथमानुयोग की इस कृति के स्वाध्याय से लाभ होगा तथा अपभ्रंश भाषा के शोध अध्येताओं के लिए यह कृति अत्यंत उपयोगी सिद्ध होगी।

शुभेच्छु

अनंतराय ए. सेठ

श्री कुन्दकुन्द–कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई

श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमर्थिक टस्ट्र, मुम्बई द्वारा संचालित गतिविधियाँ

1. सोनगढ़ में श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन विद्यार्थी गृह का संचालन।
2. आत्मार्थी बन्धुओं को शिक्षा एवं चिकित्सा हेतु सहायता प्रदान करना।
3. मुमुक्षु समाज में निर्मित होने वाले जिन मन्दिरों एवं स्वाध्याय भवनों के निर्माण हेतु सहायता प्रदान करना।
4. मुमुक्षु मण्डलों द्वारा संचालित जिन मन्दिरों के पुजारियों को स्वास्थ्य बीमा योजना की सुविधा उपलब्ध कराना।
5. विद्वानों में परस्पर तत्त्वचर्चा एवं वात्सल्य वृद्धि हेतु विद्वत् गोष्ठियों का आयोजन करना।
6. तीर्थ क्षेत्रों के जीर्णोद्धार हेतु आर्थिक सहयोग।
7. आध्यात्मिक सत्साहित्य का प्रकाशन।
8. आध्यात्मिक शिक्षण शिविरों एवं बाल शिविरों को आर्थिक सहयोग।

वीतराग वाणी

पूज्य गुरुदेव श्री कानजी स्वामी के समस्त ऑडियो-वीडियो प्रवचन साहित्य एवं फोटो एवं अन्य अनेक जानकारियों के लिए अवश्य देखें

वेबसाइट - www.vitragvani.com

संपर्क सूत्र - श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट मुम्बई

फोन (022) 26130820, 26104912

E-mail : info@vitragvani.com

प्राक्कथन

वरंगचरिउ के मूलनायक वरांग कुमार का जन्म जैन तीर्थंकर नेमिनाथ के समय भारत भूमि पर हुआ था। सर्वप्रथम सातवीं शताब्दी में जटासिंहनंदि ने उनके व्यक्तित्व पर आधारित महाकाव्य का प्रणयन संस्कृत भाषा में किया, जो संस्कृत वाड्मय की श्रीवृद्धि में जैनों के योगदान का एक स्तम्भ माना जा सकता है। अपभ्रंश के कवि पंडित तेजपाल ने शायद इसी के आधार से अपने इस काव्य में वरांग कुमार का चरित्र सारोक्ति न्याय से संक्षेप रुचि जनों के लिए लोकभाषा में किया है। उनके अनुसार वरांग कुमार अदम्य साहस और शौर्य के कीर्तिपुंज थे। उनका जीवन त्याग की मनोवृत्ति से संचालित रहा है। सबके अभ्युदय हेतु अपने हक का परित्याग करना उन्हें इष्ट रहा है। विषय भोगाभिलाषाओं की कुत्सित छाया से वे अप्रभावित रहकर सदैव त्याग धर्म की गरिमा से गौरवान्ति हुए हैं। उनका समूचा जीवन पुण्योदय एवं पापोदय की बाढ़ में बहता हुआ भी धर्मोन्मुख ही रहा है।

वे राजपुरुष ही नहीं, राजसूनु थे तथा अपनी प्रतिभा एवं शौर्य के कारण युवराज बने। युवराज बनना भले ही पुण्य योग से संभव हुआ हो, परंतु इससे ही उनके जीवन में संघर्षों से जूझने का सूत्रपात हुआ। परंपरा के अनुसार उनका अग्रज भ्राता सुषेण युवराज होने का अधिकारी था। वह एवं उसकी माता भी यही चाह रहे थे। मंत्री से मिलकर उन्होंने षड्यंत्र किया और उसमें वे सफल हुए। युवराज वरांग कुमार भयानक वनखंड में प्राणों की रक्षा करते हुए भटके। संघर्षों की विभीषिका ने उन्हें धर्म–मार्ग से विचलित नहीं किया, परंतु वे दर–ब–दर अर्थात् राज्यच्युत तो हो ही गये, पिता राजा धर्मसेन द्वारा उनकी खोज कराई गई और उन्हें न पाने पर मृत मान लिया गया।

वन में वनदेवी (यक्षिणी) उनके सौंदर्य पर मुग्ध होने के कारण या वरांग कुमार के सच्चरित्र होने की परीक्षा लेने के कारण अपना विवाह वरांग कुमार से करने का प्रस्ताव रख देती है, जिसे वरांग कुमार अस्वीकार कर अपने स्वदार–संतोष व्रत को या परस्त्रीविरमण भावना को ही पुष्ट करते हैं, जिससे यक्षिणी प्रभावित होती है और उनकी सहायता करने का आश्वासन देकर चली जाती है। वन में भ्रमण करते हुए वरांग कुमार को सबर जाति के भीलों ने बंदी बना लिया। नियत दिन उनकी बलि चढ़ाने के आयोजन स्थल पर भील सरदार के पुत्र को सर्प ने काट लिया, जिसका उपचार संभव न होने पर वरांग कुमार ने अपने मंत्र प्रयोग से उसे स्वस्थ कर दिया। प्रसन्न हो जाने से सरदार ने उनकी बलि रोक दी तथा यथेच्छ उपहार देने चाहे। वरांग कुमार ने कुछ भी नहीं लिया, आभार माना और आगे बढ़ गये और वणिक् सागरदत्त के सार्थ में चलने

लगे। सार्थ पर डाकुओं का हमला हुआ, जिसमें वणिक् की सेना परास्त होने लगी और पलायनोन्मुख हुई तो वरांग कुमार ने अपने कौशल से डाकुओं से युद्ध कर उन्हें परास्त किया। जिस कारण उनकी प्रतिष्ठा सार्थ में महत्त्वपूर्ण हुई। वणिपति उन्हें पुत्रवत् मानने लगा और वरांग कुमार उसके गृहनगर में आ गये, जहाँ उनका खूब स्वागत हुआ और सारी सुख सुविधायें उपलब्ध हुईं। राजा तक भी उनकी कीर्ति फैली तथा राज्य पर आक्रमण होने पर वरांग कुमार ने अपनी भूमिका का निर्वाह किया और यशस्वी हुए। अपने आश्रयदाता राज्य की रक्षा उन्होंने अपने युक्ति बल एवं युद्ध कौशल से की। जब राजा धर्मसेन, जो उनके पिता ही थे, के राज्य पर बकुलाधिपति ने आक्रमण किया, तब वरांग कुमार राजा देवसेन के कहने पर गये और शत्रु राजा को परास्त करने में सफल हुए। पिता यह जानकर अत्यंत हर्षित हुए कि वरांग कुमार जीवित हैं। वे उसे ससम्मान अपने साथ ले गये और राजा बनाना चाहा, किन्तु वरांग कुमार ने अपने भ्राता सुषेण को ही राजा बनाने की बात कही। वे किसी प्रलोभन में नहीं आये और न ही किसी प्रपंच में पड़ना उन्हें इष्ट हुआ। कुछ समय तक वे 'जल में ही जल से भिन्न कमल की तरह' रहे और संसार विरक्त होकर मुनि वरदत्तसूरि से दीक्षा लेकर मुनिचर्या में लीन हो गये। आयु समाप्त होने पर समाधिमरण से सर्वार्थसिद्धि विमान में पैदा हुए। सर्वार्थसिद्धि की आयु पूर्ण कर मनुष्य भव धारण कर मुक्त हो जायेंगे।

यह कथ्य वरांग कुमार की जीवन चर्या के उस उज्ज्वल पक्ष को उजागर करता है, जहाँ धर्म की प्रतिष्ठा है, धर्म ही सांसारिक प्रपंचों से जीव को उबारने में परम हितैषी है, सहयोगी है। उसके बिना कोई भी मुक्त नहीं हो सकता है – यह सिद्ध हो जाता है।

तेजपाल के वरंगचरिउ में धार्मिक परिवेश गौरवान्वित हुआ है। भाषा का प्रवाह, सौंदर्य सारल्य आदि तो प्रशंसनीय हैं ही, विषय–वस्तु का निर्वाह भी सार्थक–सटीक एवं सफल माना जा सकता है। यह काव्य धर्म की गरिमा से सामाजिक चेतना को सही दिशा देता है। सामाजिक मूल्यों की रक्षा कैसे करें – इसकी प्रेरणा पाठक यहाँ से पा सकेंगे – ऐसा मेरा विश्वास है।

पंद्रहवीं शताब्दी में पंडित तेजपाल द्वारा रचित वरंग चरिउ पांडुलिपि का उद्धार डॉ. सुमत कुमार जैन ने सम्यक् सम्पादन एवं अनुवाद के साथ किया है। उसके लिए वे साधुवाद के पात्र हैं। इस कार्य के निष्पादन से उन्हें पी–एच. डी. की उपाधि तो मिल ही गई है। उनकी लेखनी एवं प्रतिभा पांडुलिपि संपादन के क्षेत्र में वृद्धिंगत होती रहे – यह शुभकामना है।

– प्रोफेसर श्रीयांश कुमार सिंघई

अध्यक्ष, जैनदर्शन विभाग

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान (मानित विश्वविद्यालय) जयपुर परिसर, जयपुर

मन्तव्य

शोधकार्यों में पाठ-सम्पादन का कार्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, पर श्रमसाध्य है। पाण्डुलिपि सम्पादन मौलिक कार्य है। इस कार्य की प्रेरणा मुझे कई विद्वानों से प्राप्त हुई। प्राकृत एवं जैनागम विषय से एम.ए. उत्तीर्ण करने के बाद जब मुझे शोधकार्य करने का विकल्प मन में आया, तब अनेक विद्वानों से विषय-चयन के लिए मैंने सम्पर्क किया एवं उनसे पाण्डुलिपि सम्पादन के क्षेत्र में कार्य करने की प्रेरणा प्राप्त हुई। प्राकृत एवं जैनागम विभाग की ओर से भी इस तरह कार्य करने की प्रेरणा एवं उत्साह ने मुझे और अधिक मजबूत और दृढ़ कर दिया कि मैं पाण्डुलिपि के सम्पादन कार्य से जुडूँ और इसी प्रेरणा से प्रेरित होकर मैंने जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूँ के पाण्डुलिपि-केन्द्र सहित L.D. Institute of Indology, Ahmedabad, B.L. Institute of Indology, New Delhi, National Prakrit Studies & Research Institute, Shravanabelagola, पाटन ग्रंथभण्डार, ऐलक पन्नालाल शोध संस्थान, ब्यावर, हर्षकीर्ति शास्त्र भण्डार, अजमेर, पंचायती दिगम्बर जैन मन्दिर, करौली, सरस्वती भवन, नागौर, श्री महावीरजी ग्रन्थ भण्डार, श्रीमहावीरजी और अपभ्रंश-अकादमी, जयपुर आदि ग्रन्थ भण्डारों का भ्रमण किया। जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूँ के पुस्तकालय में जैसलमेर ग्रन्थ संग्रह-सूची, राजस्थान के जैन ग्रन्थभण्डार सूची, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर आदि अनेक ग्रंथ-सूचियों का अवलोकन किया। अनेक ग्रन्थ-सूचियों का अवलोकन करने के बाद जब मुझे ज्ञात हुआ कि 'वरंगचरिउ' पर अभी तक काम नहीं हुआ है, तब मैंने वरंगचरिउ का पाठ-सम्पादन के लिए चयन किया और जैन विश्वभारती संस्थान में प्राकृत एवं जैनागम विभाग में इस शोधकार्य से जुड़ा। इस तरह तीन वर्षों तक लगातार शोधकार्य करता रहा, जिससे यह कार्य अपनी अन्तिम परिणति को प्राप्त कर सका। सम्पादन को सकारात्मक बनाने के लिए भूमिका भी लिख दी गई है, जिससे पाठकों को यह ग्रंथ समझने में सरलता हो।

भूमिका का प्रारम्भ **'अपभ्रंश भाषा एवं साहित्य की परम्परा तथा वरंगचरिउ : एक परिचय'** से हुआ है, जिसमें भाषा-विकास की अविच्छिन्न धारा' पर प्रकाश डाला गया है, साथ ही भाषा परिवार का विभाजन, अपभ्रंश भाषा एवं उसका संक्षिप्त ऐतिहासिक परिचय, अपभ्रंश साहित्य के अन्तर्गत अपभ्रंश का काल विभाजन, अपभ्रंश भाषा के प्रकार, आधुनिक वर्गीकरण एवं अपभ्रंश भाषा का साहित्यिक वर्गीकरण का भी विवेचन किया गया है।

भूमिका के ही अंतर्गत 'वरंगचरिउ' एक परिचय में प्रति-परिचय, ग्रन्थ एवं ग्रन्थकार का परिचय, कथा का विकास एवं वरंगचरिउ की मूलकथा, वरंगचरिउ की परम्परा, तेजपाल के

समकालीन रचनाकार, वरंगचरिउ की भाषा, छन्द, अलंकार एवं रस, चारित्रिक विकास, प्रकृति चित्रण एवं धार्मिक विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

मूलपाठ पाठ-भेद सहित तैयार किया गया है, जिसमें तुलनात्मक प्रणाली एवं स्वेच्छया पाठ-निर्धारण प्रणाली को ग्रहण किया गया है। विषय वस्तु को सुगमता से समझने के लिए साथ ही वरंगचरिउ का हिन्दी अनुवाद किया गया है, जिसमें प्रत्येक कडवक का शीर्षक देकर विषय को स्पष्ट किया गया है।

अंत में परिशिष्ट के अन्तर्गत विशिष्ट धार्मिक शब्दावली एवं नामानुक्रमणिका को प्रस्तुत किया है, जिससे विद्वान् एवं अनुसंधानकर्त्ता को शब्द देखने में सुविधा हो और वह आसानी से उसे देख सकें। उन शब्दों के अन्तर्गत धार्मिक शब्दावली, आभूषणों के नाम, जानवरों के नाम, शरीर के अंगों के नाम, फलों के नाम, वाद्ययंत्र, उपकरण विशेष, अस्त्रों के नाम, जाति विशेष नाम, पात्रों के नाम, नगर एवं क्षेत्रों के नाम, षट्ऋतु नाम एवं राज्य अंग के नाम अलग–अलग सम्बन्धित शीर्षकों में दिये हैं।

सबसे अंत में भूमिका और पाठ-सम्पादन में सहायक ग्रन्थों की सन्दर्भ ग्रंथ-सूची दी है, जिसे अकारादि क्रम से लिया है एवं इसमें मूल ग्रंथ, आलोचनात्मक ग्रन्थ, कोष ग्रन्थ, ग्रन्थभण्डारों की ग्रन्थ-सूची एवं पत्र-पत्रिकाओं को अलग–अलग अंकित किया गया है।

इस संपादन के प्रेरणा प्रदाता, जैनदर्शन एवं प्राकृत भाषा के तलस्पर्शी विद्वान डॉ. जिनेन्द्र जैन, सह-आचार्य, प्राकृत एवं जैनागम विभाग जिन्होंने मुझे इस महत्त्वपूर्ण कार्य को करने का आत्म-विश्वास, उत्साह प्रदान किया है, मैं आपके प्रति हृदय से अत्यन्त आभार प्रकट करता हूँ।

वरंगचरिउ ग्रंथ के सम्पादन एवं अध्ययन की गुणवत्ता को देखकर प्रबंधकारिणी कमेटी, श्री क्षेत्र महावीरजी एवं अपभ्रंश साहित्य अकादमी, जयपुर ने **स्वयंभू पुरस्कार – 2009** से मुझे सम्मानित किया है, अतएव मैं प्रबंधकारिणी कमेटी एवं अपभ्रंश साहित्य अकादमी का आभारी हूँ।

प्रो. फूलचन्द्र प्रेमी, प्रो. सुदीपजी प्रो. श्रीयांस सिंघई, प्रो. जगतराम भट्टाचार्य, गुरुणाम् गुरु प्रो. सत्यरंजन बनर्जी, प्रो. कमलचन्द सोगानी, प्रो. राजारामजी एवं प्रो. प्रेमसुमन जैन से मिले निरन्तर शोधकार्य करते रहने की प्रेरणा तथा विषय एवं भाषागत सुझावों ने इस रचना को सुगम एवं गौरवमय बनाया है, अतः आप सभी का हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ।

– डॉ. सुमत कुमार जैन

प्राच्यविद्यानुराग्यांशनम्

अपभ्रंश भाषा में विरचित पंडित तेजपाल कृत वरंगचरिउ ग्रंथ का विहंगावलोकन किया। अपभ्रंश काव्य परंपरा में इस चरित काव्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है। काव्यत्व के सभी गुण प्रकृत ग्रंथ में संप्राप्य हैं। अपभ्रंश भाषा साहित्य में चरित काव्य परंपरा को समुन्नत करने में वरंगचरिउ का अप्रतिम योगदान है। अपभ्रंश भाषा में लिखित वरंगचरिउ को प्रथम बार विद्वान लेखक डॉ. सुमत जैन ने विधिवत् संपादित करके हिंदी अनुवाद भी प्रस्तुत किया है। यह ग्रंथ अपभ्रंश भाषा प्रेमियों के लिए अत्युपयोगी सिद्ध होगा, अनुवाद होने से हिंदी भाषी भी इस ग्रंथ से लाभान्वित होंगे। साथ–साथ धार्मिक आस्थावान श्रावक–श्राविकायें एवं मुमुक्षु वर्ग प्रथमानुयोग के ग्रंथ के रूप में वरंगचरिउ का स्वाध्याय कर तत्त्वज्ञान में अभिवृद्धि कर शुद्ध आत्मतत्त्व की ओर अग्रसर होंगे।

डॉ. जैन का यह श्लाघनीय कार्य प्राच्य विद्या जगत में प्रेरणादायी है। पांडुलिपि का संपादन एवं अनुवाद श्रम एवं समयसाध्य होता है। ज्ञानी होने पर भी हर कोई इस कार्य को करने में भयाक्रान्त रहता है, किंतु आपने धैर्यपूर्वक यह कार्य करके श्रुतसेवा का स्तुत्य कार्य किया है।

– डॉ. धर्मेन्द्रकुमार जैन

प्राकृत–विकास अधिकारी, प्राकृत–अध्ययन–शोध–केन्द्र,
राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, जयपुर

शुभानुशंसनम्

डॉ. सुमतकुमार जैन द्वारा संपादित वरंगचरिउ की टंकित प्रति का आद्योपांत अध्ययन किया। इसके संपादन का कार्य प्रशंसनीय है। संपादन में जिस पाठ को इन्होंने ग्रहण किया है, वह मेरी दृष्टि में उचित है। मूल पाठ का हिंदी अनुवाद कर सोने में सुहागा डालने का कार्य किया है। हिंदी अनुवाद सरल और सुबोध है। अपभ्रंश भाषा से अनजान व्यक्ति भी वरंगचरिउ का रसास्वादन कर सकता है। इस ग्रंथ की भूमिका पूर्व पीठिका के रूप में सहायक बनती दृष्टिगोचर होती है। भूमिका को विस्तारित कर डॉ. जैन ने इसमें अन्य अत्यंत उपयोगी जानने योग्य विषयों की जानकारी उपलब्ध करवा दी है, इसके लिए भी वे धन्यवाद के पात्र हैं। यह रचना अपभ्रंश भाषा के जिज्ञासुओं के अतिरिक्त न केवल श्रावक–श्राविकाओं के लिए बहु उपयोगी है, बल्कि श्रमण–श्रमणियों के लिए भी। इसकी गुणवत्ता को दृष्टि में रखते हुए मेरी कामना है कि डॉ. जैन इसे प्रकाशित करवाने का प्रयत्न करें। इसकी प्रकाशित प्रति देखकर हमें बहुत प्रसन्नता होगी।

– डॉ. सुदर्शन मिश्र

पूर्व प्राचार्य, दीपन चौधरी महाविद्यालय, गाजीपुर, बिहार

www.vitragvani.com

विषयानुक्रमणिका

विषय वस्तु	पृष्ठ संख्या
प्रस्तावना	**1–84**
1. अपभ्रंश भाषा एवं साहित्य की परंपरा	1
(i) भाषा विकास की अविच्छिन्न धारा	
(ii) भाषा परिवार विभाजन	
(iii) अपभ्रंश भाषा एवं उसका संक्षिप्त इतिहास परिचय	
(iv) अपभ्रंश साहित्य	
(v) वरंगचरिउ का महत्त्व	
2. वरंगचरिउ : एक परिचय	28
(i) प्रति परिचय	
(ii) ग्रंथ एवं ग्रंथकार परिचय	
(iii) कथा विकास एवं वरंगचरिउ की मूलकथा	
(iv) वरंगचरिउ की परम्परा	
(v) समकालीन रचनाकार	
(vi) भाषा	
(vii) छंद, अलंकार एवं रसविवेचन	
(viii) चारित्रिक विकास	
(ix) प्रकृति चित्रण	
(x) धार्मिक विकास	
वरंगचरिउ मूलपाठ हिन्दी अनुवाद सहित	85
परिशिष्ट	212
क. विशिष्ट धार्मिक शब्दावली	212
ख. नामानुक्रमणिका	230
सन्दर्भ ग्रंथ-सूची	237

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

प्रस्तावना

1. अपभ्रंश भाषा और साहित्य की परम्परा

(i) भाषा विकास की अविच्छिन्न धारा

भाषा और विचार का अटूट सम्बन्ध है। मनुष्य के मस्तिष्क में जब विचार उठे होंगे, तभी भाषा भी आयी होगी। पाणिनि ने बताया है– आत्मा बुद्धि के द्वारा अर्थों को समझकर बोलने की इच्छा से मन को प्रेरित करती है। मन शरीर की अग्नि शक्ति पर जोर डालता है और वह शक्ति वायु को प्रेरित करती है, जिससे शब्द वाक् की उत्पत्ति होती है।[1]

वस्तुतः भाषा बहता जल प्रवाह है जिसकी शब्दावली निरन्तर परिवर्तित होती रहती है। व्यवहार के अनुसार भाषा परिवर्तन अथवा विकास की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। वैदिक संस्कृत, लौकिक संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश तथा आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ आदि के क्रम से हमारी वर्तमान भाषाओं का विकास हुआ। इनमें प्राकृत, अपभ्रंश और आधुनिक आर्य भाषाओं के विभिन्न क्षेत्रीय रूप प्राप्त होते हैं। लौकिक संस्कृत के साथ प्राकृत भाषाएँ–शौरसेनी, मागधी, अर्धमागधी, महाराष्ट्री, पैशाची एवं अपभ्रंश का विकास हुआ। अपभ्रंश के लौकिक रूपों से विभिन्न आधुनिक आर्य भाषाएँ विकसित हुईं।

परिवर्तनशीलता प्रकृति का नियम है और भाषा भी इस नियम का अपवाद नहीं है। जिस प्रकार पृथ्वी का ही नहीं, किन्तु चन्द्रमा पर के कंकर-पत्थर लाकर उनके विश्लेषण से वैज्ञानिक उनके निर्माण की प्राचीनता का पता लगाते हैं, उसी प्रकार भाषा वैज्ञानिकों ने कुछ ऐसे तत्त्व और नियम पकड़ लिये जिनके द्वारा वे किसी भाषा के गठन, उसकी प्राचीनता, अन्य भाषाओं से सम्बन्ध तथा विस्तार आदि का पता लगा लेते हैं।[2]

अभी तक यह ज्ञात नहीं हो सका है कि मनुष्य ने बोलना कब से प्रारंभ किया। किन्तु यह सिद्ध है कि भाषा के निर्माण में प्रकृति का योगदान केवल इतना ही है कि मनुष्य के कण्ठ व मुख के अन्य अवयवों की रचना ऐसी है कि उनके सहयोग से वह असंख्य प्रकार की ध्वनियां उत्पन्न कर सकता है। बस, इस प्रकार की शक्ति को प्राप्त करके मनुष्य ने नाना वस्तुओं के नामों

---

1. आत्मा बुद्ध्या समेत्यार्थान मनो युङ्क्ते विवक्षया।
   मनः कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम्।।
   पाणिनि शिक्षा, श्लोक–6, चौखम्बा प्रकाशन, संस्करण, 1948
2. जसहरचरिउ, संपादक हीरालाल जैन, प्रस्तावना, पृ. 29

www.vitragvani.com

के उच्चारण किये, विविध क्रियाओं व घटनाओं को अलग ध्वनियों द्वारा प्रकट किया और फिर अपने अंतरंग भावों व विचारों को कह सुनाने की विधि प्राप्त कर ली। इस प्रकार भाषा का निर्माण मनुष्य के अपने प्रयत्न द्वारा सिद्ध हुआ।

यह भाषा-निर्माण की प्रक्रिया भिन्न-भिन्न स्थानों पर विविध प्रकार से विकसित हुई। सैकड़ों नहीं, सहस्रों जन-समुदाय में जो बोलियां बोली जाती हैं, उनके मौलिक तत्त्वों का तुलनात्मक अध्ययन करके भाषा वैज्ञानिकों ने अनेक भाषा परिवारों का पता लगाया है, जैसे–भारोपीय भाषा परिवार, सामी, हामी, मंगोली, निपाद व द्रविड़ आदि।[1]

(ii) भाषा परिवार विभाजन

नेमिचन्द्र शास्त्री के अनुसार विद्वानों ने स्थूल रूप से संसार की भाषाओं को बारह परिवारों में बांटा है। यद्यपि विश्व में दो-ढ़ाई सौ परिवार की भाषाएँ विद्यमान हैं लेकिन प्राकृत भाषा के स्थान के निर्धारण के लिए बारह प्रकार के परिवार ही अपेक्षित हैं, जिनमें प्रथम भारोपीय भाषा परिवार है, जिसे 8 उपभाषा परिवारों में बांटा गया है। इन आठ उप परिवारों में भी प्राकृत का सम्बन्ध पांचवें उपभाषा परिवार–भारत ईरानी या आर्य भाषा परिवार से है, जिसके तीन शाखा परिवार हैं–1. ईरानी शाखा परिवार, 2. दरद शाखा परिवार, 3. भारतीय आर्य शाखा परिवार।[2]

भारोपीय परिवार अपने विस्तार, बोलने वालों की संख्या, संस्कृति, प्राचीनता व साहित्य आदि दृष्टियों से विशेष महत्त्वपूर्ण है।

भारत की आर्यभाषा का प्राचीनतम स्वरूप वेदों में प्राप्त होता है और उसे वेदानुयायियों द्वारा दिव्य अनादि प्रवृत्त व अपौरुषेय माना गया है, किन्तु भाषा शास्त्रियों ने अब यह सिद्ध किया है कि वैदिक भाषा का वह रूप तीन–चार सहस्र वर्षों से अधिक प्राचीन नहीं है। उससे पुराने शब्द रूप उस काल के मिलते हैं, जब भारतीय और ईरानी जन–समाज पृथक् नहीं हुए थे और वह सम्मिलित समुदाय एक-सी बोली बोलता था। यह बात वैदिक और प्राचीन ईरानी अर्थात् पहलवी तथा परसियों के प्राचीन धर्म ग्रन्थ अवेस्ता की भाषाओं के मिलान से स्पष्ट हो जाता है।

यही नहीं, पश्चिम एशिया के भिन्न-भिन्न भागों से कुछ ऐसे लेख भी मिलते हैं, जिनसे पता चलता है कि उस काल में अपने आज के अनेक सुप्रचलित नामों व शब्दों का हिन्द–ईरानी समाज कैसा उच्चारण करता था। जिन देवों को हम सूर्य, इन्द्र और वरुण कहते हैं, उन्हें आज से चार हजार वर्ष पूर्व के आर्य लोग 'सुरिअस्', इन्तर और 'उरुवन' कहते थे। हमारे आज के एक, तीन, पांच और सात उस काल के क्रमशः अइक, तेर, पंद्ज और सत हैं। इन शब्दों में हमें संस्कृत से भिन्न प्राकृत भाषा की प्रवृत्तियां स्पष्ट दिखाई देती हैं।[3]

''डॉ. हीरालाल जैन के अनुसार भारोपीय भाषा की इस हिन्द-ईरानी शाखा के प्रायः साथ ही या कुछ आगे-पीछे हित्ती और तुखारी नाम की शाखाएँ पृथक् हुई व तत्पश्चात् ग्रीक आदि

1. जसहरचरिउ, संपादक हीरालाल जैन, प्रस्तावना, पृ. 29 2. प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ. 2
3. जसहरचरिउ, प्रस्तावना, पृ. 30

www.vitragvani.com

यूरोपीय शाखाएँ। इन शाखाओं का हिन्द-ईरानी शाखा से मुख्य भेद यह है कि आदिम भारोपीय भाषा में 'क' वर्ग की जो कण्ठ्य, कण्ठतालव्य और कण्ठोष्ठ्य – ये तीन श्रेणियां थी, उनमें से कण्ठ-तालव्य श्रेणी का हिन्द-ईरानी व उसी के समान स्लावी, रूसी आदि में ऊष्मीकरण हो गया है अर्थात् क्य, ग्य आदि का उच्चारण स् होने लगा और इस प्रकार वे 'केन्तुम्' और 'सतम्' वर्गों में विभाजित हो गयी। उदाहरणार्थ, जिस भारोपीय मूल भाषा का स्वरूप उसकी उक्त शाखाओं के तुलनात्मक अध्ययन से निश्चित किया गया है, उसमें 'सौ' के लिए शब्द था ''क्यंतोम्'', जिसका रूपान्तरण 'केन्तुम्' वर्ग की लैटिन शाखा में केन्तुम्, ग्रीक में हेक्तोन् तथा तोखारी में कंतु हुआ। परन्तु 'सतम्' वर्गीय रूसी में स्तौ, स्लाव में सूतो, अवेस्ता में सवअम् तथा वैदिक में शतम् हो गया। इस क और स की परस्पर मूल एकत्व के मर्म को समझे जाने पर अंग्रेजी के 'कामन' और 'कमेटी' तथा हिन्दी के समाज एवं समिति जैसे शब्दों के रूप और अर्थ में कोई भेद एवं उनके पैतृक एकत्व में सन्देह नहीं रहता। भारोपीय 'क्व' यूरोपीय भाषाओं में 'Q' वर्ण के रूप में अवतरित हुआ, किन्तु किन्हीं स्थितियों में वह अंग्रेजी में 'व्ह' (Whe) के रूप में पाया जाता है। जैसे who, what, where आदि। वह भारतीय आर्यभाषा में कहीं क ही रहा, जैसे कः, किम्, क्व, आदि और कहीं च में परिवर्तित हुआ, जैसे Quarterim चत्वादि, Quit च्युत, Quiet शांत। यदि हम इन और ऐसे ही अन्य अनेक वर्ण परावर्तन व उच्चारण भेद के नियमों को समझ लें तो यूरोपीय और भारतीय आर्यभाषाओं में चमत्कारिक समानत्व व एकत्व दिखाई देने लगता है। तब तरु और tree (ट्री), फुल्ल और फ्लावर, शैल और हिल, शाला और हॉल आदि में तो कोई भेद रहता ही नहीं, किन्तु आई और अहं, दाउ और त्वं, ही, शी और इट् एवं सः, सा व इदं, दैट व दिस तथा तत् और एतद् की विषमता भी दूर होती है। Ram's mother और रामस्य माता में तो कोई भेद है ही नहीं।''[1]

जब हिन्द–ईरानी शाखा दो में विभाजित होकर अपना अलग–अलग विकास करने लगी तब वैदिक और अवैदिक भाषाओं में भी अन्तर पड़ गया। इस अन्तर में प्रधानता है ईरानी में स का ह उच्चारण, जैसे असुर–अहुर, सप्त–हप्त, सिन्धु–हिन्दु आदि। और दूसरे उसकी वर्ग विरलता की प्रकृति जिससे उसके शब्दों व पदों में संयुक्त वर्णों का एवं संधि का अभाव पाया जाता है। यह विशेषता प्राकृत से मेल खाती है।[2]

वैदिक में वर्ण–संगठन, संधि, संयुक्त व्यंजन प्रयोग तथा विभक्ति बाहुल्य का उदय हुआ। क वर्ग की तीन श्रेणियां टूटकर एक ही रह गयीं तथा चवर्ग और टवर्ग का समावेश नया हुआ। ऊष्मीकरण के विस्तार से श और ष वर्ण भी नये आ गये। इस प्रकार वैदिक भाषा का भारोपीय भाषा परिवार में अपना एक विशिष्ट स्थान है। वाणी और अर्थ का तादात्म्य है। नेत्रोन्मीलन काल से ही किसी-न-किसी रूप में वाणी की सत्ता रहती है। अभिव्यंजना का माध्यम वाणी है और यही कारण है कि साहित्य में शब्द और अर्थ का समन्वित साहचर्य रहता है।[3]

1. डॉ. हीरालाल जैन, जसहरचरिउ, प्रस्तावना, पृ. 30, 2. वही, प्रस्तावना, पृ. 30

3. (क) सहितयोः शब्दार्थयोः भावः साहित्यम्–संस्कृत आलोचना (लखनऊ, 1957), पृ. 54

(ख) शब्दार्थयोर्यथावत् सहभावेन विद्यासाहित्यविद्या, काव्यमीमांसा, अध्याय–2, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, प्रथम संस्करण, पृ. 12

www.vitragvani.com

भारतीय वाङ्मय का उषाकाल, वैदिक काल में उन ऋषियों की वाणी से प्रारम्भ होता है, जिन्होंने उषा सुन्दरी के लावण्य को परखा और सराहा था। प्रकृति की कोमल और रौद्र दोनों ही तरह की शक्तियों ने कौतूहल और आश्चर्य से जन-मन को भर दिया था। अतः उषाकाल के ऋषियों ने आशा-निराशा, हर्ष-विषाद एवं सुख-दुःख संबंधी उद्गारों को अलंकृत वाणी के वेष्टन में आवेष्टित कर प्रकट किया और इस प्रकार भारतीय साहित्य की प्रथम रेखा अंकित हुई। इस साहित्य की भाषा छान्दस थी। पर इतना सत्य है कि ऋग्वेद और अथर्ववेद इन दोनों की छान्दस भाषा में पर्याप्त अन्तर है। कुछ विद्वानों का अभिमत है कि ऋग्वेद की भाषा ब्राह्मणों की संस्कृत में ढाली हुई एक सुनिश्चित परम्परा सम्मत है, किन्तु अथर्ववेद की भाषा जनभाषा है।[1] अतएव स्पष्ट है कि आर्यभाषा और आर्य साहित्य पर द्रविड़ और मुण्डा वर्ग की भाषा और साहित्य का प्रभाव पर्याप्त रूप में पड़ा है। अथर्ववेद इसी प्रभाव को स्पष्ट रूप में अभिव्यक्त कर रहा है।[2]

प्रत्येक देश और जाति के मूल संस्कार, उसकी अपनी भाषा, साहित्य तथा संस्कृति में निहित रहते हैं। जातीय जीवन, लोक परम्परा एवं सामाजिक नीति-रीतियों के अध्ययन से हमें उनकी पूरी जानकारी मिलती है। अतएव भाषा और साहित्य का प्रत्येक अंग लोक-मानस की अभिव्यक्ति का ही लिपिबद्ध स्वर होता है। मौखिक रूप में आज भी हमें गुणाढ्य की बृहत्कथा तथा प्राकृत और अपभ्रंश में लिखित कथाएँ, सूक्तियां, सुभाषित एवं अन्य उक्तियां ही गांवों में प्रचलित सुनाई देती हैं। वस्तुतः युग-युगों से साहित्यिक तथा सामाजिक परम्परा परस्पर विचारों का विनिमय करती आयी है। इसीलिए परम्परा में केवल इतिहास तथा पौराणिकता का लेखा-जोखा न होकर लोकजीवन में परिव्याप्त यथार्थ और आदर्श रूप-कुरूप, नीति और उपदेश तथा वृत्ति एवं रीति का भी समाहार हो जाता है।[3]

भारतीय भाषा का बिखराव वैदिक काल में ही प्रारम्भ हो गया था। ऋग्वेद के वाक्सूक्त तथा अथर्ववेद के पृथ्वीसूक्त में स्पष्ट कहा गया है कि लोग देश के नाना क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न प्रकार की बोलियां बोलते हैं। अशोक के शिलालेखों से भी प्रमाणित होता है कि एक ही प्राकृत भाषा उत्तर-पश्चिम और पूर्व के प्रदेशों में भिन्न-भिन्न प्रकार से बोली समझी जाती थी।[4] साहित्य के प्रमाणानुसार प्राकृत भाषा को विशेष प्रोत्साहन तब मिला, जब ई.पू. छठी सदी में महावीर और बुद्ध जैसे महापुरुषों के अवतार हुए और उन्होंने अपने-अपने धर्म सम्बन्धी उपदेशों के लिए उस समय अपनी विहारभूमि में प्रचलित जनभाषा को अपनाया और अपने शिष्यों को भी आदेश दिया कि वे उसी भाषा में उनके उपदेशों की ग्रन्थ रचना करें। यह भाषा मगध देश की होने से 'मागधी' तथा

1. प्राकृत भाषा—प्रबोध पण्डित, बनारस, सन् 1954, पृ0 13—14, 2. भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी—सुनीति कुमार चटर्जी, प्रथम संस्करण, पृ. 63, 3. भविसयत्तकहा तथा अपभ्रंश कथाकाव्य, देवेन्द्र कुमार शास्त्री, अ. 1, पृ. 15, 4. णायकुमारचरिउ, कविपुष्पदंत, हीरालाल जैन, प्रस्तावना, पृ. 22, 23

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

उसकी सीमा से लगे हुए शूरसेनादि प्रदेशों के सीमावर्ती क्षेत्रों में प्रचलित बोलियों से भी प्रभावित होने के कारण अर्द्धमागधी कहलायी। दुर्भाग्यतः जिस रूप में उक्त उपदेशों की जो प्रथम ग्रन्थ रचना हुई होगी, वह रूप हमें अब उपलब्ध नहीं है। बुद्ध के उपदेशों पर आधारित पालि-साहित्य का वर्तमान स्वरूप उसे बुद्ध से सदियों पश्चात् लंका में प्राप्त हुआ था। महावीर के उपदेशों पर आधारित 'द्वादशांग' आगम आज जिस रूप में उपलब्ध है, वह रूप ई. पांचवीं सदी में हुई वल्लभीपुर वाचना का है।

प्राकृत भाषा का जो स्वरूप प्राप्त होता है, वह प्राकृत का आदिम काल तथा हिन्द आर्य भाषा का द्वितीय या मध्यम स्तर माना जाता है। यह मध्यम स्तर अपने आदि रूप में यद्यपि व्याकरण की दृष्टि से संस्कृत भाषा की अपेक्षा बहुत भिन्न और सुगम है, तथापि उसमें संस्कृत की ध्वनियां बहुत कुछ समान पायी जाती हैं। यह स्तर हमें ई. की द्वितीय-तृतीय सदी तक रचे गये ग्रंथों, जैसे–पालित्रिपिटक, अश्वघोष के नाटक तथा राजा अशोक, खारवेल, आंध्रनरेशों के शिलालेखों में प्राप्त होता है।[1]

जब मध्ययुगीन भाषा का द्वितीय स्तर प्रारम्भ हुआ, तब इसकी क्रान्तिकालीन परिस्थिति महाकवि भास के नाटकों में देखी जा सकती है। इसका विशेष लक्षण यह है कि शब्दों के क, ग, त, द आदि अल्पप्राण वर्णों का लोप होकर उनके स्थान में मात्र अ, इ आदि स्वर शुद्ध अथवा उच्चारण सौकर्य हेतु य से मिश्रित पाये जाते हैं तथा ख, घ, थ, ध आदि महाप्राणों के स्थान में 'ह' का आदेश कर दिया जाता है। इस प्रवृत्ति से प्रभावित वह समस्त प्राकृत साहित्य है जो विशेष रूप से तीसरी-चौथी सदी से लेकर छठी-सातवीं सदी तक रचा गया। यह मध्य व्यंजनों के लोप की प्रक्रिया महाराष्ट्री प्राकृत का विशेष लक्षण है और उसकी प्रतिनिधि रचनाएँ कालिदासकृत नाटकों के प्राकृत अंश, सेतुबंध, गाथासप्तशती, गउडवहो आदि हैं।[2]

हिन्द आर्य भाषा के मध्यकाल के तृतीय स्तर की प्रतिनिधित्व करने वाली अपभ्रंश भाषा और उसका साहित्य है।

(iii) अपभ्रंश भाषा एवं उसका संक्षिप्त ऐतिहासिक परिचय

भारत विभिन्न भाषाओं का देश है। यहां अति प्राचीन काल से ही सांस्कृतिक–अभिव्यक्ति के लिए लोक-भाषा में साहित्य लिखा जाता रहा है। अपभ्रंश अपने समय की विशिष्ट लोकभाषा के रूप में अर्थात् अपभ्रंश भाषा हिन्द आर्यभाषा के मध्यकाल के तृतीय स्तर में एक अत्यन्त सक्षम

1. णायकुमारचरिउ, पुष्पदंत, हीरालाल जैन, प्रस्तावना, पृ. 23, 2. णायकुमारचरिउ, प्रस्तावना, पृ. 23

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

भाषा रही है, जिसके माध्यम से उस युग में अनेक विषयों पर अमूल्य साहित्य का निर्माण हुआ। भाषा नदी के प्रवाह की तरह होती है। वह परिवर्तनशील है, यद्यपि परिवर्तन की गति प्रतिक्षण होते हुए भी साधारणतः इतनी मंद और धीमी होती है कि वह शीघ्र देखने में नहीं आ सकती। करीब 2600 वर्ष पहले जब पुरोहितों/पंडितों ने संस्कृत माध्यम से धर्म और दर्शन के स्वरूप पर अपना अधिकार जमा लिया और सामान्य जन उससे अलग होता गया, तब संस्कृत भाषा जन-साधारण की भाषा न रहकर केवल शिष्टजनों की भाषा बन गयी। शिष्टजन जो कुछ बोलते थे, उसे जन-साधारण समझ नहीं पाता था, बल्कि उसे मौन रहकर सुन लेता था। महावीर एवं महात्मा बुद्ध ने इस स्थिति का आकलन किया और इसीलिए उन्होंने अपने उपदेशों का माध्यम जन-साधारण की भाषा प्राकृत एवं पालि (जनबोली) को बनाया, जिससे जन-साधारण उपदेश को भलीभांति ग्रहण कर सकें। जैन साधु और गृहस्थ–दोनों ने महावीर की इस नीति को चालू रखा। उन्होंने समय के साथ जनभाषा में आये परिवर्तनों के अनुसार अपने विचारों के प्रकटीकरण में भी परिवर्तन किया। उन्होंने किसी विशेष भाषा को स्वामित्व प्रदान नहीं किया, बल्कि उन्होंने श्रोता के स्तर और उसकी भाषा के माध्यम से ही अपने उपदेशों/आदर्शों का प्रचार-प्रसार जारी रखा। यही कारण है कि विभिन्न कालों में प्रचलित जन-भाषाओं में लिखित जितना साहित्य आज प्राप्त है, उनमें से अधिकांश का निर्माण जैनों द्वारा हुआ है। इसी क्रम में अपभ्रंश भाषा 6वीं ई. से 17वीं ई. तक अपने चरमोत्कर्ष पर रही है अर्थात् जब 'प्राकृत' साहित्य की भाषा बन गई तब जन- साधारण की भाषा के रूप में उसका उत्तरदायित्व अपभ्रंश ने निभाया।

अपभ्रंश संस्कृत भाषा का तत्सम शब्द है, जिसका अर्थ भ्रष्ट, च्युत, स्खलित, विकृत अथवा अशुद्ध है। प्राचीन संस्कृत ग्रंथों में अपभ्रंश और अपभ्रष्ट नाम मिलते हैं। प्राकृत अपभ्रंश कोशों में इसकी अर्थ सीमा का विस्तार लगभग समान रूप में मिलता है। अपभ्रंश शब्द की अनेक कोषग्रंथों में व्याख्या प्राप्त होती है, जो इसप्रकार है–

1. शब्द कल्पद्रुम–अपभ्रंशः–अप + भ्रंश + घञ् : ग्राम्य भाषा। अपभाषा तत्पर्यायः अपशब्द इत्यमरः। पतनम्। अधः पतनम्। ध्वंसः। अधोगतिः।

2. शब्दार्थ चिन्तामणि के अनुसार–अपभ्रंश–पु. : अपशब्दे। अशास्त्रशब्दे असंस्कृत शब्दे ग्राम्यभाषायाम्। संस्कृतादपभ्रंश्यति। भ्रंशुः अधः पतने।

3. वैजयन्ति कोश[1]–अपभ्रंशोऽपशब्दे स्यात् भाषाभेदप्रपातयोः। अपदेशस्तु लक्षे स्यान्निमित्त ब्याजयोरपि।

4. अमरकोश–अपभ्रंशोऽपशब्दः स्यात्।

1. (क) वैजयन्ति कोश, पृ. 265 (ख) अपभ्रंश भाषा और व्याकरण, अध्याय–1, पृ. 3

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

5. वाचस्पत्य, संस्कृताभिधान[1] में–अपभ्रंश–अप + भ्रंश् + घञ्, अपरक्षणे अधःपतने। अपभ्रंशति स्वभावात्प्रच्यवते। अप+भ्रंश–कर्तरि अच्। साधु शब्दस्य शक्ति वैकल्यप्रयुक्तान्यथोच्चारण युक्ते। अपशब्दे त एव शक्तिवैफल्य प्रमादालसतादिभिः अन्यथोच्चरिताः शब्दा अपशब्दा इतीरिताः। अपशब्द अपवैपरीत्यते।

6. 'संस्कृत हिन्दी कोश'[2] (वामन शिवराम आप्टे)– (अप + भ्रंश् + घञ्)

1. नीचे गिरना, पतन–अत्यारूढिर्भवति महतामप्यपभ्रंशनिष्ठा–शकु. 4 अंक

2. भ्रष्ट शब्दः भ्रष्टाचार अतः अशुद्ध शब्द चाहे वह व्याकरण के नियमों के विपरीत हो और चाहे वह ऐसे अर्थ में प्रयुक्त हुआ हो जो संस्कृत न हो।

3. भ्रष्टभाषा (काव्य में) गड़रियों आदि द्वारा प्रयुक्त प्राकृत बोली का निम्नतम रूप (शास्त्र में) संस्कृत से भिन्न कोई भी भाषा–आभीरादिगिरः काव्यष्वपभ्रंश इति स्मृता, शास्त्रेक संस्कृतादन्यपभ्रंशतयोदितम्–काव्यादर्श।

विश्वप्रकाश[3] (कोश)–अपभ्रंशोऽपशब्दे स्याद्भाषाभेदावपातयोः।

मेदिनी[4] (कोश)–अपभ्रंशस्तु पतने भाषाभेदापशब्दयोः।

अनेकार्थसंग्रहः[5]–अपभ्रंशो भाषाभेदापशब्दयोः।

विश्वलोचन[6]–अपभ्रंशो दुष्पतने भाषाभेदापशब्दयोः।

शब्दरतन समन्वय कोश–अपभ्रंशोऽपशब्दे स्याद्भाषाभेदावपातयोः।

हिन्दी विश्वकोश में–अपभ्रंश (सं.पु.) अपभ्रंश–घञ्।

1. गिराव, गलाव, 2. भाषा विशेष, 3. बिगड़ा हुआ। हिन्दी शब्द सागर–अपभ्रंश–संज्ञा पु. (सं) नीचे गिरना, पतन, बिगाड़, शब्द का विकृत रूप, प्राकृत भाषाओं का परवर्ती रूप, जिससे उत्तरभारत की आधुनिक आर्य भाषाओं की उत्पत्ति की जाती है।

प्राचीन संस्कृत ग्रंथों में अपभ्रंश और अपभ्रष्ट दोनों नाम मिलते हैं। प्राकृत और अपभ्रंश की रचनाओं में अपभ्रंश के लिए अवहंस, अवब्भंस, अवहत्थ, अवहट, अवहट्ट, अवहठ, अवहट्ठ का प्रयोग किया गया है।

मैथिल कोकिल महाकवि विद्यापति ने अपभ्रंश को अवहट्ठ की संज्ञा दी–''देसिल वआना सब जन मिट्ठा। तें तेसन जंपओं अवहट्ठा।''

पउमचरिउ में महाकवि स्वयम्भू अत्यन्त गर्भीले, स्वाभिमान दीप्त, स्वर में अपनी देशी भाषा

1. वाचस्पत्य, संस्कृताभिधान, जिल्द–1, 2. वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत हिन्दी कोश, पृ. 57, 3. विश्वप्रकाश, 30.37, 4. मेदिनी 30.31, 5. अनेकार्थ संग्रह–4, पृ. 323, 6. विश्वलोचन, चतुर्थ, पृ. 38

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

अपभ्रंश को 'सामण्णाभासा' (सा.भा.) और गामिल्लभाषा (ग्राम्यभाषा) कहते हैं–

सामण्ण भास छुडु सावडउ। छुडु आगम-जुति का वि घडउ।
छुडु होन्तु सुहासिय-वयणाइं। गामिल्लभास परिहरणाइं।।1.3.10-11।।

उक्त सभी अपभ्रंश मूलक शब्दों के अर्थ समान हैं और भाषा के लिए 'अपभ्रंश' संज्ञा सर्वस्वीकृत है। तिरस्कार सूचक यह नाम संस्कृत के आचार्यों ने इस भाषा को दिया है। संस्कृत शब्द के 'साधु' रूपों के अतिरिक्त लोक तथा साहित्य में प्रचलित भिन्न शब्द रूपों को महाभाष्यकार पतंजलि ने 'अपशब्द' या अपभ्रंश संज्ञा दी और महर्षि प्रदत्त इस संज्ञा को बिना आपत्ति के सभी ने स्वीकार कर लिया। श्री रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार–प्राकृत से बिगड़कर जो रूप बोलचाल की भाषा ने ग्रहण किया वह भी आगे चलकर कुछ पुराना पड़ गया और काव्य रचना के लिए रूढ़ हो गया। अपभ्रंश नाम उसी समय से चला। जब तक भाषा बोलचाल में थी, तब तक वह भाषा या देशभाषा कहलाती रही। जब वह भी साहित्य की भाषा हो गयी, तब उसके लिए अपभ्रंश शब्द का व्यवहार होने लगा। इसी प्रकार का उल्लेख यहां भी प्राप्त होता है। वहां कहा है कि अपभ्रंश एक भ्रष्ट भाषा है। वस्तुतः अपभ्रंश वह भाषा है, जिसकी शब्दावली एवं वाक्यविन्यास संस्कृत शब्दानुशासन के नियमों और उपनियमों से अनुशासित नहीं है, जो शब्दावली देशी भाषाओं में प्रचलित है तथा संस्कृत के शब्दों के यथार्थ उच्चारित न होने से कुछ विकृत रूप में उच्चारित है, वह शब्दावली अपभ्रंश भाषा के अन्तर्गत आती है।

देवेन्द्रकुमार शास्त्री ने अपना मंतव्य प्रस्तुत करते हुए कहा है कि अपभ्रंश के लिए व्याकरण का सबसे पहला प्रयोग है–अपशब्द। अमरकोश में अपभ्रंश का अर्थ 'अपशब्द' है। इससे अतिरिक्त लगभग सभी कोशों में अपशब्द तथा भाषा विशेष पाया जाता है। इस तरह कहा जा सकता है कि अपभ्रंश शब्द का अर्थ बिगड़ा हुआ शब्द अथवा बिगड़े हुए शब्दों वाली भाषा है।[1]

रामगोपाल शर्मा के अनुसार अपभ्रंश शब्द भ्रंश् धातु में 'अप' उपसर्ग लगने से बना है। सिद्धान्त कौमुदी में 'भ्रंशु–अधःपतने' कहकर भ्रंशु शब्द की जो व्याख्या की गई है वह अप उपसर्ग लगा देने से अधिक सार्थक हो जाती है।[2] संस्कृत में अपभ्रंश शब्द का प्रयोग 'अपशब्द' अर्थ में किया गया है तो इसका माप क्या है? तब कहा जा सकता है कि निश्चित रूप से जो शब्द व्याकरण के नियमों के अनुसार है वह शुद्ध है एवं जो अनुरूप नहीं है, उसे अपभ्रंश, अपशब्द या अपभ्रष्ट कहा जा सकता है।

अतः 'अपभ्रंश' संस्कृत भाषा का तत्सम शब्द है। 'अपभ्रंश' शब्द 'भ्रंश' धातु में 'अप' उपसर्ग और घञ् प्रत्यय के योग से निष्पन्न हुआ है। अतः अपभ्रंश का शाब्दिक अर्थ है–च्युत, भ्रष्ट, स्खलित, पतित, अशुद्ध, और विकृत। डॉ. नामवरसिंह के शब्दों में–भाषा के सामान्य मानदण्ड से जो शब्दरूप च्युत हों, वे अपभ्रंश हैं।

1. देवेन्द्र शास्त्री, भविसयत्तकहा तथा अपभ्रंश कथाकाव्य, पृ. 15–16, 2. रामगोपाल शर्मा, अपभ्रंश भाषा, काव्य व साहित्य, पृ. 3

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

अपभ्रंश भाषा का सबसे प्राचीन एवं प्रथम उल्लेख महर्षि पतंजलि (द्वितीय शताब्दी) के महाभाष्य[1] में मिलता है। उसमें उन्होंने लिखा है—अपशब्दों का उपदेश बहुत विस्तृत या व्यापक है; क्योंकि एक-एक शब्द के अनेक अपभ्रंश हैं। जैसे—एक ही गौ शब्द के गावी, गोणी, गोता, गोपोतलिका आदि बहुत से अपभ्रंश होते हैं। अतएव अपभ्रंश वह भाषा है, जिसमें प्राकृत की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक देशी शब्द उपलब्ध हैं तथा वाक्य रचना एवं अन्य कई दृष्टियों से सरलीकरण तथा देशीकरण की प्रवृत्ति अधिकतर प्राप्त होती है और जिसकी शब्दराशि पाणिनी के व्याकरण से सिद्ध नहीं है।

दूसरा उल्लेख 'वाक्यपदीय' ग्रन्थ के कर्त्ता भर्तृहरि ने संग्रहकार 'व्याडि' नामक आचार्य के मत का उल्लेख करते हुए किया है[2]। अर्थात् संग्रहकार व्याडि 'अपभ्रंश' शब्द से भलीभांति परिचित थे।

अपभ्रंश का तीसरा उल्लेख हमें भरतमुनि (द्वितीय शताब्दी) के नाट्यशास्त्र में मिलता है। यद्यपि अपभ्रंश भाषा का प्रत्यक्ष उल्लेख न करके परोक्ष रूप में संस्कृत एवं प्राकृत के साथ-साथ देशभाषा[3] का उल्लेख किया है तथा इसी देश-भाषा में शबर, आभीर, चाण्डाल, द्रविड़, ओड्र तथा अन्य वनचरों की विभाषाओं की भी गिनती की है।[4] अतः भरतमुनि का उक्त उल्लेख अपभ्रंश की सूचना देता है क्योंकि आगे चलकर विविध देशों में विविध प्रकार की भाषाओं के प्रयोग किये जाने का उन्होंने उल्लेख किया है।

भरतमुनि ने आगे भाषाओं की व्यवस्था का उल्लेख करते हुए बतलाया है कि हिमवत, सिन्धुसौवीर तथा अन्य देशों के आश्रित लोगों में नित्य ही उकार बहुला भाषा का प्रयोग होता था।[5] उकार बहुल शब्द अपभ्रंश की ही सर्वविदित प्रवृत्ति है। इसके अध्ययन से अपभ्रंश तथा उसका प्रयोग करने वाले स्थानों की सूचना मिल जाती है।

उक्त कथनों से यह स्पष्ट हो जाता है कि नाट्यकार के समय हिमालय से सिन्धु तक के देशों में जो बोली प्रचलित थी, उसमें उकार का प्रयोग विशेष रूप से होता है। समस्त प्राकृत भाषाओं में अपभ्रंश ही एक ऐसी भाषा है, जिसमें ''कर्त्ता और कर्म की विभक्ति में उ होने से उकार का बाहुल्य पाया जाता है।''[6] इससे स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि अपभ्रंश भाषा का प्रथम

1. गरीयानपशब्दोपदेशः। एकैकस्य शब्दस्य बहवोऽपभ्रंशाः। तद्यथा गौरित्यस्य शब्दस्य गावी–गौणी–गोता–गोपोतलिका इत्येवमादयोऽपभ्रंशाः, पतंजलीमहाभाष्य।।1.1.1।।

2. शब्द संस्कारहीनो यो गौरिति प्रयुयुक्षते। तमपभ्रंशमिच्छन्ति विशिष्टार्थनिवेशिनम्। वार्तिक–शब्द प्रकृतिरपभ्रंशः इति संग्रहकारो नाप्रकृतिरपभ्रंशः स्वतन्त्रतः कश्चिद्विधते। सर्वस्यैव हि साधुरेवापभ्रंशस्य प्रकृतिः। प्रसिद्धेस्तु रूढतामापद्यमाना स्वातन्त्र्यमेव केचिदपभ्रंशा लभन्ते। तत्र गौरिति प्रयोक्तव्ये अशक्त्या प्रमादादिभिर्वागाव्यादयस्तत्प्रकृतयोपभ्रंशाः प्रयुज्यन्ते। –वाक्यपदीयम प्रथमकांड 148 (कारिका 148 वार्तिक) 3. एवमेत्तु विज्ञेयं प्राकृतं संस्कृतं तथा। अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि देशभाषा विकल्पनम्।। नाट्यशा.18/22–23, पृ. 216, चौखम्बा प्रकाशन, 1929

4. शकाराभीर चाण्डाल शवरद्रमिलान्ध्रजाः। हीनावनेचरणां च विभाषा नाटके स्मृताः।। ना.शा. 17/50, बड़ौदा 1926

5. हिमवत्सिन्धुसौवीरान् ये देशाः समाश्रिताः। उकारबहुलां तज्ज्ञस्तेषु भाषां प्रयोजयेत्। नाट्यशास्त्र 17–62

6. जैन ग्रन्थ प्रशस्ति संग्रह, पृ. 4 (प्रस्तावना)

www.vitragvani.com

क्षेत्र हिमालय से सिन्धु तक भारत का पश्चिमोत्तर प्रदेश ही है, परन्तु भरतमुनि के समय वहां अपभ्रंश एक प्रकार की बोली ही थी, जिसे विभाषा कहा गया है। उसने तब तक साहित्यिक रूप धारण नहीं कर पाया था और न वह अपभ्रंश विशेष रूप से प्रसिद्धि को पा सकी थी, किन्तु इसमें संदेह नहीं होना चाहिए कि इस भाषा ने परवर्ती काल में बड़ी उन्नति की है और उसने इतना अधिक विकास पाया कि विक्रम की 6वीं–7वीं शताब्दी से कुछ समय पूर्व उसमें गद्य-पद्य में रचना होने लगी थी। कवि भामह (छठी शताब्दी का अन्तिम चरण) ने अपने काव्यालंकार में संस्कृत, प्राकृत की रचनाओं के साथ अपभ्रंश की गद्य-पद्यमय रचना का भी उल्लेख किया है।[1] अतः यहां हम कह सकते हैं कि छठी शताब्दी के अंतिम चरण में अपभ्रंश का अस्तित्व काव्य रूप में होने लगा था, जिसका निश्चय भामह के उल्लेख से भी हो जाता है।

महाकवि दण्डी (7वीं सदी) ने भी संस्कृतेतर शब्दों को अपभ्रंश एवं काव्यों में अभीरादि की भाषा को भी अपभ्रंश माना है।[2] इसके साथ ही महाकवि ने समस्त उपलब्ध साहित्य को संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश एवं मिश्र नामक चार भेदों में विभक्त कर[3] भामह द्वारा अपभ्रंश को काव्य के रूप में ही महत्ता का समर्थन किया है। उन्होंने अपभ्रंश काव्यों में प्रयुक्त होने वाले ओसरादि[4] छन्दों का निर्देश करके अपभ्रंश साहित्य के समृद्धता की सूचना भी दी है।

उक्त कथन के निष्कर्ष में हम कह सकते हैं कि दण्डी के समय तक ग्रन्थकार संस्कृत के अतिरिक्त अन्य समस्त भाषाओं को अपभ्रंश कहते थे, जिसकी परम्परा का उल्लेख पतंजलि ने अपने महाभाष्य में किया है एवं जिन भाषाओं ने उस समय तक अपभ्रंश के नाम से काव्य क्षेत्र में प्रवेश प्राप्त कर लिया था, वे सब भाषाएँ आभीरादि जातियों की बोलियां थी। नाट्यकार भरतमुनि ने अभीरों की बोली को 'शाबरी' बतलाया है।[5] इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि अभीरों की शक्ति का .लोक में जैसे-जैसे विकास होता गया, वैसे-वैसे ही उनकी संस्कृति में भी चेतना का जागरण होता गया और फलतः उनकी काव्य कला की अभिव्यक्ति का माध्यम बन गई।

जब कोई भी बोली व्याकरण एवं साहित्य के नियमों में आबद्ध हो जाती है, तब वह काव्यभाषा का रूप ग्रहण कर लेती है। उसका यह रूप परिनिष्ठित कहलाता है और वह काव्य के रम्य कलेवर में सुशोभित होने लगता है। अपभ्रंश भाषा की भी यही स्थिति है। सौराष्ट्र देश से प्राप्त होने वाले वलभी के राजा गुहसेन को संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश रूप भाषात्रय में प्रबन्ध रचना करने में निपुण बतलाया गया है।[6]

1. शब्दार्थौ सहितौ काव्यं गद्यं पद्यं च तद् द्विधा। संस्कृतं प्राकृतं चान्यदपभ्रंशः इति त्रिधा।। काव्यालंका (1–36)
2. अभीरादिगिरः काव्येष्वपभ्रंश इति स्मृताः। शास्त्रे तु संस्कृतादन्यदपभ्रंश तयोदितम्।। काव्यादर्श 1/36
3. तदेतद् वाङ्मयं भूयः संस्कृतं प्राकृतं तथा। अपभ्रंशश्च मिश्रं चेत्याहुरार्याश्चतुर्विधम्।। काव्यादर्श 1/32
4. संस्कृतं सर्गबन्धादि प्राकृतं स्कन्धकादि यत्। ओसरादिरपभ्रंशो नाटकादि तु मिश्रकम्।। काव्यादर्श 1/37
5. अभीरोक्तिः शाबरी स्यात्.............. ।। नाट्यशाला 18-44
6. संस्कृतप्राकृतापभ्रंशभाषात्रय प्रतिबद्ध प्रबन्ध रचना निपुणान्तः करणः। इण्डियन एण्टीक्वेरी, संस्करण–अक्टू., सन् 1881, पृ. 284

www.vitragvani.com

इस तरह अपभ्रंश का उत्तरोतर विकास होता रहा और विक्रम की 8वीं शताब्दी में आते–आते तो अपभ्रंश का काव्यरूप बहुत प्रसिद्ध और लोकरंजक हो चुका था। विक्रम की 8वीं शताब्दी के विद्वान् उद्योतनसूरि ने अपनी कुवलयमाला में संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश की तुलना करते हुए संस्कृत की अपेक्षा अपभ्रंश की महत्ता का उल्लेख किया है। कुवलयमाला[1] में उल्लिखित अंश इस प्रकार है–अनेक 'पद-समास, निपात, उपसर्ग, विभक्ति एवं लिंग इनकी दुरूहता के कारण संस्कृत दुर्जन व्यक्तियों के समान विषम है। समस्त कला-कलापों की मालारूपी जलकल्लोलों से व्याप्त, लोकवृतान्तरूपी महासागर से महापुरुषों द्वारा निष्कासित, अमृत बिन्दुओं से युक्त तथा यथाक्रमानुसार वर्णों और पदों से संघटित विविध रचनाओं के योग्य तथा सज्जनों की मधुर वाणी के समान ही सुख देने वाली 'प्राकृत' होती है। संस्कृत–प्राकृत मिश्रित शुद्ध-अशुद्ध पद, सम–विषम तरंग लीला युक्त, वर्षाकाल के नव मेघों द्वारा प्रवाहित जलपूरों से युक्त; पर्वतीय नदी तथा प्रणय कुपित प्रणयिनी के समुल्लापों सम ही अपभ्रंश रस मधुर होती है। इसी तरह स्वयंभू ने अपभ्रंश में काव्य रचना की तुलना एक नदी से की है, जो संस्कृत और प्राकृत दोनों तटों की तरह मनोहर है।[2]

9वीं सदी के कवि रुद्रट ने काव्यालंकार में काव्य के गद्य-पद्य में विभाजन के बाद भाषा के आधार पर उसे छह भागों में विभक्त किया है और देश-भेद से अपभ्रंश के बहुत भेद होने की सूचना भी दी है।[3] स्पष्ट है कि कवि रुद्रट अन्य साहित्यिक प्राकृतों के समान ही अपभ्रंश को भी गौरव प्रदान करते हैं। रुद्रट के उक्त कथन की पुष्टि विक्रम की 11वीं शताब्दी के विद्वान् नमि साधु ने अपनी टीका में की है। अन्य के द्वारा अपभ्रंश के तीन भेद माने हैं–उपनागर, आभीर और ग्राम्य। पर इसके भेदों का निराकरण करने हेतु रुद्रट ने भूरिभेद[4] बतलाते हुए उसके अनेक भेदों को कहा है, क्योंकि देश विशेषता से भाषा में भी विशेषता होती है। 'साथ ही प्राकृत को ही अपभ्रंश माना है।'

दसवीं शताब्दी के महाकवि राजशेखर ने काव्यमीमांसा' में काव्य-पुरुष का कथन करते हुए संस्कृत को मुख, प्राकृत को बाहु, अपभ्रंश को जघन (मध्य भाग), पैशाची को पैर और मिश्र को उरस्थल बताया है।[5] इसी विचार के राजा की राज्यसभा में संस्कृत कवि का उत्तर, प्राकृत कवि का पूर्व, अपभ्रंश कवि का पश्चिम और पैशाची कवि का दक्षिण में बैठने का विधान बतलाया है।[6]

1. अरे कयरीए.........समुल्लाव सरिस मणोहरं। कुवलयमालाकहा–डॉ. ए.एन. उपाध्ये (भारतीय विद्या भवन, बम्बई, 1959, पृ. 71, पंक्ति 1–8 पर्यन्त)

2. जैन ग्रन्थ प्रशस्ति संग्रह–पं. परमानंद जैन शास्त्री, पृ. 6 (प्रस्तावना) सक्कय–पायय–पुलिणांलंकिय देसी भासा उभय तडुज्जल। कवि दुक्कर–घण सद्द–सिलायल।। स्वयम्भू प.च.,, जून 1963, वीर सेवा मंदिर, दरियागंज, दिल्ली

3. भाषा भेद निमित्तः षोढा भेदोऽस्य संभवति। प्राकृतसंस्कृतमागधपिशाचभाषाश्च शौरसेनी च।। काव्यालंकार 2, 11–12

4. प्राकृतमेवापभ्रंशः स चान्यैरूपनागराभीरग्राम्यावभेदेन त्रिधोक्तस्तन्निरासार्थमुक्तं भूरिभेद इति। कुतो देशविशेषात्। तस्य च लक्षणं लोकादेव सम्यगवसेयम्।। काव्यालंकार टीका 2.12

5. शब्दार्थो ते शरीरं, संस्कृतं मुखं प्राकृतं बाहुः। जघनमपभ्रंशः पैशाचं पादौ उरो मिश्रम।। काव्यमीमांसा अ. 3, पृ. 14

6. मध्येसभं राजासनम्। तस्य चोत्तरतः संस्कृतकवयो निविशेरन्।... पूर्वेण प्राकृताः कवयः। पश्चिमेनापभ्रंशिनः....दक्षिणतो, भूतभाषाकवयः।। काव्य मीमांसा अ. 10

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

कवि ने अन्य स्थल पर भाषाओं का क्षेत्र प्रतिपादित करते हुए–सौराष्ट्र और त्रवण देश को अपभ्रंश भाषाभाषी प्रकट किया है।[1] साथ ही अपभ्रंश भाषा के क्षेत्र का निर्देश करते हुए मरू (मारवाड़), टक्क (ठक्क), पंजाब का एक भाग भादानक–पंजाब के सेलम जिले भद्रावती देशों में अपभ्रंश के प्रयोग होने का संकेत किया है।[2] महाकवि पुष्पदंत (ई.सं. 965) ने भी अपने महापुराण में संस्कृत और प्राकृत भाषा के साथ अपभ्रंश का भी उल्लेख किया है। उस काल में संस्कृत, प्राकृतादि के साथ अपभ्रंश का भी ज्ञान राजकुमारियों को कराया जाता था।[3] अमरचन्द्र (13वीं सदी) ने अपभ्रंश की गणना प्रसिद्ध 6 भाषाओं में की है।[4]

अपभ्रंश से संबंधित उपर्युक्त उल्लेखों का अध्ययन करके हमें ज्ञात होता है कि प्रारम्भ में (द्वितीय शताब्दी तक) अपभ्रंश का अर्थ बिगड़ा हुआ रूप अर्थात् अपाणिनीय शब्द, अपभ्रष्ट एवं विकृत या अशुद्ध शब्द मात्र संज्ञा प्राप्त थी। किन्तु छठी–सातवीं शताब्दी में अपभ्रंश का प्रयोग साहित्यिक भाषा के रूप में प्रचलित हो गया था एवं उनका स्वतंत्र रूप भी विकसित होने लगा था एवं वह दण्डी तथा भामह जैसे साहित्यिकों के द्वारा समर्थन पा चुकी थी।

इसप्रकार वह 8वीं शताब्दी में सर्वसाधारण के बोलचाल की भाषा माने जाने लगी और उसका विस्तार सौराष्ट्र से मगध तक हो गया।[5] 11वीं से 13वीं शताब्दी तक के कवियों ने अपभ्रंश को संस्कृत प्राकृतादि के समान ही साहित्यिक भाषा माना। इस तरह अपभ्रंश भाषा एक समृद्ध भाषा बन चुकी थी। यद्यपि साहित्य रचना तो आगे 16–17वीं शताब्दी तक होती रही है।

(iv) अपभ्रंश साहित्य

1. काल विभाजन

अपभ्रंश साहित्य का विभाजन अत्यन्त कठिन है, फिर भी अध्ययन की सुविधा के लिए अपभ्रंश साहित्य के सम्पूर्ण विकास क्रम को डॉ. शिवसहाय पाठक[6] ने तीन काल खंडों में विभाजित किया है–

1. आदिकाल–(ई. सन् के आस-पास से 550 ई. तक),
2. मध्यकाल–(550 ई. से 1200 ई. तक) और
3. मध्योत्तर काल (1200 ई. से 1700 ई. तक)।

उक्त विभाजन अध्ययन की दृष्टि से किया गया है–

1. सौराष्ट्र त्रावणाश्च ये पठन्त्यार्पित सौष्ठवम्। अपभ्रंशवदंशानि ते संस्कृत वचांस्यपि।। काव्य मीमांसा, अ. 7
2. सापभ्रंश प्रयोगः सकलमरुभुवष्टक्क भादानकाश्च। काव्यमीमांसा, अ. 10
3. सक्कउ पायउ पुण अवहंसउ, वित्तउ उप्पाइउ सपसंसउ।। महापुराण 5–18–6
4. संस्कृतं प्राकृतं चैव शौरसेनी च मागधी।
पैशाचिकी चापभ्रंशं षड्भाषाः परिकीर्तिताः।। काव्यकल्पता वृत्ति, पृ. 608 (जैन ग्रंथ प्रशस्ति संग्रह, पृ. 7)
5. अभीरी भाषापभ्रंशस्था कथिता क्वचिन्मागध्यामपि दृश्यते, काव्यालंकार टीका, 2/12, पृ. 15
6. अपभ्रंश भाषा और व्याकरण, पृ. 45–47

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

1. आदिकाल (ई. सन् के आस-पास से 550 ई. तक)

यह वह युग है, जिसमें प्राकृत से पृथक् अपभ्रंश का विकास होने लगा। इस युग में अपभ्रंश शब्द एवं भाषा विषयक पतंजलि एवं व्याडि के उल्लेख मिलते हैं। भरतमुनि की 'उकार-बहुला', 'अभीरोक्ति' का उल्लेख मिलता है। भाषा की दृष्टि से डॉ. चटर्जी का कथन बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। उनका कहना है—ईसा की प्रथम शताब्दी के मध्य में आरम्भ हुई अपभ्रंश भाषा की परम्परा तुर्की, ईरानी विजय के समय भी बराबर चल रही थी। अपभ्रंश की 'उकार बहुला' विशेषता ईसा की तृतीय शताब्दी में ही पश्चिमोत्तरी प्राकृत में दृष्टिगोचर होती है।[1]

शूद्रक कृत मृच्छकटिक में भी अपभ्रंश के उल्लेख प्राप्त होते हैं, जहां ढक्की को अपभ्रंश का एक रूप ही माना गया है।[2] मृच्छकटिक में माथुर नामक पात्र द्वारा ढक्की का प्रयोग किया गया है। विक्रमोर्वशीय के पद्यों में भी अपभ्रंश का प्रयोग किया गया है। धरसेन द्वितीय के अभिलेख से भी ज्ञात होता है कि अपभ्रंश, भाषा के पद पर प्रतिष्ठित थी। छठी शताब्दी के भामह के उल्लेख से यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है। वस्तुतः 550 ई. के बाद अपभ्रंश को संस्कृत, प्राकृत की ही भांति काव्य की भाषा मान लिया गया। कहा जा सकता है कि किसी भी बोली को काव्य-भाषा बनने के लिए दो-तीन सौ वर्ष लग सकते हैं और यदि यह मान लिया जाये कि अपभ्रंश जन बोली के रूप में ईस्वी सन् के आस-पास थी तो यह मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

2. मध्यकाल (550ई. से 1200ई. तक)

मध्यकाल अपभ्रंश की काव्य-स्वरूप का प्रमुख काल रहा है। इस काल में अपभ्रंश जन बोली से उठकर अपभ्रंश भाषा के पद पर आसीन हुई एवं अपभ्रंश भाषा का सम्यक् विकास हुआ।

यही अपभ्रंश का मध्यकाल पं. राहुल सांस्कृत्यायन ने भी माना है, जो उचित जान पड़ता है। क्योंकि वाणभट्ट ने भाषाकवि ईशान का उल्लेख किया है, जो प्राकृत कवि से भिन्न है। छठी सदी के पूर्व अपभ्रंश काव्य रचने का अनुमान इसलिए भी किया जा सकता है कि भरतमुनि ने विभाषा के रूप में जिन बोलियों का उल्लेख किया है अभिनवगुप्त ने उनकी पुष्टि करते हुए ग्रामीणजनों की बोलियों को अपभ्रंश कहा है। उक्त कथनों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि छठी शताब्दी के लगभग निश्चय रूप से अपभ्रंश भाषा में काव्य रचना होने लगी थी।

इस युग में एक से एक श्रेष्ठ कवि अपनी रचनाओं के द्वारा अपभ्रंश भाषा का श्रृंगार करते रहे। अपभ्रंश में एक ओर लोक जीवन की जीवन्तता थी, ताजगी थी तो दूसरी ओर प्रबन्धोचित अभिजात्य भी। उसे राजदरबारों में भी गौरवपूर्ण पद प्राप्त था। यही युग अपभ्रंश काव्य-रचना में सर्वप्रमुख है।[3] इस काल में अपभ्रंश के अनेक प्रबन्धकाव्य लिखे गये। प्रबन्ध काव्यों की संख्या

1. चटर्जी, डॉ. सुनीति कुमार—भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी, पृ. 117 (1957), 2. सांस्कृत्यायन, हिन्दी काव्यधारा, पृ. 472
3. अपभ्रंश भाषा और व्याकरण, पृ. 46

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

अपभ्रंश में सबसे अधिक है। सभी प्रबन्धकाव्य संधियों में निबद्ध हैं और संधियाँ कड़वकबद्ध हैं। प्रबंध काव्यों की यह विशेष शैली भारतीय साहित्य को अपभ्रंश साहित्य की देन है। लोकजीवन और लोकशैली के विविध रूप अपभ्रंश काव्य में देखे जा सकते हैं। इस युग में पौराणिक महाकाव्य, कथाकाव्य, चरितकाव्य, प्रेमाख्यानककाव्य, खण्डकाव्य, गीतिकाव्य, मुक्तक काव्य आदि काव्य विधाओं में प्रचुर रचनाएँ मिलती हैं। इस काल में जैन मुनियों और कवियों की रचनाएं भी अपभ्रंश में मिलती हैं। सातवीं-आठवीं शताब्दी से ही अपभ्रंश में रचित सिद्ध साहित्य भी मिलता है। दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दी के शिलालेखों में भी अपभ्रंश की रचनाएं मिलती हैं। महाराज भोज के शिलालेख धार में विद्यमान हैं। भोजकृत 'सरस्वती कण्ठाभरण' में अपभ्रंश के अनेक पद्य प्राप्त होते हैं।

3. मध्योत्तरकाल (1200 ई. से 1700 ई. तक)

यह युग आचार्य हेमचन्द्र से कवि भगवतीदास तक का कहा जा सकता है। इस काल में परिनिष्ठित अपभ्रंश की प्रवृत्ति बलवती रही।

2. अपभ्रंश के भेद

अपभ्रंश भारतवर्ष के विशाल भूभाग की भाषा रही है। उसमें स्थान भेद से विविधता आ गई। इस ओर अनेक विद्वानों का ध्यान गया था। उन्होंने अपभ्रंश के अनेक भेदों की चर्चा की है–

विष्णु धर्मोत्तर पुराण[1] में देश भेद से अपभ्रंश के अनन्त भेदों की ओर इंगित किया है, रुद्रट[2] ने भी अनेक भेदों की बात कही थी। नमिसाधु[3] के अनुसार अपभ्रंश के तीन भेद माने गये हैं–1. उपनागर, 2. आभीर और 3. ग्राम्य। इन भेदों के मूल में उन्होंने लोकभाषा को माना है। अपभ्रंश के इन तीन भेदों में भरतमुनि और आचार्य दण्डी द्वारा प्रतिपादित अभीरोक्ति या अभीरादिगिरः को भी अपभ्रंश का एक भेद माना है। भरतमुनि के काल में 'हिमवत् सिन्धु सौवीर' में बोली जाने वाली उकार बहुला बोली सुदूर पूर्व मगध तक पहुंचकर मागधी में परिलक्षित हुई।[4] इसे नमि साधु ने भी लक्षित किया था। ''अभीरिभाषापभ्रंशस्थाकथिता क्वचिन्मागध्यामपि दृश्यते'' (काव्यालंकार 2/13)। प्राकृत लक्षण में अपभ्रंश भाषा का उल्लेख करते हुए उसकी व्याकरणिक प्रवृत्तियों का भी निर्देश किया है–'लोपोऽपभ्रंशेऽधोरेफस्य'[5] अर्थात् अपभ्रंश में अधोरेफ का लोप नहीं होता है। वाग्भट्ट ने भी ''अपभ्रंशस्तुमच्छुद्धं' तत्तदेशेषु भाषितम्'' कहकर अपभ्रंश देश भेद के कारण अनेक रूपता का उल्लेख किया है।

---

1. विष्णुधर्मोत्तरपुराण, 3/3, 2. भूरि भेदो देश विशेषादपभ्रंशः, रूद्रटकाव्यालंकार, 2/12
3. स चान्यैरूपनागराभीरग्राम्यत्व भेदेन त्रिधोक्तस्तन्निरासार्थयुक्तं'', वही 2/12 (नमि साधु की टीका)
4. अपभ्रंश भाषा और व्याकरण, पृ. 47, 5. प्राकृत लक्षण, चण्डकृत 3/3

www.vitragvani.com

उद्योतनसूरि ने देशी भाषा अपभ्रंश की अठारह विभाषाओं का सोदारहण उल्लेख किया है। ये अठारह विभाषाएँ इस प्रकार हैं–गोरल, मध्यदेश, मगध, अन्तर्वेद, कीर, टक्क, सिन्ध, मरू, गुर्जर, लाट, मालव, कर्णाटक, तमिल, कोसल, महाराष्ट्र, आन्ध्र, खस, पारस और वव्वर।[1] प्राकृतानुशासन (12वीं सदी) में अपभ्रंश को शिष्टों के प्रयोग से जानने की सलाह देते हुए अपभ्रंश के तीन भेदों का उल्लेख किया है–1. नागरक, 2. व्राचड, 3. उपनागरक। साथ ही पंचालदिकों को सूक्ष्मान्तर और लोकगम्य बताकर वैदर्भी, लाटी, लड्डी, कैकयी, गौड़ी आदि की भेदक विशेषताओं का भी संक्षेप में उल्लेख किया है। इसी प्रकार टक्क, वव्वर, कुन्तल, पाण्डि, सिंघलादि भाषाओं की ओर भी इंगित किया है।[2]

रामशर्मा तर्कवागीश ने 'प्राकृतकल्पतरू' के द्वितीय स्तवक में नागर अपभ्रंश के अनेक नियमों को बताया है। साथ ही तृतीय स्तवक में सिन्धुदेश में प्रसिद्ध व्राचड अपभ्रंश का उल्लेख किया है। उन्होंने उपनागर में नागर और व्राचड को मिश्र रूप स्वीकार किया है। टक्की को भी उन्होंने इन तीनों का मिश्रण माना है। उन्होंने इन्हीं तीनों का 20 भेदों में भी उल्लेख किया है, जो इस प्रकार हैं–पांचालिका, मागधी, वैदर्भिका, लाटी, ओड्री, कैकेयिक, गौडी, कौन्तली, पाण्डी, सैंहली, कलिंगजा, प्राच्या, आभीरिका, कर्णाटिका, मध्यदेश्या, गौर्जरी, द्राविड़ी, पाश्चात्यजा, वैतालिकी और कांची और उन्होंने यह भी कह दिया कि इसके भेद अति दुर्विकल्प हैं।[3]

मार्कण्डेय के अनुसार 'प्राकृत सर्वस्व' में अपभ्रंश के 27 भेदों को गिनाया है–व्राचड, लाट, वैदर्भ, उपनागर, नागर, वार्बर, आवन्त्य, मागध, पांचाल, टक्क, मालव, कैकय, गौड़, औड्र, वैवपाश्चात्य, पाण्ड्य, कौन्तल, सैंहल, कलिंग, प्राच्य, कार्णाट, कांचय, द्राविड़, गौर्जर, आभीर, मध्यदेशीय और वैताल। मार्कण्डेय द्वारा नमिसाधु से भिन्न तीन मुख्य भेदों का उल्लेख किया गया है–'नागरोव्राचडश्चोपनागरश्चेति त्रयः।'[4]

उक्त वर्गीकरण में नमिसाधु एवं मार्कण्डेय का वर्गीकरण विचारणीय है। नमिसाधु का उप –नागर से तात्पर्य वही है जो मार्कण्डेय का नागर अपभ्रंश से है। सामान्यतः यह परिनिष्ठित अपभ्रंश है, किन्तु नमिसाधु ने उपनागर का लक्षण बताते हुए एक स्थान पर "अभूतोऽपिक्वाप्य–धोरेफः क्रियते" का विधान किया है और उदाहरण स्वरूप "व्राचालउ व्रचव्रचक्रार वक्रूखीत्यादि" को रखा है। मार्कण्डेय ने नागर अपभ्रंश के लिए तीन पाद (17, 18 और 19) व्राचड के लिए 11 सूत्र और उपनागर के लिए केवल एक सूत्र का विधान किया है।[5] व्राचड को मार्कण्डेय ने सिन्धुदेशोद्भव कहा है तथा उपनागर को नागर और व्राचड का संकर।[6]

1. कुवलयमाला का सांस्कृतिक अध्ययन, प्रेमसुमनजी, पृ. 256
2. (क) पुरुषोत्तम, प्राकृतानुशासन, 18/1–13, 18/16–23 (ख) अपभ्रंश भाषा और व्याकरण, पृ. 48
3. पराप्यभ्रंशभिदास्ति तत्तदेशीय भाषापद समप्रयोगात्।
न सा विशेषादिह सम्प्रदिष्टा भेदो यदस्यामतिर्विकल्पः।। प्राकृतकल्पतरु, 3/3/13
4. प्राकृत सर्वस्व, 4 और 10, 5. अपभ्रंश भाषा और व्याकरण, पृ. 49, 6. हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग, पृ. 50

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

हेमचन्द्र के समय तक अपभ्रंश ने पूर्ण परिनिष्ठित या परिष्कृत स्वरूप प्राप्त कर लिया था[1] और इस तरह इसे सभ्यों की भाषा भी स्वीकृत कर लिया गया था।

3. आधुनिक वर्गीकरण

आधुनिक युग में अपभ्रंश का वर्गीकरण क्षेत्रीय आधारों पर भी किया गया है। सर गियर्सन के अनुसार सिन्धु नदी के निचले प्रदेश की अपभ्रंश, व्राचड थी। नर्मदा के दक्षिण में अरब सागर से उड़ीसा तक, वैदर्भ या दाक्षिणात्य अपभ्रंश से संबंधित अनेक विभाषाएँ रही होंगीं। दाक्षिणात्य के पूर्व में बंगाल की खाड़ी तक औड्र अथवा औत्कल अपभ्रंश का क्षेत्र था। औड्र के उत्तर में छोटा नागपुर तथा बिहार के अधिकांश भाग, पूर्वी उत्तरप्रदेश के आधे भाग, बनारस तथा मगध तक अपभ्रंश का प्रसार था। यह मुख्य अपभ्रंश थी। मगध के पूर्व में गौड या प्राच्य अपभ्रंश का क्षेत्र था। पूर्वी व पश्चिमी प्राकृतों के बीच में एक मध्यवर्ती प्राकृत भी थी। इसका नाम अर्द्धमागधी था।

इससे विकसित अपभ्रंश की वर्तमान प्रतिनिधि भाषा अवध, बघेलखंड तथा छत्तीसगढ़ में बोली जाती है। भीतरी उपशाखा की भाषाओं की आधारभूत भाषा नागर अपभ्रंश थी। यह गुजरात और उसके निकटवर्ती प्रदेशों की भाषा थी। मध्य दोआब में शौरसेनी अपभ्रंश का प्रसार था। उत्तरी मध्य पंजाब में टक्क, दक्षिणी पंजाब में उपनागर, अवन्ती प्रदेश में आवन्त्य, गुजरात में गौर्जर का प्रचार-प्रसार था।[2]

डॉ. यकोबी ने 'सनत्कुमारचरित' की भूमिका में अपभ्रंश के चार भेद किये हैं—उत्तरी, पूर्वी, दक्षिणी और पश्चिमी। इस विभाजन का भाषा-वैज्ञानिक आधार नहीं है। अतः डॉ. तगारे[3] इस विभाजन को उपयुक्त न मानकर इसका खण्डन करते हैं और इस भाषा का विभाजन तीन प्रकार से करते हैं—पूर्वी अपभ्रंश, पश्चिमी अपभ्रंश एवं दक्षिणी अपभ्रंश। पूर्वी अपभ्रंश के अंतर्गत सरह आदि के दोहाकोश एवं चर्यापदों की भाषा आती है। दक्षिणी अपभ्रंश में पुष्पदंत का महापुराण, णायकुमारचरिउ तथा मुनि कनकामर के करकंडुचरिउ की भाषा है। पश्चिमी अपभ्रंश की रचनाओं में कालिदास, जोइन्दु, धनपाल की रचनाएँ तथा हेमचन्द्र के व्याकरण के दोहे हैं।

4. अपभ्रंश भाषा का साहित्यिक वर्गीकरण एवं संक्षिप्त परिचय

अपभ्रंश काव्य साहित्य में जीवन और जगत की अनेक भावनाओं और विचारों की वाणी मिलती है। यदि एक ओर इसमें जैन मुनियों के चिंतन की चिन्तामणी है तो दूसरी ओर बौद्ध सिद्ध की सहज साधना की सिद्धि भी है। यदि एक ओर धार्मिक आदर्शों का व्याख्यान है तो दूसरी ओर लोक-जीवन से उत्पन्न होने वाले ऐहिक रस का राग-रंजित अनुकथन भी है। यदि यह साहित्य नाना शलाका पुरुषों के उदात्त जीवन चरित से सम्पन्न है तो सामान्य वणिक् पुत्रों के सुख-दुःख की कहानी से परिपूर्ण भी है।[4]

1. तगारे, हिस्टॉरिकल ग्रेमर ऑफ अपभ्रंश, पृ. 3 2. अपभ्रंश भाषा और व्याकरण—पृ. 49-50 सर जार्ज गियर्सन, भारत का भाषा सर्वेक्षण, पृ. 245-249 3. तगारे, हिस्टॉरिकल ग्रामर ऑफ अपभ्रंश, पृ. 16 4. हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग, पृ. 179

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

निश्चित रूप से अपभ्रंश का साहित्य संख्या में कम होने पर भी गुण और ऐतिहासिक महत्त्व की दृष्टि से भारतीय साहित्य की अमूल्य निधि है। इस समस्त साहित्य का अध्ययन करने के लिए उसका वर्गीकरण आवश्यक है। विषय–विस्तार की दृष्टि से सम्पूर्ण अपभ्रंश साहित्य को चार भागों में विभाजित किया जा सकता है–

1. जैन अपभ्रंश साहित्य, 2. बौद्ध सिद्ध अपभ्रंश साहित्य,

3. शैव अपभ्रंश साहित्य, 4. ऐहिकतापरक अपभ्रंश साहित्य।

1. जैन अपभ्रंश साहित्य

जैन अपभ्रंश साहित्य की धारा हमें 7वीं ई. से सोलहवीं-सत्रहवीं सदी तक प्राप्त होती है। धर्म और साहित्य का अद्भुत मिश्रण जैन कवियों ने किया है। जिस समय जैनकवि काव्य–रस की ओर झुकता है तो उसकी कृति सरस काव्य का रूप धारण करती है और जब धर्मोपदेश का प्रसंग आता है तो वह उपदेशात्मक कृति बन जाती है।[1]

प्राकृत की तरह इसमें भी मुक्तक और प्रबन्ध दो तरह की रचनाएँ मिलती है। मुक्तक-काव्य की एक उपशाखा 'रहस्यवादी धारा' कही जा सकती है, जिसके अन्तर्गत महाकवि जोइन्दु का परमात्मप्रकाश एवं योगसार, मुनि रामसिंह का पाहुड़दोहा और सुप्रभावाचार्य का वैराग्यसार इस धारा के महत्त्वपूर्ण कवि एवं उनकी रचनाएं हैं, इनका विवेचन इसप्रकार किया जा सकता है–

परमात्म प्रकाश–यह कृति आचार्य जोइन्दु (योगीन्द्र) द्वारा रचित है। ये अध्यात्म साधना में लवलीन जैन साधु थे। इसलिए इन्हें अध्यात्मवादी कहा जाता है। ये बहुत ही उदार, कोमल, निःस्पृह एवं निर्भीक संत थे। इनके मिलते-जुलते अनेक नाम प्राप्त होते हैं–जोगिचन्द्र, योगीन्द्रदेव एवं योगीन्द्राचार्य। योगीन्द्र प्रथम व्यक्ति हैं, जिन्होंने दोहा-छन्द में शुद्ध अध्यात्मपरक रचनाएँ लोकभाषा में प्रस्तुत की हैं। वस्तुतः कवि का मुख्य उद्देश्य अध्यात्म विषयक तथ्यों की अभिव्यक्ति रहा है। इनके विचार वेदान्त के निकट है। इन्होंने बाह्याडम्बरों का विरोध किया है। अध्यात्मवादी कवि जोइन्दुदेव ने स्वयं अपने संबंध में कोई सूचना नहीं दी है। डॉ. ए.एन. उपाध्ये जी के अनुसार (परमात्मप्रकाश की भूमिका) इनका समय 6वीं शताब्दी अनुमानित है।

भट्ट प्रभाकर इनके प्रधान शिष्य थे। इन्हीं के शंका-समाधान के हेतु दो प्रमुख कृतियों की रचना की–परमात्मप्रकाश एवं योगसार।

यह कृति 337 छंदों में रचित कवि की प्रधान कृति है। इसमें अध्यात्म और तत्त्वज्ञान के विविध विषय योजनानुसार वर्णित हैं। भट्ट प्रभाकर के शंका समाधान का क्रमबद्ध ढ़ंग से दार्शनिक विषयों की ऐसी चर्चा की है, जो मानव जीवन को उद्वेलित करने में सक्षम है।

यह ग्रन्थ दो अधिकारों में विभक्त है–प्रथम अधिकार में आत्मा-परमात्मा का स्वरूप, द्रव्य, गुण, पर्याय, कर्म, निश्चय, सम्यग्दृष्टि, मिथ्यात्व आदि तथा द्वितीय अधिकार में मोक्ष का स्वरूप,

1. अपभ्रंश : एक परिचय, कमलचंद सोगानी, पृ. 7–8

www.vitragvani.com

मोक्ष-फल, मोक्ष-मार्ग, अभेद रत्नत्रय, समभाव, पाप-पुण्य की समानता, शुद्धोपयोग और परमसमाधि का वर्णन किया है।

योगसार—यह योगीन्द्र देव की द्वितीय महत्त्वपूर्ण रचना है। इस ग्रन्थ की रचना का प्रयोजन सांसारिक माया से त्रस्त और मोक्ष के लिए उत्सुक प्राणियों की आत्मा को जागृत करने के लिए उन्होंने इस ग्रन्थ की रचना की है। इसमें कुल 108 छन्द हैं।

पाहुड़दोहा—पाहुड़ का अर्थ उपहार होता है। इस प्रकार इस ग्रन्थ का अर्थ हुआ दोहों का उपहार। यह अध्यात्मवादी कवि रामसिंह द्वारा विरचित एकमात्र कृति है। इस कृति में आध्यात्मिकता की प्रधानता है। इसका समय 10वीं शताब्दी के निकट माना जाता है, क्योंकि पाहुड़दोहा के उदाहरण आचार्य हेमचन्द्र ने दिये हैं। अतः वह हेमचन्द्र के पूर्ववर्ती सिद्ध होते हैं।

मुक्तक काव्य की दूसरी उपशाखा उपदेशात्मक धारा है। देवसेन, जिनदत्तसूरि और महेश्वरसूरि इस धारा के प्रमुख कवि हैं, जिनकी निम्नलिखित रचनाएं हैं –

सावयधम्म दोहा—यह दिगम्बर आचार्य देवसेन द्वारा रचित एक संग्रह कृति है, जिसमें श्रावक-गृहस्थों के नैतिक उपदेश दिये हैं। ये बड़े ही चरित्रवान, संयमी, मितभाषी, लोकहितकामी और उदार व्यक्ति थे। चिन्तनशीलता उनकी प्रकृति थी। वे संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश के विशिष्ट विद्वान् थे। इन्होंने तीन भाषाओं में ग्रंथों की रचना की है। संस्कृत में आलापद्धति, प्राकृत में दर्शनसार, तत्त्वसार, आराधनासार और भाव-संग्रह एवं अपभ्रंश भाषा में सावयधम्मदोहा की रचना है। इनका समय 10वीं शताब्दी अनुमानित है। जैन अपभ्रंश साहित्य में प्रबन्ध काव्य पर्याप्त मात्रा में लिखे गये हैं। इसके अंतर्गत प्रमुख कवि—महाकवि स्वयंभू, पुष्पदंत, पद्मकीर्ति, धवल, धनपाल, हरिषेण, वीरकवि, नयनन्दि, कनकामर, रइधू, आचार्य हेमचन्द्र, श्रीचन्द, देवसेनगणि, हरिभद्र, लक्खण, लक्खमदेव, जयमित्रहल और हरिदेव आदि इस धारा के प्रमुख कवि नक्षत्र हैं।

पउमचरिउ—यह स्वयंभू की सर्वश्रेष्ठ रचना है। अपभ्रंश साहित्य की परम्परा में स्वयंभू को सर्वश्रेष्ठ कवि के रूप में माना गया है। इन्हें अपभ्रंश का बाल्मीकि कहा गया है और भारत के दर्जन अमर कवियों में एक माना गया है। राहुलजी के अनुसार इन्हें अपभ्रंश का सबसे बड़ा कवि घोषित किया गया है। इनका समय 793ई. के आस-पास है।[1]

अपने ग्रन्थों में सर्वत्र अपना नाम स्वयंभू दिया है। इनके पिता का नाम मारुतदेव तथा माता का नाम पद्मिनी था। पउमचरिउ में इनके शरीर के अंगों का वर्णन करते हुए लिखा है–

"अइतणुएण पईहरगते छिव्वरणासे पविरल दंते"। 1/3

अर्थात् कवि स्थूलकाय चौड़ी नाक वाला एवं विरल दांतों से युक्त था।

इनकी दो पत्नियां अमृताम्बा एवं आदित्याम्बा एवं पुत्र त्रिभुवन, जिसने पिता के अपूर्ण ग्रन्थों को पूर्ण किया था और स्वयं भी कुछ संधियां जोड़ीं। उनकी तीसरी पत्नी का भी अनुमान किया

1. जैन ग्रन्थ प्रशस्ति संग्रह, पृ. 46

www.vitragvani.com

जाता है, जिससे त्रिभुवन का जन्म हुआ था। कवि ने अपने दो आश्रयदाता का उल्लेख किया है–प्रथम धनंजय एवं द्वितीय धवल हैं। 'पउमचरिउ' की रचना धनंजय के आश्रय में और 'रिट्ठणेमिचरिउ' का प्रणयन धवल के संरक्षण में हुआ था। विद्वानों के अनुसार इनकी साहित्य साधना का केन्द्र 'कर्नाटक' प्रान्त को माना गया है। इस कथन के पीछे यह तर्क है कि उन्होंने (महाकवि स्वयंभू) अपनी कृति 'रिट्ठणेमिचरिउ' में पाण्डवों, द्रोपदी एवं कुन्ती की तुलना गोदावरी नदी के सात-मुखों से की है। कवि गोदावरी नदी का वर्णन प्रत्यक्षदर्शी की भांति करता है। जिससे विद्वानों का अभिमत है कि ऐसी कल्पना एवं वर्णन कोई दक्षिणात्य ही कर सकता है।

इन्होंने इन ग्रन्थों का प्रणयन किया है–1. पउमचरिउ, 2. रिट्ठणेमिचरिउ (हरिवंशपुराण), 3. स्वयंभूछन्द, 4. पंचमीचरिउ। पउमचरिउ एक विशाल प्रबंध काव्य है। इसमें पांच काण्ड एवं 90 संधियां हैं। पांच काण्ड इस प्रकार हैं–1. विद्याधर काण्ड, 2. अयोध्या काण्ड, 3. सुन्दर काण्ड, 4. युद्ध काण्ड, और 5. उत्तरकाण्ड। पउमचरिउ चरित प्रधान शैली का काव्य है। पुराणकाव्यों की विशेषता के अनुसार यह चरितकाव्य प्रश्नोत्तर के रूप में वर्णित है। जहां मगधराजश्रेणिक रामकथा के सम्बन्ध में उत्पन्न भ्रम को गौतम स्वामी के सामने प्रश्न के रूप में रखता है और वे उत्तर में कथा प्रारम्भ कर देते हैं। कथा का प्रारम्भ अयोध्याकाण्ड से होता है। विभीषण को महंत सागरबुद्धि से यह सूचना मिलती है कि राम–रावण का वध करेंगे। इसकी प्रतिक्रिया में वह दशरथ और जनक के वध का असफल प्रयत्न करता है। कथा जैनधर्म के अनुकूल आगे बढ़ती है। इसके सभी प्रमुख पात्र जैनधर्म में दीक्षित हैं।

रिट्ठणेमिचरिउ (हरिवंशपुराण)–यह पुराणकाव्य पउमचरिउ से भी विशालकाव्य है, जिसका वर्णन 112 संधियों में प्राप्त होता है। इसमें जैन-परम्परा के बाइसवें तीर्थंकर अरिष्टनेमि (नेमिनाथ) तथा कृष्ण एवं कौरव-पाण्डवों की कथा वर्णित है। सम्पूर्ण कथा को चार काण्डों में विभाजित कर पुराण काव्य की विशेषता अनुसार प्रश्नोत्तर में कही गई है। वह चार कांड इस प्रकार हैं–1. जादव कांड, 2. कुरु कांड, 3. युद्ध कांड और 4. उत्तरकांड।

ग्रन्थ का आरम्भ कवि ने आत्म-निवेदन और विषय की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए किया है। कथा का आधार कुछ परिवर्तनों के साथ महाभारत और हरिवंशपुराण को भी बनाया गया है।

स्वयंभू छन्द–यह स्वयंभू की छन्द विषयक महत्त्वपूर्ण कृति है। यह अपभ्रंश को बहुत ही महत्त्वपूर्ण देन है। यह ग्रन्थ प्रो. वेलंकर द्वारा सम्पादित होकर प्रकाशित हो चुका है। इसमें प्राकृत और अपभ्रंश के छन्दों का अनेक कवियों की कृतियों के उदाहरण के साथ विवेचन किया गया है।

उक्त तीन कृतियों के अतिरिक्त स्वयंभू की दो अन्य कृतियों के उल्लेख भी प्राप्त होते हैं–पंचमीचरिउ एवं कोई व्याकरण ग्रन्थ। यद्यपि ये ग्रंथ अनुपलब्ध हैं, किन्तु पंचमीचरिउ की अंतिम प्रशस्ति में इनका संकेत इसप्रकार प्राप्त होता है–

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

चहमुह-सयंभुएवाण वण्णियत्थं अचक्खमाणेण।

तिहुयण-सयंभु-रइयं पंचमिचरियं महच्छरियं।

तावच्चिय सच्छंदो भमइ अवब्भस-मच्च-मायंगो।

जावण सयंभुवायरण अंकुशो पडइ।।

सच्छद्द-वियड-दाठो छंदालंकार-णहर दुप्पिक्को।

वायरण केसरड्ढो सयंभु-पंचाणणो जयउ।। (पउमचरिउ की प्रारंभिक प्रशस्ति)

महापुराण—यह महाकवि पुष्पदंत की विशाल कृति है। यह कवि अपभ्रंश के द्वितीय महान कवि हैं। उनका भाषा पर असाधारण अधिकार था। वे जैनधर्म के बड़े श्रद्धालु और काव्यकला से भव्यों के चित्त को अनुरंजित एवं मुग्ध करने वाले थे तथा प्राकृत, संस्कृत और अपभ्रंश भाषा के महापंडित थे। ये काश्यप[1] गोत्रोत्पन्न ब्राह्मण थे तथा इनके पिता का नाम केशवभट्ट एवं माता का नाम मुग्धा देवी था। कवि पहले शैव थे, परन्तु बाद में किसी दिगम्बर विद्वान् के सान्निध्य में जैन धर्म का पालन करने लगे थे। वे स्वाभिमानी, धनहीन तथा दुर्बल शरीर के व्यक्ति थे। स्वयं कवि ने अपने को अभिमान मेरु, अभिमानचिह्न, काव्यरत्नाकर, कविकुलतिलक, सरस्वतीनिलय एवं कविपिसल्ल (कविपिशाच) आदि उपाधियों से विभूषित किया है।

इनके दो आश्रयदाता का उल्लेख प्राप्त होता है—प्रथम भरत एवं द्वितीय उनका पुत्र नन्न; क्योंकि इन्होंने भरत[2] के अनुरोध पर विशाल ग्रन्थ महापुराण का प्रणयन किया था एवं पुनः भरत के पुत्र नन्न के संरक्षण में 'णायकुमार चरिउ' और 'जसहरचरिउ' की रचना की थी। भरत एवं नन्न दोनों ही मान्यखेट और राष्ट्रकूटवंशी राजा कृष्णराज के अमात्य थे।

महापुराण का रचनाकाल 965ई. है। अतः महाकवि पुष्पदंत का समय 10वीं शताब्दी सिद्ध होता है। इनकी तीन प्रमुख रचनाएँ हैं—1. त्रिसट्ठिमहापुरिसगुणालंकार अथवा महापुराण, 2. णायकुमारचरिउ, और 3. जसहरचरिउ।

महापुराण दो खंडों में विभाजित है—आदिपुराण एवं उत्तरपुराण। आदिपुराण में 37 संधियां हैं, जिनमें आदि ब्रह्मा ऋषभदेव का चरित वर्णित है और उत्तरपुराण की 65 संधियों में अवशिष्ट 23 तीर्थंकरों, 12 चक्रवर्तियों, नवनारायण, नवप्रतिनारायण आदि 63 शलाका पुरुषों का कथानक है। कुल संधियां 102 हैं, जिनकी अनुमानित श्लोक संख्या बीस हजार है। कवि ने यह ग्रन्थ शक संवत् 887 वि.सं. 1022 में समाप्त किया था। इसका सम्पादन डॉ. पी.एल. वैद्य ने किया है।

1. कसणसरीरे सुड्ढकुरुवे मुद्धाएविगब्भ संभूवे।
कासव गोत्ते केसव पुत्ते कइकुलि तिलयं सरसइ णिलएं।। महापुराण 38/4/2–4

2. तं णिसुणेवि भरहे वुत्तु ताव, भो कइकुल तिलय विमुक्कगाव। महा. 1/8/1

www.vitragvani.com

णायकुमार चरिउ–यह महाकवि पुष्पदंत की द्वितीय रचना है। यह एक खण्डकाव्य है, जिसमें पंचमीव्रत के फल को व्यक्त करने के लिए एक सुन्दर कथानक दिया हुआ है। कथा नौ संधियों में वर्णित है। इसमें नागकुमार के चरित्र का अच्छा चित्रण किया गया है, जिसमें नागकुमार के अनेक विवाहों का वर्णन, उसका सौन्दर्य वर्णन, रूपवर्णन, जलक्रीड़ा, प्रेमजनित हर्षविषाद, ईर्ष्या-द्वेष आदि प्रसंगों के वर्णन बड़े ही काव्यात्मक हैं। यह रचना बड़ी सुन्दर, सरस और चित्ताकर्षक है। इस ग्रन्थ का सम्पादन डॉ. हीरालाल जैन जी ने किया है।

जसहरचरिउ–यह भी एक खण्डकाव्य है। जो पुष्पदंत द्वारा रचित है। इस ग्रन्थ की रचना का मुख्य उद्देश्य हिंसावृत्ति का निवारण और अहिंसा का प्रसारण है। इस उद्देश्य को सफल करने के लिए ही यशोधर के चरित की कथा कही गई है। इसमें मात्र चार संधियां हैं।

भविसयत्तकहा–यह कवि धनपाल की एकमात्र कृति है। धनपाल दिगम्बर[1] जैन मत के अनुयायी एवं धक्कड़ वैश्य थे। धनपाल का विशेष परिचय प्राप्त नहीं होता है। लेकिन उनके पिता के नाम माएसर (मातेश्वर) एवं माता का नाम धणसिरि (धनश्री) था, जिसकी पुष्टि ग्रन्थ की प्रशस्ति के अन्त से होती है–

धक्कड़ वणिवंसे माएसरहो समुब्भविण।
धणसिरिहो वि सुतेण विरहउ सरसइ संभविण।। भ.क. 1/9

उनका स्थितिकाल विवादास्पद है। विद्वानों ने भाषा के आधार पर धनपाल का समय 10वीं शताब्दी माना है। डॉ. गुणे ने इस तथ्य की पुष्टि के लिए दो कारण दिये हैं–प्रथम भाषा के रूप में तथा दूसरा व्याकरण के विचार से। इनकी भाषा में शैथिल्य एवं अनेकरूपता के दर्शन होते हैं। इससे अनुमान किया जाता है कि इसकी रचना तब हुई होगी, जब अपभ्रंश बोलचाल की भाषा थी। हेमचन्द्र का समय 12वीं सदी है। तब तक अपभ्रंश रूढ़ हो चुकी थी।[2] हर्मन याकोबी का भी यही मत है कि धनपाल का समय 10वीं सदी है एवं इसका आधार भाषा को ही माना है। प्रो. भायाणी के अनुसार भी धनपाल 'पउमचरिउ' से प्रभावित थे। विशेषतः 'भाविसयत्तकहा' के आदिम कडवकों में यह प्रभाव अधिक लक्षित होता है। इस दृष्टि से धनपाल स्वयंभू के परवर्ती सिद्ध होते हैं।[3] अतः कहा जा सकता है कि धनपाल का समय लगभग 10वीं शताब्दी है।

'भविसयत्तकहा' कथाकाव्य की यह विशेषता है कि इसमें कथानायक के रूप में कोई राजा अथवा राजकुमार को न लेकर साधारण वणिक्पुत्र 'भविष्यदत्त' को लिया है, जिससे कथा में लोकचेतना की अभिव्यक्ति होती है।[4] अतः धनपाल लोकहृदय के कवि थे। उन्होंने काव्य को मानव हृदय के अधिक निकट रखा है। डॉ. देवेन्द्र कुमार शास्त्री के अनुसार थोड़ी–सी अतिरंजना और धार्मिक अंश को छोड़कर उनकी रचना लोकदृश्य के बहुत निकट है। डॉ. विन्टरनित्ज ने

1. भविसयत्तकहा 9/20, 'भंजवि जेण दिगम्बरि लायउ', 2. अपभ्रंश साहित्य : परम्परा और प्रवृत्तियां, पृ. 29
3. अपभ्रंश और अवहट्ट : एक अन्तर्यात्रा, पृ. 71, 4. 'महाकवि धनपाल की काव्यप्रतिमा', डॉ. योगेन्द्रनाथ शर्मा 'अरुण', पृ. 24, जैन विद्या, अंक–4, 'महाकवि धनपाल विशेषांक', जैन विद्या संस्थान, श्री महावीरजी

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

इसे रोमांस काव्य की संज्ञा दी है।[1] धनपाल ने भविसयत्तकहा में वणिक्पुत्र भविष्यदत्त की भाग्य गाथा का वर्णन किया है।

करकण्डचरिउ–यह कृति मुनि कनकामर द्वारा रचित है। जैन मुनि परम्परा में आत्म परिचय की अभिव्यक्ति कदापि नहीं रही है। इसी परम्परा में मुनिश्री कनकामर का नाम भी लिया जाता है। मुनिश्री ने प्रसंगवशात् स्वविषय में जीवन–बिन्दुओं का स्पर्शमात्र किया है, तथापि उनका जीवनवृत्त स्पष्ट–सा है। कवि ने ग्रन्थ की हर सन्धि के अन्त में अपना नाम दिया है। ग्रन्थ के अंत में जो प्रशस्ति दी गई है, उससे कवि की जाति, धर्म, गुरु आदि के सम्बन्ध में जानकारी मिलती होती है। ये मंगलदेव के शिष्य थे। ग्रन्थ के आदि–अन्त में कवि ने गुरु–वन्दना की है।[2]

अपने परिचय में कनकामर ने अपने को ब्राह्मणवंश में चन्द्रऋषि गोत्रोत्पन्न कहा है। कालान्तर में कविश्री देहभोगों से विरक्त होकर दिगम्बर मुनि बन गये। तब से उनका नाम मुनि कनकामर हो गया। यात्रा करते हुए वह आसाइस नगरी में पहुंचकर चरित्रात्मक महाकाव्य 'करकण्डचरिउ' की रचना की। प्रो. हीरालालजी के अनुसार यह नगर म.प्र. में है।

प्रो. हीरालाल जैन के अनुसार ग्रन्थ का समय 1065 ई. के आस-पास है। इनकी एकमात्र कृति करकंडचरिउ है, जो 10 संधियों में विभक्त है। इसमें करकण्डु के चरित्र के माध्यम से जैन धर्म की महत्ता प्रदर्शित की है। इस ग्रंथ का सम्पादन प्रो. हीरालालजी ने किया है।

जम्बूस्वामिचरिउ–इसके रचयिता वीरकवि हैं। ये अपभ्रंश परम्परा के एक प्रसिद्ध व्यक्तित्व हैं। वे मालवा देश के अन्तर्गत 'गुलखेड' नामक ग्राम के निवासी थे। इनके पिता अपभ्रंश के ख्यातिप्राप्त कवि देवदत्त और माता श्रीमती संतु थी। इनका गोत्र-वंश लाड वागड था। कवि के तीन सहोदर[3] (भाई) थे। उनके शुभ नाम इस प्रकार है–सीहल्ल, लक्षणांक तथा जसई। उनकी अनेक पत्नियों एवं एक पुत्र होने के भी उल्लेख प्राप्त होते हैं।

कवि काव्य, व्याकरण, तर्क और छन्दशास्त्र के पारगामी विद्वान् थे। साथ ही जैन विद्या एवं जैनेतर विद्या में अपने पुरुषार्थ से निपुणता प्राप्त की थी। आपने अनुयोग अनुशीलन में अपने पुरुषार्थ का उपयोग लगाया। आप द्रव्यानुयोग, चरणानुयोग, करणानुयोग आदि विषयों के विज्ञ बन गये। साथ ही जैनेतर विद्या एवं ग्रंथीय ज्ञान का अर्जन भी किया। आपने बाल्मीकि रामायण, महाभारत, शिवपुराण, विष्णुपुराण, भरतनाट्यशास्त्र, सेतुबंध आदि का विधिपूर्वक स्वाध्याय किया।[4] इस प्रकार वीरकवि काव्य, व्याकरण के साथ-साथ जैन विद्या एवं जैनेत्तर विद्या में सिद्धहस्त विद्वान् थे।

---

1. हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर, भाग–3, पृ. 533, 2. करकंडचरिउ 1/2/11, 10/2813, 3. जस्स य पसण्णवयणा लहुणो सुमइ सहोयरा तिण्णि। सीहल्ल, लक्खणंका जसइ नामे त्ति विक्खाया।।7।। (प्रशस्ति जम्बू. च.)
4. "जंबूस्वामीचरिउ के यशस्वी महाकवि वीर का व्यक्तित्व"–डॉ. महेन्द्र सागर प्रचंडिया, जैन विद्या–5-6, पृ. 10, "वीर कवि विशेषांक", जैन विद्या संस्थान, श्री महावीरजी

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

इनका रचनाकाल माघ शुक्ल पक्ष दशमी वि.सं. 1076 है।[1] कवि के पिता देवदत्त भी कवि थे, जिन्होंने पद्धडियाबन्ध में 'वरांगचरित' नामक काव्य की रचना की थी।

आपकी एकमात्र कृति 'जम्बूस्वामिचरिउ' है, जिसमें जम्बूस्वामी का चरित वर्णित है। यह 11 संधियों में विभाजित है। इसकी रचना करने में कवि को एक वर्ष का समय लगा था।

पउमसिरिचरिउ–कवि धाहिल ने 'पउमसिरिचरिउ' (पद्मचरित) नामक धार्मिक काव्य की रचना की है। इनका उपनाम 'दिव्यदृष्टि' है। इनके जीवन, समय तथा जन्मस्थान के सम्बन्ध में सब कुछ अज्ञात है। ग्रन्थ की अंतिम प्रशस्ति से ये शिशुपालवध के रचयिता महाकवि माघ के वंशज सिद्ध होते हैं, जिनका समय 8वीं सदी है। यदि कवि धाहिल माघ की चौथी या पांचवीं पीढ़ी में उत्पन्न हुए हो तो इनका समय 10वीं शताब्दी होगा। 'पउमसिरिचरिउ' का हस्तलेख वि.सं. 1191 का प्राप्त हुआ है, जिसके आधार पर तथा भाषा एवं शैली की दृष्टि से धाहिल का स्थितिकाल 10वीं सदी के ही आस-पास सिद्ध होता है। कवि ने पउमसिरिचरिउ में पद्मश्री के पूर्व जन्मों की कथा वर्णित की है। यह विकट स्थिति में भी धर्मरत दिखाई गई है। फलतः उसे मोक्ष की प्राप्ति होती है। इसमें कवि ने पद्मश्री के सौन्दर्य, प्रेम-प्रसंग, परिणय, मिलन आदि का ऐहिकतापरक वर्णन किया है, साथ ही सूर्यास्त, चन्द्रोदय आदि का भी मोहक चित्र उपस्थित कर उन्हें कथा प्रसंग से सम्बद्ध कर दिया।

सुदंसणचरिउ–महाकवि नयनन्दि ने धारानगरी में सुदंसणचरिउ की रचना की थी। महाकवि अपभ्रंश के प्रकाण्ड विद्वान् एवं उत्कृष्ट कोटि के कवि माने जाते हैं। कवि ने अपने गुरु का नाम माणिक्यनंदी दिया है। कवि काव्य शास्त्र में निष्णात थे, साथ ही संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषा के विशिष्ट विद्वान् थे। इन्होंने सुदंसणचरिउ की प्रत्येक सन्धि के अंतिम घत्ता में अपना नाम दिया है। सुदंसणचरिउ में कवि ने सुदर्शन के चरित्र का वर्णन किया है। इसका समय 11वीं शताब्दी है एवं एक अन्य रचना सकलविधिविधान भी है।

सिरिवालचरिउ–पं. कवि नरेसन ने सिरिवालचरिउ में चंपानगरी के राजा श्रीपाल और उनकी धर्मपत्नी मैना सुन्दरी का चरित्र-चित्रण किया है। द्वितीय रचना 'जिणरत्तिविहाण' अर्थात् 'जिनरात्रिकथा' है, जिसे वर्धमान कथा भी कहा जाता है। जिस व्रत से रात्रि में भगवान् महावीर ने अविनाशी पद प्राप्त किया, इसी व्रत की कथा 'शिवरात्रि' के ढंग पर रची गई। उस रात्रि में जनता को इच्छाओं पर नियंत्रण रखते हुए आत्म-शोधन का प्रयत्न करना चाहिए।

उक्त कृति 'सिरिवालचरिउ' का सम्पादन डॉ. देवेन्द्र कुमार जैन ने किया है, जिसका

1. वरिसाण सयचउक्के सत्तरजुत्ते जिणेंदवीरस्स। णिव्वाणा उववण्णो विक्कम कालस्स उप्पत्ती।।1।।
विक्कम णिव कालाउ छाहत्तर दस सएसु वरिसाणं।
माहम्मि सुद्धयक्खे दसम्मी दिवसम्मि संतम्मि।।2।। (जम्बूस्वामिचरिउ, अंतिम प्रशस्ति)

प्रकाशन 1974 में भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन से हुआ है। इसका रचनाकाल 15वीं और 16वीं सदी के मध्य माना जा सकता है।

वरंगचरिउ—जैन प्रबंधकाव्य परम्परा में वरंगचरिउ का भी विशिष्ट स्थान है। पं. तेजपाल द्वारा रचित वरंगचरिउ एक चरितकाव्य है, जिसमें कुमार वरांग के जन्म से लेकर अंतिम सल्लेखना तक वर्णन किया गया है। इसका चार संधियों में विभाजन किया गया है, कुल 83 कडवक हैं। इसका समय वि.सं. 1507 है।

2. बौद्धों की अपभ्रंश रचनाएँ

अपभ्रंश साहित्य की मुक्तक काव्य परम्परा में बौद्ध सिद्धों की अपभ्रंश रचनाएँ भी आती हैं। इन रचनाओं के रचयिता बौद्ध सिद्ध हैं, जिन्होंने अनेक दोहे और गीतों की रचना की। पं. राहुलजी की हिन्दी काव्यधारा में सिद्धों के अनेक दोहों और गीतों का संग्रह दिया हुआ है।

इनकी रचनाएँ दो रूपों में मिलती हैं—1. धर्म के सिद्धान्तों का विवेचन और 2. उपदेश तथा खण्डन-मण्डन। इन रचनाओं से पता चलता है कि सिद्धों का आविर्भाव के कारण बौद्ध-साधना के अनेक नये रूप प्रकट हुए। यह प्रतिपादन निम्न प्रकार से जाना जा सकता है।

बौद्ध धर्म मुख्य दो धाराओं में विभक्त है—हीनयान और महायान। हीनयान और महायान में एक मुख्य भेद निर्वाण—स्वरूप के विषय में है। महायान के चिंतक नागार्जुन ने निर्वाण को शून्य कहा और लोकमंगल के लिए चित्तवृत्ति की प्राप्ति को 'बोधिसत्त्व'।[1] बौद्धधर्म की महायान शाखा का प्रवर्तन वज्रयान, मंत्रयान, कालचक्रयान, सहजयान तथा तंत्रयान आदि के रूप में हुआ। शून्य के सूक्ष्म विचार को समझना दुरूह था। धर्मगुरुओं ने शून्य के लिए निराला शब्द का अविष्कार किया। बोधिसत्त्व इसी निरात्मा में लीन होकर महासुख में डूबा रहता है। इस प्रकार महासुख के परिणामस्वरूप अर्थात् महायान से वज्रयान की उत्पत्ति हुई। धीरे-धीरे वज्रयान की इस धारा में अनाचार व्याप्त हो गया। इसमें से ही एक शाखा सहजयान के नाम से प्रसिद्ध हुई, जो इसके साधक हुए, वही सिद्ध कहलाए।[2]

सिद्धों की कुल संख्या 84 है, जिनमें प्रमुख सरहपा और कण्हपा का परिचय इसप्रकार है—

1. सरहपा—सरहपा जन्मना ब्राह्मण थे, जिन्होंने भिक्षु वृत्ति अपना ली थी। वह जन्म से ही वेद-वेदांगों के ज्ञाता थे, मध्यप्रदेश में जाकर इन्होंने त्रिपिटकों का अध्ययन किया, बौद्धधर्म में दीक्षा ली और नालन्दा में आकर आचार्य रूप में रहने लगे थे। इनका नाम सरहपा रखने का कारण यह था कि वह वज्रयान से विशेष प्रभावित हुए और एक सर (बाण) बनाने वाली कन्या की

1. अपभ्रंश : एक परिचय, पृ. 23, 2. वही, पृ. 23

www.vitragvani.com

महामुद्रा (जोगिनी) बनाकर जंगल में रहने लगे।

राहुलजी ने इनका काल बंगाल में पालवंशीय राजा गोपाल धर्मपाल 750-806 ई. का समकालीन बताते हुए 760ई. माना है। पं. हरप्रसाद शास्त्री के अनुसार इनके कई नाम मिलते हैं–सरोव्रज, पद्मव्रज, राहुलभद्र आदि। इनके प्रधान शिष्य शबरपा थे एवं यह उदारमना व्यक्ति थे। इनके प्रमुख ग्रंथ इस प्रकार हैं–1. कायाकोष, 2. अमृतवज्रगीती, 3. चित्तकोष-अज-वज्रगीति, 4. डाकिनी-गुह्य-वज्रगीति, 5. दोहाकोष उपदेशगीति, 6. दोहकोष, 7. तत्त्वोपदेश–शिखरदोहाकोष, 8. भावनाफल-दृष्टिचर्या दोहा कोष, 9. बसन्ततिलक दोहाकोष, 10. महामुद्रोपदेश दोहाकोष, 11. सरहपाद गीतिका।[1]

2. कण्हपा–कण्हपा का जन्म कर्नाटक प्रान्त में हुआ था। इनके शरीर का रंग काला होने के कारण इनका नाम कृष्णपाद कहा जाता है। राहुलजी इन्हें ब्राह्मण जाति में उत्पन्न और देवपाल का समकालीन मानते हैं। इनका समय 806-849 ई. माना जाता है। इसप्रकार इनका काल 840 ई. माना है। इनके गुरु का नाम जालन्धर पाद था और सोमपुरी बिहार में बहुत दिनों तक इनका निवास रहा। इनकी निम्न कृत्तियां प्राप्त होती हैं–1. गीतिका, 2. महाहुंठन, 3. बसंत तिलक, 4. असम्बन्ध दृष्टि, 5. वज्रगीति और 6. दोहाकोष।

चौरासी सिद्धों की रचनाओं में प्रायः मिलता-जुलता प्रतिपादन प्राप्त होता है। अविद्या से मुक्त होकर अपने ही अन्तस् में रहने वाले सहजानन्द की उपलब्धि इनका परम लक्ष्य है। अन्य मार्गों को टेढ़ा बताकर सहज मार्ग को सीधा कहा गया है और गुरु की आवश्यकता को अनिवार्य बताया गया है। इन सिद्धों की रचनाओं में छन्दों की विविधता नहीं के बराबर है। धर्मगीतों में गेय पद है और 'दोहाकोश' का प्रधान छन्द 'दोहा' है। कुछ सोरठे व अन्य छन्द भी हैं। सिद्धों की भाषा के दो रूप हैं–पूर्वी अपभ्रंश और शौरसेनी अपभ्रंश। इनका समय सम्वत् 800 से 1000 तक है।

3. शैव अपभ्रंश साहित्य

कश्मीरी शैव संप्रदाय की कुछ रचनाएँ अंशतः अपभ्रंश में मिलती हैं, जिनका परिचय इसप्रकार है–

तंत्रसार–इस परम्परा में अभिनव गुप्त का 'तंत्रसार' प्रमुख है, जिसमें व्यक्ति को परम शिव मानकर, इसमें शैवमत का विवेचन किया गया है। यह ग्रंथ संस्कृत में लिखा गया है, परन्तु इसके अध्ययन के अन्त में प्राकृत, अपभ्रंश में सम्पूर्ण अध्याय का सार दिया गया है। इसका रचनाकाल

1. हिन्दी काव्यधारा, पृ. 2–3

www.vitragvani.com

1014 ई. के आसपास है। द्वितीय भट्ट वामदेव माहेश्वराचार्य की रचना 'जन्म-मरण विचार' है, जिसमें परमशिव की शक्ति और उसके प्रसार का विवेचन है। इसमें एक दोहा अपभ्रंश में है। इसका रचनाकाल 11वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है। तृतीय शितिकण्ठाचार्य की कृति महानयप्रकाश (15वीं सदी) में अपभ्रंश के 94 पद्य हैं। यद्यपि उक्त शैव सम्प्रदाय की रचनाओं में साहित्यिकता का अभाव है, लेकिन भाषा और भावधारा की दृष्टि से इनका विशेष महत्त्व है।

4. ऐहिकतापरक अपभ्रंश साहित्य

अपभ्रंश भाषा का कुछ साहित्य ऐसा भी प्राप्त होता है, जिसमें धर्म विशेष का वर्णन नहीं है, इसी साहित्य का नाम ऐहिकतापरक अपभ्रंश साहित्य है। इसका वर्गीकरण दो प्रकार से किया जा सकता है–1. वह पद्य जो अलंकार, छन्द और व्याकरण की पुस्तकों में उद्धृत हैं एवं 2. प्रबन्धात्मक रचनाएँ।

प्रथम वर्ग के अन्तर्गत महाकवि कालिदास के 'विक्रमोर्वशीय' के चतुर्थ अंक के अपभ्रंश–पद्य हैं, जो प्रकृति वर्णन आदि के दृष्टि से अत्यन्त सुन्दर एवं सजीव है। वैयाकरणों में सर्वप्रथम चण्ड ने अपभ्रंश के दो दोहे उद्धृत किये हैं। आनन्दवर्धन के ध्वन्यालोक में एक दोहा, भोज के सरस्वती-कंठाभरण में 18 अपभ्रंश पद्य, रुद्रट के काव्य अलंकार में अपभ्रंश के कुछ दोहे, हेमचन्द्र के अपभ्रंश व्याकरण में उद्धृत दोहे, प्राकृत पैंगलम्, मेरुतुंगाचार्य द्वारा रचित प्रबन्ध चिन्तामणि, राजशेखर सूरिकृत प्रबंधकोष आदि में भी अपभ्रंश के दोहे मिलते हैं।

उक्त रचनाएँ शृंगार, प्रेम, वैराग्य, नीति एवं सूक्ति आदि की विविधता एवं अलंकारिक छटा से परिपूर्ण हैं।

ऐहिकतापरक अपभ्रंश साहित्य के द्वितीय वर्ग प्रबन्धात्मक काव्य में ग्रन्थों की संख्या कम है। इनमें एक ही रचना का उल्लेख प्राप्त होता है–अब्दुल रहमान का सन्देशरासक।

सन्देशरासक–यह कवि अब्दुल रहमान की प्रसिद्ध कृति है। अपभ्रंश काव्यधारा में सन्देशरासक की रचना बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। सन्देशरासक एक सुन्दर प्रेमकाव्य है। सन्देशरासक में 223 छन्द हैं। यह एक खण्डकाव्य है, जो तीन प्रक्रमों में विभाजित है। प्रथम प्रक्रम में तेईस (23) छंदों में मंगलाचरण, कविपरिचय, ग्रन्थ रचना और आत्म-निवेदन है। वास्तविक कथा द्वितीय प्रक्रम से प्रारंभ होती है। "इसकी मर्मस्पर्शिता की तुलना संस्कृत में मेघदूत, अपभ्रंश में मंजुरास, 'ढोलामारुरा दूहा' तथा बीसलदेवरासो जैसे कुछ काव्यग्रंथों से ही की जा सकती है।"[1]

इस काव्य में राजस्थान की एक विरहिणी नायिका के अपने प्रिय पति के विरह में व्यथित होने की कथा है। इसमें विरह का बहुत ही रसपूर्ण वर्णन किया गया है।

1. अपभ्रंश और अवहट्ट : एक अन्तर्यात्रा, पृ. 104

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

(v) वरंगचरिउ का महत्त्व –

अपभ्रंश भाषा में अनवरत काव्य साहित्य लिखा जाता रहा है। अपभ्रंश प्राकृत का बिगड़ा हुआ रूप है अर्थात् जब प्राकृत ने मूल स्वरूप को छोड़ दिया अथवा प्राकृत में वैकल्पिक प्रयोगों का प्रचलन अत्यधिक बढ़ गया, तब उस भाषा को अपभ्रंश नाम दिया गया। इस भाषा में कथा तथा चारित्र प्रधान काव्यों का सृजन सर्वाधिक मात्रा में हुआ है, साथ ही पुराण एवं अध्यात्मपरक ग्रन्थों का भी प्रणयन किया गया।

जैन साहित्य की समृद्धता का अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि आज जितना साहित्य प्रकाशित होकर हमारे सामने उपलब्ध है, उससे कई गुना अधिक साहित्य पाण्डुलिपियों के रूप में ग्रन्थभण्डारों में संग्रहीत है। आज आवश्यकता है यथानुसार उनका सम्पादन करके समाज के समक्ष विलुप्त ज्ञान राशि को उजागर किया जाए। आगम साहित्य के अतिरिक्त सैकड़ों ग्रन्थ जो आज धर्म, दर्शन, अध्यात्म, आचार एवं नीति आदि विविध विधाओं का ज्ञानवर्धन कर रहे हैं, उससे भी अधिक सामग्री स्रोत कथा, प्रकरण, व्याख्या, सैद्धान्तिक विवेचनों से सम्बन्धित विधाओं का ज्ञान कराने में समर्थ कही जा सकती हैं। पाण्डुलिपियों का संरक्षण करने वाले ग्रन्थभंडार हमारी सांस्कृतिक धरोहर के केन्द्र हैं। प्राकृत की परवर्ती परम्परा में अपभ्रंश भाषा में जो साहित्य आज अप्रकाशित है, उनमें से पन्द्रहवीं शताब्दी के रचनाकार ''पं. तेजपाल की कृति वरांगचरिउ'' के पाठ-सम्पादन का अपना विशेष महत्त्व है।

पाठ सम्पादन का यह कार्य मौलिक है। यह ग्रन्थ सम्पादित होकर प्रकाश में आया। यह सबसे उपयोगी बात है क्योंकि आज ग्रन्थभण्डारों में न जाने कितने ग्रंथ पड़े हुए हैं, जो जीर्ण-शीर्ण हो रहे हैं और नष्ट होकर धूल बन जाते हैं, उनका कोई उपयोग नहीं हो पाता। यह ग्रन्थ किसी की बाट जोहते रहते हैं कि कोई आए और मुझे प्रकाश में लाये। इस प्रकार यह ग्रन्थ प्रकाश में आया और समाज के समक्ष प्रस्तुत हुआ, यह प्रथम उपयोगिता है। दूसरी बात इस शोधपूर्ण प्रस्तावना के कारण समाज एक नवीन कृति से परिचित होगा, जो समाज के लिए साहित्यिक अवदान कहा जा सकता है। तीसरी बात शोधार्थी एवं विद्वत् वर्ग के लिए यह सन्दर्भ (References) के लिए उपयोगी होगा। चौथी बात ग्रन्थ में तत्कालीन सामग्री भी प्राप्त होती है, जिसमें उस समय की संस्कृति के बारे में पता चलता है, जिसके कारण एक नया शोध का Topic भी बनाया जा सकता है, जिसमें उसके आर्थिक, राजनीतिक एवं धार्मिक पक्ष को लेकर, साथ ही भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन आदि को लेकर एक नया शोध-प्रबंध लिखा जा सकता है।

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

2. वरंगचरिउ : एक परिचय

I. प्रति परिचय

वरंगचरिउ की कुल मिलाकर 3 हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हुईं, जो करौली (सवाई माधोपुर), अजमेर एवं नागौर के जैन शास्त्र भण्डारों में विद्यमान हैं। उन्हें क्रमशः K, A, तथा N, संज्ञा दी गई है। तीनों प्रतियां पूर्ण हैं, मात्र करौली (सवाई माधोपुर) प्रति में प्रशस्ति नहीं दी गई है। शेष प्रतियों में दीर्घ प्रशस्ति प्राप्त हुई है, जिनका परिचय इस प्रकार है–

K, प्रति करौली (सवाई माधोपुर) पंचायती दि. जैन मंदिर से प्राप्त हुई, जिसमें 56 पत्र हैं। यह पूर्ण प्रति है। इसका आकार 11x4.5 है। इस प्रति की लिखावट गहरी एवं मोटी है। इसमें पहले पेज में 9 पंक्तियाँ हैं इसके अलावा अन्य प्रत्येक पेज में 10 पंक्तियां हैं। कुल 1109 पंक्तियां है। इसमें रचयिता का नाम तेजपाल एवं उनके गुरु विशालकीर्ति का नाम प्रारम्भ में एवं प्रत्येक संधि के अंत में प्राप्त हुआ है। समय का उल्लेख नहीं है। प्रशस्ति भी प्राप्त नहीं होती है। यह प्रति करौली के परम मित्र अनुपम चतुर्वेदी (MSW-Student) के माध्यम से प्राप्त हुई।

प्रति का आरम्भ इसप्रकार है –

नम श्री वीतरागाय। आचार्य श्री विसालकीर्ति गुरुभ्योनमः।।
पणविवि जिणईसहो..।।

इसका अन्त इसप्रकार है –

घत्ता – जो णरूदय वंतउ णिम्मलचित्तउ णिव्वु जि जिणु आराहइ।
जो अप्पउ साइ वि केवलु पायवि मुत्ति रमणि सोसाहइ।।

K, प्रति की विशेषताएं –

1. संयुक्त 'ण' बीच में ही एक बारीक आड़ी रेखा खींचकर दर्शाया गया है।
2. पूर्ण प्रति में चाहे 'छ' संयुक्त अवस्था में या एकत्व रूप में सर्वदा एक ही बनावट (छ) दर्शायी गई है।
3. संयुक्त 'क्ख' एवं 'ग्ग' की बनावट 'रक' एवं 'ग्र' के रूप में पाई जाती है।

www.vitragvani.com

4. आदि में सर्वदा णकार का ही प्रयोग हुआ है।
5. अशुद्ध वर्णों/अक्षरों एवं मात्राओं को काली स्याही से मोटी पंक्ति खींचकर मिटाया गया है।
6. अनावश्यक अनुस्वार की प्रवृत्ति अधिक है।
7. दु और हु में अन्तर पकड़ना कठिन प्रतीत होता है।
8. भूल से छूटे हुए पदों अथवा वर्णों को हंस पद देकर उन्हें बगल, ऊपर या नीचे अर्थात् यदि अक्षर नीचे की ओर हो तो नीचे की ओर ही दिया गया है साथ ही चिन्ह एवं पंक्ति सं. देकर लिखा गया है। अर्थ स्पष्ट करने के लिए कहीं कहीं शब्दों का अर्थ भी दिया गया है, जहां बराबर (=) का चिह्न लगाया गया है।
9. 'ष' इस आकृति को ख पढ़ा जाता है लेकिन कहीं–कहीं लिपिकार की गलती से 'स' के लिए 'ष' का प्रयोग हुआ है, यथा–सुषेण।

A, प्रति :–

A, प्रति अजमेर स्थित भट्टारक हर्षकीर्ति शास्त्रभण्डार से प्राप्त हुई। यह प्रति जीर्ण अवस्था में है, किन्तु पूर्ण प्रति है। इसमें 56 पत्र है। इसका आकार 11 x 5 है। इसका भण्डारण क्रमांक–"1100 एवं ग्रंथ क्रमांक–104 है। इसमें प्रत्येक पेज में 10 पंक्तियां एवं 35 अक्षर हैं।" प्रतिलिपि काल वि. सं. 1607 दिया हुआ है। इसमें दीर्घ प्रशस्ति प्राप्त होती है, जिसमें रचयिता के परिवार, गोत्र एवं गुरु परम्परा का उल्लेख है।

प्रति का आरम्भ इस प्रकार है :–

ऊँ नमो वीतरागाय।

पणविवि जिणईसहो जियवम्मीसहो केवलणाणपयासहो।
सुरनरखेयरवुहणुय पय पयरूह वसुकम्मरि विणासहो।।छ।।

अन्त में प्रशस्ति है :–

संवत् १६०७ वर्षे वैशाखवदि दिन अमरसर शुभस्थाने। राय श्री सूयमल्लविजयराज्ये।। श्री मूलसंघे नंद्याम्नाये। बलात्कारगणे। सरस्वतीगच्छे। श्री कुन्दकुंदाचार्यान्वये।। भट्टारक श्री जिनचंद्र। तत्पट्ट....श्री प्रभाचंद्र। मंडण श्री रत्नकीर्ति तत् शिष्य सिद्धांतधर्म्मामृत पयोधरान् मंडलाचार्य श्री भुवनकीर्ति तदाम्नाये खंडेलवालवंशे। सावडगोत्रे। सा सूंप तस्यभार्या रूहै। तस्य पुत्राचत्वारः। प्रथम पुत्र संघभारधुरंधर सा. रणमल्ल। द्वि. पुत्र सा. वल्लालु। त्रि. पुत्र सा. ईसर। चतु. पुत्र साहपोल्हण।। एतेषां मध्ये सा. रणमल्ल। तस्यभार्या रयणादे।। तत् पुत्रात्रिय। प्रथम पुत्र सा. ताल्हू द्वितीय पुत्र सा. धरमा। त्रि. पुत्र सा. मठू। सा. ताल्हू भा. केलूं तस्य पुत्र त्रिय। प्रथम पुत्र भृणां

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

(मृणा)। त्रि. पु. सा. श्रीवंत। तस्यभार्या सुरुपदे।। एतान् मध्ये गुरुवार्या धैर्यगांभीर्य। चातुर्यादि गुणगणवि निर्मित शरीर श्रृंगारहारेण सा. तेजपाल तेनेदं शास्त्रं कृतं पश्चात् लिखाप्पि। मंडलाचार्य श्री भुवनकीर्ति। तत् शिष्य आचार्य श्री विशालकीर्ति तस्मै सदपात्रायप्रदत्तं। शुभंभवतु। ज्ञान्वान ज्ञानदानेन। निर्भयोदानतः। अन्नदानात् सुखीनित्यं। नित्याधिभेषजात् भवेत्।।2।।श्री।।।। लेखक पावकयो शुभं भवतु।

A प्रति की विशेषताएं –

1. इस प्रति में नकार के स्थान पर नकार एवं णकार दोनों के प्रयोग मिलते है। यथा – नारि, नारियल आदि।
2. इस प्रति में भी 'क्ख' की बनावट 'रक' एवं 'ग्ग' की 'ग्र' के रूप में पाई जाती है।
3. इस प्रति में संयुक्त 'छ' बनावट यह है, लेकिन एकत्व या आदि में 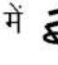 इस रूप में पाया जाता है।
4. दीर्घ ऊकार की बनावट 'अ' रूप में प्राप्त होती है। जैसे–कोअहलु, पाठ होना चाहिए था, किन्तु है – 'कोऊहलु'।
5. भूलवश छूटे हुए पदों अथवा वर्णों को हंसपद देकर उन्हें हाँसिये में लिखा गया है तथा वहां सन्दर्भ सूचक पंक्ति–संख्या अंकित कर दी गई है। यदि छूटा हुआ वह अंश ऊपर की ओर का है तो वह ऊपरी हाँसिये में और यदि नीचे की ओर का है तो नीचे की ओर वहीं पर पंक्ति संख्या भी दे दी गयी है। हाँसिये में अंकित पंक्ति के साथ (+) का चिह्न भी अंकित कर दिया गया है। कहीं–कहीं देशी शब्द एवं अन्य शब्दों के अर्थ भी (=) का चिह्न अंकित कर सूचित किया है।
6. प्रति में अक्षरों की लिखावट 'सघन' है और कहीं–कहीं अक्षर को पढ़ने में आँखों पर बहुत जोर देना पड़ता है।

N, प्रति –

N, प्रति भट्टारक मुनीन्द्रकीर्ति दि. जैन सरस्वतीभवन, नागौर (राज.) से प्राप्त हुई। इसमें 56 पत्र हैं एवं प्रति पूर्ण है। इसका आकार 11 x 4.5 है। इसका ग्रंथ क्रमांक–441 है। ग्रंथ भण्डार की ग्रंथ–सूची से ज्ञात हुआ है कि वि. सं. 2008 वीर सं. 2478 ग्रंथ भण्डार में सतीशचन्द्र पाटनी को यह प्रति भेंट की थी। इसमें दीर्घ प्रशस्ति भी प्राप्त होती है। लिपिकाल वि. सं. १६०७, ज्येष्ठ शुक्ल 3 सोमवार को लिपि की है। इसमें अक्षर स्पष्ट दिखाई देते हैं।) यह प्रति प्राकृत मनीषी प्रोफेसर प्रेम सुमन जी के सहयोग से प्राप्त हुई थी।

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

N, प्रति का प्रारम्भ इस प्रकार है –

ऊं नमो वीतरागाय।। ।। पणविविजिणईसहो.....।।

अंत में दीर्घ प्रशस्ति है, जो इस प्रकार है :–

इति वरांगचरित्रसमाप्तः।। ।। शुभं भवतु।।

श्री शक (छम) संवत्सरे अस्मिन श्री नृप विक्रमादित्यगताब्दातुः।।
संवत् 1607 वर्षे ज्येष्ठ मासे शुक्ल पक्षे तृतीया तिथौ सोमवासरे।।

श्री जिन चैत्यालयादि विराजमाने। धरातल विख्याते। मलिकपुरशुभस्थाने अज्ञायतिमरदिन करवि धुरि जनशरण सज्जनानंदे। नृपवरलक्ष्मी बल्लभे राज श्री योगा। श्री मूल संघे नंद्याम्नाये बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे। श्री कुन्दकुन्दाचार्यान्वये। उभय भाषा प्रवीण भट्टारक श्री पद्मनंदि देवान्। तत्पट्टे सिद्धांत जल समुद्र विवेक कला कर्मालजीविकाशनमार्त्तंक भट्टारक श्री शुभचंद्र देवान्। तत्पट्टे विद्याप्रधानचारू चारित्रोद्धहनभट्टारक श्री जिनचंद्रदेवान्। तत्पट्टे वादीभवुंभविदारणैककेशरिभट्टारक श्री प्रभाचंद्रदेवान्। तद्वितीयशिष्यदुर्द्धरपंचमहाव्रत धारणैक प्रचंड श्रीमत् मंडलाचार्य श्री रत्नकीर्ति। तच्छिष्यपंचाचारचरण चतुरान् ते भेदाभेद रत्नत्रय आराधकान्। स्मरसारणं विद्धरैणक मृगेंदान्। श्रीमत् मंडलाचार्य श्री भुवनकीर्तिस्तदाम्नाये। खंडेलवालवंशे। पाटनीगोत्रे। जिनपूजापुरंदरामंघही।। नाल्हा तस्य भार्या शीलतोयतरंगिणी साध्वीगाऊ तस्य पुत्रत्रयः प्रथम पुत्र शीलव्रतावगाढ़ परिपालन श्रीमत्सुदर्शनावतार। सं. छाजु। साप्पू। तस्यभार्या शीलालंकारधरिणीचौशरि। तस्य पुत्रद्वय। प्रथम पुत्र गणपति। तस्यभार्याद्विय प्रथमभार्यागुणसिरि तस्य पुत्र ताल्हू। तस्यभार्या तल्हसिरि। गणपतिद्वितीयभार्या सिंगारदे। सं. छाजू। साजू। द्वितीय पुत्र विमला तस्यभार्या विमलादे। नाल्हा। द्वितीयःपुत्र संघभारधुरंधर सं. गुरा। तस्यभार्यागौरादे तस्य पुत्रत्रय। प्रथम पुत्र परेषां तस्यभार्या केलू द्वितीयपुत्र नाथू तस्यभार्या नशसिरि। तृतीय पुत्र जातः। नाल्हा। त्रितिय पुत्र। आहाराभयभैषज्य। शास्त्रदानवितरणकल्पवृक्षान्। सं. धर्म्मातस्यभार्या द्विय जमनेमसीलादि अनेक गुणालंकृता। साध्वी धर्मश्री। तस्य पुत्र छीतर। तस्यभार्या छाइलदे। सं. धर्म्मा तस्य द्वितीय भार्या गुरू पदनता जिनधर्म्मप्रभाविका। सतीमतिल्लिका साध्वी। लाडी तस्य पुत्र त्रयः प्रथम पुत्र तेजपाल तस्य भार्या तेजलदे तस्य पुत्र जिणदास। लाडी द्वितीय पुत्र सोढा। तस्यभार्या सुहडादे। लाडी त्रितीय पुत्र लूणा। सं. धर्म्मा।। तस्यभार्याशीलालंकार धारिणी। लाडी तया इदं वरांग चरित्रं लिखावितं।

श्रीमन्मंडलाचार्य श्री भुवनकीर्ति तच्छिष्य आचार्य जयकीर्ति तस्मै पात्राय प्रदत्तं। शुभं भवतु। ज्ञान वा ज्ञानदानेन निर्भयोभयदानतः। अन्नदानात् सुखीनित्यं। निर्व्याधिः भेषजात् भवेत्। अथा या चज्जिनस्यधर्म्माय लोकस्थिति दयापरः। यावन्सुरनदीवाहः। तावन्नंदतुपुस्तकं।।भ।। कल्याणमस्तु

www.vitragvani.com

मांगल्यं भवतु।छ। समस्त क्षेममस्तु।।थ।।

N, प्रति की विशेषताएं :– यह प्रति A, प्रति से कॉपी की गई हो ऐसा प्रतीत होता है।

1. इस प्रति में 'ए' की मात्रा हमेशा अक्षर के ऊपर न होकर आगे होती है। इस प्रवृति की बहुलता है। जैसे – कहेइ / ***काहइ*** ।

प्रति प्रशस्तियों की प्रमाणिका :–

A, K, N, प्रतियों तथा उनकी प्रशस्तियों में मूलसंघ, बलात्कारगण के जिन भट्टारकों एवं मुनिराजों तथा खंडेलवालान्वय में पाटनी, सावड एवं साह गोत्रों में उनके श्रद्धालु श्रावकों तथा प्रतिलेखन स्थानों के नाम आये हैं। उनका ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य क्या है, इस पर चर्चा करना उचित होगा।

दिगम्बर जैन संघ के इतिहास में बलात्कारगण का अत्यधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है और जैन साहित्य की सुरक्षा एवं संवर्धन में इस गण के भट्टारकों, मुनियों तथा श्रद्धालु–श्रावकों का अभूतपूर्व एवं अनुपम योगदान रहा है। केवल साहित्य ही नहीं, जैन धर्म सम्प्रदाय और जैनतीर्थों व मंदिरों की सुरक्षा, प्रचार–प्रसार और निर्माण में भी सदैव ही इस संघ का बहुत बड़ा हाथ रहा है।

यद्यपि इस गण का उद्‌भव आचार्य कुंदकुंदाचार्य से माना जाता है और तदनुसार इसके साथ कुंदकुंदाचार्यान्वय, नंद्याम्नाय, सरस्वतीगच्छ आदि पद भी जुड़े रहते हैं, परन्तु इस गण का प्रथम उल्लेख आचार्य श्रीचन्द्र ने किया है, जो धारानगरी के निवासी थे और जिन्होंने सम्वत् 1070, 1080 से 1087 में क्रमशः पुराणसार, उत्तरपुराण एवं पद्‌मचरित की रचना की थी। यहीं से इस गण की ऐतिहासिक परम्परा चालू होती है और विक्रम की 15वीं शती तक जाती है। दक्षिण में इस गण की कारंजा एवं लातूर शाखाएं वि. की. 16वीं शती से प्रारम्भ होकर वर्तमान तक चल रही है।

बलात्कार की उत्तरशाखा मंडपदुर्ग (मांडवगढ़ राजस्थान) में भट्टारक बसंतकीर्ति के द्वारा सं. 1264 में प्रारम्भ हुई तथा विशालकीर्ति, शुभकीर्ति, धर्मचंद्र, रत्नकीर्ति एवं प्रभाचंद्र भट्टारक से होती हुई भट्टारक पद्‌मनंदी (सं. 1385–1450) तक आकर उनके बाद दिल्ली जयपुर ईडर एवं सूरत इन तीन प्रमुख शाखाओं में विभक्त हो गयी। दिल्ली जयपुर शाखा में से दो और उपशाखाएं निकलीं। नागौर शाखा एवं अटेरशाखा। अटेरशाखा में से सोनागिर प्रशाखा, ईडरशाखा से भानपुर उपशाखा और सूरतशाखा से जेरहट उपशाखा बनी। इन सबका दीर्घकालीन इतिहास है और इनमें से बहुत से भट्टारक पीठ आज भी विद्यमान हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि बलात्कारगण की शाखा, उपशाखा और प्रशाखाएं सम्पूर्ण उत्तरभारत में व्याप्त थीं। दिल्ली, जयपुर, हरियाणा में आज का कुरुक्षेत्र तथा उत्तरप्रदेश में मेरठ व आगरा के संभाग इन समस्त प्रदेशों में बलात्कारगण के भट्टारकों, मुनियों तथा भक्त श्रावकों द्वारा निरंतर धर्म व साहित्य की सुरक्षा और संवर्धन का

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

कार्य सम्पन्न किया जाता रहा है। उक्त भट्टारक परम्परा के भट्टारक विशालकीर्ति, भट्टारक भुवनकीर्ति, भट्टारक रत्नकीर्ति एवं भट्टारक विपुलकीर्ति को पं. तेजपाल ने अपने ग्रंथ वरंगचरिउ की चतुर्थ संधि के 23वें कडवक में गुरु के रूप में स्मरण किया है।

'पाठ–सम्पादन' पद्धति

1. सामान्य सिद्धांत के रूप में A, K, और N, प्रतियों में पाठों की प्रामाणिकता को ध्यान में रखकर इन प्रतियों के पाठों को ही मूल में स्वीकार किया गया है। परन्तु अर्थऔचित्य तथा व्याकरण एवं छंदशुद्धि की दृष्टि से जहां कहीं भी आवश्यकता महसूस हुई वहां पर तीनों प्रतियों (A, K,N,) में से मात्र A, प्रति का पाठ मूल पाठ में लिया है, क्वचित् अन्य प्रतियों के पाठ को भी स्वीकार किया है। मेरा कहने का अभिप्राय यह है कि A, को आदर्श प्रति के रूप में रखा है एवं अन्य प्रतियों का मिलान किया है। यद्यपि A, प्रति में भी यदि अर्थ-औचित्य, व्याकरण एवं छंद शुद्धि की अपेक्षा पाठ शुद्ध नहीं हुआ तो अन्य प्रतियों के पाठ को भी मूल पाठ में स्वीकृत किया है। ऐसे समस्त स्थलों में यह पाठ परिवर्तन कहीं भी एक अक्षर, एकमात्रा अथवा एक अनुस्वार से अधिक नहीं किया।
2. न और ण के प्रयोग के सम्बन्ध में यह प्रणाली अपनायी है कि जहां कहीं चाहे आदि में सम्पूर्ण स्थानों पर **'ण'** पाठ को ही ग्रहण किया। जैसे– नारि, नारियल प्राप्त शब्दों को णारि एवं णारियल पाठ ही रखा है। मध्यवर्ती **'न'** को कहीं–कहीं **'न'** रूप में ही ग्रहण किया है।–गिन्हि (2/12)
3. सभी प्रतियों में लगभग सर्वत्र **'ब'** के स्थान व का प्रयोग मिलता है। इस सम्बन्ध में मैंने मूल संस्कृत शब्द के अनुसार, यथा–स्थान ब, व दोनों का प्रयोग किया है।
4. 'हउं' पाठ प्रतियों में कहीं **'हउ', 'हंउ'** एवं **'हउं'** प्राप्त होता है। मैंने सर्वत्र (सम्पूर्ण प्रति में) **'हउं'** पाठ को ग्रहण किया है, जो कि पूर्ण प्रामाणिक एवं शुद्ध है।
5. सभी प्रतियों में प्राप्त तहि, कहिं, जहि आदि पाठ को यथानुसार रखा है।
6. प्रतियों में लिखावट सम्बन्धी भूल प्रायः प्राप्त होती है। जैसे– **K,** प्रति में **'छ'** की बनावट सर्वत्र **'छ'** रूप में ही प्राप्त होती है, चाहे संयुक्त अक्षर हो अथवा नहीं हो, वहां यथायोग्य पाठ को लिया है। इसी तरह **'एप्पिणु'** प्रत्यय में कहीं **'एपिणु'** पाठ प्राप्त हुआ और कहीं 'एप्पिणु' पाठ तो सर्वत्र पाठान्तर लेकर **'एप्पिणु'** पाठ को मूलपाठ में रखा है।
7. संयुक्त अक्षर के पूर्व यदि दीर्घ मात्रा का अक्षर विद्यमान रहता है, तो उसको ह्रस्व कर दिया गया है– 'ह्रस्व संयोगे' 84/1 (सिद्धहेम शब्दानुशासन), यथा–साप्पुरिसह (द्वितीय संधि, कडवक–2) के स्थान पर सप्पुरिसह पाठ लिया है।

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

II. ग्रन्थ एवं ग्रंथकार परिचय

1. ग्रंथ परिचय

अपभ्रंश भाषा में रचित वरंगचरिउ एक चरितकाव्य है, जिसमें कुमार वरांग का जन्म से लेकर अंतिम सल्लेखना तक वर्णन किया गया है। इसका चार संधियों में विभाजन किया गया है। कुल 83 कडवक हैं। इसका समय वि.सं. 1507 है।

इस ग्रन्थ की एक विशेषता है कि कवि के लिए 'वर' शब्द बहुत ही प्रिय रहा है, इसीलिए उन्होंने सम्पूर्ण ग्रन्थ में अनेक बार 'वर' लगाकर अनेक शब्द दिये हैं। एक विशेषता यह भी है कि कवि ने छह (6) संख्या की जगह 'रिउ' शब्द दिया है, जो ज्योतिष का शब्द है अर्थात् ज्योतिष में रिउ का अर्थ छह होता है। इसी तरह रन्ध्र शब्द को 9 संख्या के लिए प्रयोग किया है।

2. ग्रंथकार परिचय

प्राचीन कवियों द्वारा अपनी रचनाओं में स्वयं का व्यक्तिक वृतान्त देना बहुत कम पाया जाता है। संस्कृत काव्यों में इसका प्रारंभ बाणभट्ट ने किया। वे सातवीं सदी के प्रारम्भिक अर्द्धभाग में सम्राट हर्षवर्धन (606–640 ई.) के समकालीन थे और उन्होंने अपनी दोनों रचनाओं – 'कादम्बरी' और हर्षचरित में अपने विषय में भी बहुत कुछ लिखा है।[1]

इसी तरह अपभ्रंश के सर्वप्राचीन ज्ञात कवि स्वयंभूकृत "पउमचरिउ" तथा "रिट्ठणेमिचरिउ" – इन दोनों महाकाव्यों में उनके कर्त्ता के सम्बन्ध में भी बहुत कुछ वैयक्तिक वर्णन पाया जाता है। महाकवि पुष्पदंत की अभी तक तीन रचनाएँ प्राप्त हुई है–महापुराण, णायकुमारचरिउ तथा जसहरचरिउ – इन तीनों में कवि ने अपने वंश, माता-पिता तथा स्वयं का बहुत कुछ वृत्तान्त दे दिया है। इसी परम्परा में पं. तेजपाल का नाम भी लिया जा सकता है।

पं. तेजपाल व्यक्तित्व एवं कृतित्व

पंडित तेजपाल राजस्थान के प्रसिद्ध कवि एवं मूर्धन्य विद्वान् थे। अपभ्रंश भाषा में काव्य–निबद्ध करने की ओर इनकी विशेष रुचि थी। ये मूलसंघ के भट्टारक रत्नकीर्ति, भुवनकीर्ति, धर्मकीर्ति एवं विशालकीर्ति की आम्नाय के थे। प्रति के प्रारम्भ में गुरु विशालकीर्ति को नमस्कार किया है। कवि ने अपना परिचय देते हुए लिखा है कि वासवपुर नामक गांव में "वरसावडह" वंश में जाल्हव नाम के एक साहू थे। उनके पुत्र का नाम सुजड साहू था। वे

1. जसहरचरिउ, पुष्पदंत कृत, प्रस्तावना, पृ. 20 संशोधित सम्पादन–डॉ. हीरालाल जैन, भा.ज्ञा., दिल्ली, 1944

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

दयावन्त और जिनधर्म में अनुरक्त थे। उनके चार पुत्र थे–रणमल्ल, वल्लाल, ईसरू और पोल्हण। ये चारों ही भाई खण्डेलवाल जाति के सिरमौर या कुल के भूषण थे। रणमल साहू के पुत्र ताल्हुप साहू हुए एवं इनका पुत्र तेजपाल था। पं. तेजपाल का परिचय उनकी स्वयं अपनी कृति वरंग चरिउ में दिया है, जहां लिखा है–

महुणाम पसिद्धउ तेयपालु, मइ गमिउ णिरत्थउसयलकाल।[1]

साथ ही प्रत्येक संधि के अंत में भी परिचय प्राप्त होता है, जहां लिखा है–

"इयं वरंगचरिये। पंडियसिरि तेयपाल विरइए। मुणि सुविसाल कित्ति सुपसाए।"

वरंगचरिउ की चतुर्थ संधि के कडवक नं. 23 में कवि ने अपने परिवार एवं गुरुपरम्परा का परिचय दिया है–

विउलकित्ति मुणिवरहु पसायं, रइयउ जिणभत्तिय अणुरायं।
मूलसंघ–गुणगणपरियरियउ, रयणकित्ति हूयउ आयरियउ।
भुवणकित्ति तहो सीसु वि जायउ, खम-दमवंतु वि मुणि विक्खायउ।
तासु पहि संपय वि णिविहिट्ठउ, धम्मकीत्ति मुणिवरू वि गरिट्ठउ।
तहो गुर होइ विमल गुणधारउ, मुणिसुविसालकित्ति तवसारउ।
सो अम्हहं गुरु जहि महु दिण्णिय, पाइमकरणबुद्धि मइ गिण्हिय।
सरपियवासउपुर सुपसिद्धउ, धण-कण-कंचण-रिद्धि समिद्धउ।
वरसावउहं वंसु गरुयारउ, जाल्हउ णाम साहु वणिसारउ।
तासु पुत्तु सूजउ दयवंतउ, जिण धम्माणुरत्त सोहंतउ।
तासु पुत्र जहि कुल उद्धरियउ, रणमलणामु मुणहु गुणभरियउ।
तहो लहुयउ वल्लालु वि हुंतउ, जिणकल्लाणइ जत्त कुणंतउ।
पुणु तहो लहुयउ ईसरू जायउ, संपइ अच्छइ दयगुणसारउ।
पोल्हणु णामु चउत्थु पसिद्धउ, णियपुण्णेण दव्वु–वहुलद्धउ।
इय चत्तारिवि वंधव जाया, वरखंडिल्लवाल विक्खाया।
रणमण णंदणु ताल्हुय हुंतउ, तासु पुत्त हउं कइगुण जुत्तउ।
तेयपाल महु णामु पसिद्धउ, जिणवर भत्तिवि बुहगुण लद्धउ।

घत्ता – कम्मक्खयकारणु, मलअवहारणु, हरुहभत्ति मइ रइयउ।
जो पढइ पढावइ, णियमणि भावइ, येहु चरिउ तुइ सहियउ।।24।।

1. वरंगचरिउ, कडवक 2

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

कवि सुन्दर, सुभग और मेधावी होने के साथ ही जिनदेव का भक्त भी था। उसने ग्रन्थ निर्माण के साथ संस्कृति के उत्थापक प्रतिष्ठा आदि कार्यों में भी अनुराग प्रदर्शित किया था। कवि से ग्रन्थ रचनाओं के लिए विभिन्न लोगों ने प्रार्थना की और इसी प्रार्थना के आधार पर कवि ने रचनाएं लिखी हैं।

स्थिति काल/रचनाकाल

कवि तेजपाल की रचनाओं में समय का उल्लेख प्राप्त है। अतएव समय के संबंध में विवाद नहीं है। कवि ने भट्टारक परम्परा में रत्नकीर्ति, भुवनकीर्ति, धर्मकीर्ति एवं विशालकीर्ति का उल्लेख किया है, जिनका समय 15–16वीं सदी माना जाता है। अतः कवि का काल भी यही सिद्ध होता है। कवि ने वि.सं. 1507 वैशाख शुक्ला सप्तमी के दिन वरंगचरिउ को समाप्त किया था।

संभवणाहचरिउ की रचना थील्हा के अनुरोध से वि.सं. 1500 के लगभग सम्पन्न हुई। 'पासपुराण' को मुनि पद्मनन्दि के शिष्य शिवनन्दि भट्टारक के संकेत से रचा है। कवि ने इस ग्रन्थ को वि.सं. 1515 में कार्तिक कृष्णा पंचमी के दिन समाप्त किया था।[1] अतएव कवि का स्थितिकाल विक्रम की 15वीं सदी निश्चित होता है।

तेजपाल की अब तक तीन कृतियां उपलब्ध हो चुकी हैं, जिनके नाम–वरंगचरिउ, संभवणाहचरिउ और पासपुराण या पासणाहचरिउ है।

1. संभवणाहचरिउ–संभवणाहचरिउ के रचने की प्रेरणा भदानक देश के श्री प्रभनगर में दाऊदशाह के राज्यकाल में थील्हा से प्राप्त हुई थी। श्री प्रभनगर के अग्रवालवंशीय मित्तल गोत्रीय साहू लक्ष्मणदेव के चतुर्थ पुत्र का नाम थील्हा था, जिसकी माता का नाम महादेवी और प्रथम धर्मपत्नी का नाम कोल्हाही था और दूसरी पत्नी का नाम असाही था, जिससे त्रिभुवनपाल और रणमल नाम के पुत्र उत्पन्न हुए। साहु थील्हा पांच भाई थे, जिनके नाम खिउसी, होलू, दिवसी, मल्लिदास और कुंथदास था। ये सभी व्यक्ति धर्मनिष्ठ, नीतिवान और न्यायपालक थे।

लक्ष्मणदेव के पितामह साहू होलू ने जिनबिम्ब प्रतिष्ठा करायी थी। उन्हीं के वंशज थील्हा के अनुरोध से कवि तेजपाल ने संभवणाहचरिउ की रचना की। इस चरित ग्रन्थ की 6 संधियों में 170 कड़वक हैं। यह कृति अप्रकाशित है। इसमें तृतीय तीर्थंकर संभवनाथ का जीवन चरित्र गुम्फित है। कथावस्तु पौराणिक है। महापुराणों के अतिरिक्त संभवनाथ का जीवन बहुत कम लिखा गया है। इसलिए कवि ने संभवनाथ पर काव्य रचना करके उल्लेखनीय कार्य किया है। रचना सुरुचिपूर्ण एवं अत्यन्त सुन्दर भाषा में निबद्ध है। कवि ने अवसर मिलने पर वर्णनों को अधिक जीवन्त बनाया है। संधि वाक्य में बताया है–

1. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, पृ. 210

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

इय संभवजिणचरिए सावणयारविहाणफलाणुसरिए कइ तेयपालवण्णिदे सज्जण-संदोहमणि–अणुमण्णिदे सिरिमहाभव्व थील्हासवणभूसणो संभवजिणणिव्वाण गमणो णाम छट्ठो परिच्छेओ समत्तो।। सन्धि 6।।

कवि ने नगर वर्णन में भी पटुता दिखलाई है। वह देश, नगर का सजीव चित्रण करता है–

इह इत्थु दीवि भारहि पसिद्धु, णामेण सिरिपहु सिरि–समिद्धु।
दुग्गुवि सुरम्मु जण जणिय-राउ, परिहा परियरियउ दीहकाउ।
गोउर सिर कलसाइय पयंगु, णाणा लच्छिए अलिंगि पंगु।
जहिं जण णयणाणंदिराइं, मुणि-यण-गुण-मंडियमंदिराइं।
सोहंति गउरवरकइ-मणहराइं, मणि जडियकिमाडइं सुंदराइं।
जहिं वसहिं महायण चुय पमाय, पर-रमणि-परम्मुह मुक्कमाय।
जहिं समय करडि घड घड हडंति, पडिसद्दें दिसि विदिसा कुडंति।
जहिं पवण गमण धाविय तुरंग, णं वारि-रासि भंगुर-तरंग।
जो भूसिउ णेत्त सुहावणेहि; सरयव्व धवल गोहणगणेहि।
सुरमण वि समीहहिं जहिं सजम्मु, मेल्लेविणु सग्गालउ सुरम्मु।।

कालक्रमानुसार दूसरी रचना का नाम **'वरंगचरिउ'** है। इसमें चार संधियां हैं, जिनमें 22वें तीर्थंकर यदुवंशी नेमिनाथ के शासनकाल में उत्पन्न हुए पुण्यपुरुष वरांग का जीवनवृत्त प्रस्तुत किया गया है।

तीसरी रचना का नाम **पासणाहचरिउ** है। यह एक खण्डकाव्य है, जो पद्धडिया छन्द में लिखा गया है। यह रचना भट्टारक हर्षकीर्ति-भण्डार अजमेर में सुरक्षित है। कवि ने यदुवंशी साहू शिवदास के पुत्र भूघलि साहु की प्रेरणा से रचा है। ये मुनि पद्‌मनन्दि के शिष्य 'शिवनन्दि भट्टारक' की अम्नाय के थे तथा जिनधर्मरत, श्रावक धर्मप्रतिपालक, दयावन्त और चतुर्विध संघ के संपोषक थे। मुनि पद्‌मनन्दि ने शिवनन्दि को दीक्षा दी थी। दीक्षा से पूर्व इनका नाम सुरजन साहु था। सुरजन साहु संसार से विरक्त और निरन्तर द्वादश भावनाओं के चिन्तन में संलग्न रहते थे। प्रशस्ति में साहु सुरजन के परिवार का भी परिचय आया है। इस प्रकार कवि तेजपाल ने चरितकाव्यों की रचना द्वारा अपभ्रंश साहित्य की समृद्धि प्रदान की है।

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

III. कथा-विकास एवं वरंगचरिउ की मूल कथा

1. कथाविकास

विश्व के सर्वोत्कृष्ट काव्य की जननी कहानी ही है। कथा के प्रति मानव मात्र का सहज आकर्षण रहा है। फलतः जीवन का कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं है, जिसमें कहानी की मधुरिमा अभिव्यंजित न हुई हो। सत्य तो यह है कि मानव अपने जन्म के साथ कथा को लाया है और वह अपनी जिन्दगी को, कहानी कहता हुआ, समाप्त करता है। मानव विकास की परम्परा में एक ऐसा भी चरण था, जब मनुष्य वनों में ही रहकर पशु-पक्षियों के साहचर्य से अपनी नीरस जीवन यात्रा को सरस बनाता था। तब हरे-भरे पेड़ उसे छाया देते थे, गगनचारी विहग मधुर गीत सुनाकर थकान मिटाते थे और पशु अपनी उल्लासभरी क्रीड़ाओं से उसका मनोरंजन करते थे। इसी सान्निध्य ने मानव को पशु-पक्षियों का मित्र बनाया और कई युगों के बीत जाने पर भी आज का इंसान इन्हें भूल नहीं पाया है। सुसंस्कृत होने पर मानव ने अपने इस स्नेह को सबल बनाने के लिए प्राकृतिक सुषमा को कहानी-साहित्य में एक विशिष्ट उपकरण के रूप में मान्य किया है।[1]

हमारे प्राचीनतम साहित्य में कथा के तत्त्व जीवित हैं। ऋग्वेद में स्तुति के रूप में प्राप्त आख्यान, ब्राह्मण ग्रन्थों में शतपथ ब्राह्मण की पुरुरवा और उर्वशी की कथा, उपनिषद् युग का यमीयाज्ञवल्क्य संवाद तथा सत्यकाम-जावाल, रामायण और महाभारत के आख्यान आदि इसके सबल प्रमाण हैं। इस प्रकार कथासाहित्य की एक प्राचीन परम्परा है। कथासाहित्य की परम्परा में विशेष रूप से उल्लेखनीय कथाग्रन्थ हैं—पंचतंत्र, हितोपदेश, बैताल पंचविंशतिका, सिंहासनद्वात्रिंशिका, शुकसप्तति, वृहत्कथामंजरी, कथासरित्सागर, आख्यानमिनी, जातक कथाएँ आदि।[2]

कथा साहित्य-सरिता की धारा के वेग को तीव्र बनाने में जैन कथाओं का विशिष्ट योगदान रहा है। जैनों के मूल आगमों में द्वादशांगी प्रधान है। उनमें नायधम्मकहा, उवासगदसाओ, अन्तगड, अनुत्तरौपपातिक, विपाकसूत्र आदि समग्र रूप में कथात्मक है।

तरंगवती, समराइच्चकहा तथा कुवलयमाला आदि अनेकानेक स्वतंत्र कथा ग्रन्थ विश्व की सर्वोत्तम कथा विभूति हैं। यदि अध्ययन विधिवत् तथा इतिहास-क्रम से इस साहित्य का किया जाए तो कई नवीन तथ्य प्रकाश में आयेंगे और जैन कथा साहित्य की प्राचीनता वैदिक कथाओं से भी अधिक पुरानी लक्षित होगी।[3]

1. जैन कथाओं का सांस्कृतिक अध्ययन, ग्रन्थकर्त्ता—श्रीचन्द जैन, रोशनलाल जैन एण्ड सन्स, चैनसुखदास मार्ग, जयपुर–3, पृ27
2. वही, पृ. 28 3. वही, पृ. 28

www.vitragvani.com

डॉ. वसुदेव शरण अग्रवाल 'लोककथाएं और उनका संग्रह कार्य' शीर्षक निबन्ध में लिखते हैं–'बौद्धों ने प्राचीन जातकों की शैली के अतिरिक्त अवदान नामक नये कथा-साहित्य की रचना की, जिसके कई संग्रह (अवदान शतक दिव्यावदान आदि) उपलब्ध हैं, किन्तु इस क्षेत्र में जैसा कार्य जैन लेखकों ने किया वह विस्तार, विविधता और बहुभाषाओं के माध्यम की दृष्टि से भारतीय साहित्य में अद्वितीय है। विक्रम सम्वत् के आरम्भ से लेकर उन्नसवीं सदी तक जैन-साहित्य में कथा ग्रंथों की अविच्छिन्न धारा पायी जाती है।[1] जैनसाहित्य में लोककथाओं का खुलकर स्वागत हुआ। भारतीय लोकमानस पर मध्यकालीन साहित्य की जो छाप अभी तक सुरक्षित है उसमें जैन कहानी साहित्य का पर्याप्त अंश है।

सदयवच्छ सावलिंग की कहानी का जायसी ने पद्मावत में और उससे भी पहिले अब्दुल रहमान ने संदेशरासक में उल्लेख किया है। यह कहानी विहार से राजस्थान और विंध्यप्रदेश के गांव-गांव में जनता के कंठ-कंठ में बसी है। कितने ही ग्रन्थों में अंकित यह कहानी जैन-साहित्य का भी अंग है।[2]

जैनकथाओं को विद्वान् लेखकों ने संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि कई भाषाओं में लिखकर एक ओर भाषा को समृद्धि प्रदान की है तो दूसरी ओर जनता की भावना को भी परिष्कृत किया है। जनपदीय बोलियों में भी जैन लेखकों ने कथासाहित्य को पर्याप्त मात्रा में लिखा है। इन कथाओं में जैन-संस्कृति तथा सभ्यता विविध रूप में मुखरित हुई है।[3]

डॉ. यादव के मतानुसार कथासाहित्य की दृष्टि से जैन साहित्य बौद्ध साहित्य की अपेक्षा अधिक सफल है। जैन कहानियों में तीर्थंकरों, श्रमणों एवं शलाका-पुरुषों की जीवनगाथाएं मुख्य हैं जिनमें जैन धर्म के सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण होता चलता है। इनमें धार्मिक दृष्टि को पुष्ट करने के लिए जैन कहानीकार साधारण कहानी की समाप्ति कर केवली (मुक्ति के अधिकर्मा साधु) के द्वारा सुख–दुःख की व्याख्या पूर्वजन्म के कर्म के आधार पर कर देता है।[4] प्राचीन कथा साहित्य से तत्त्व ग्रहण कर लेखकों ने संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश में अनेक कहानियां रची है। अपभ्रंश के पउमचरिउ एवं भविस्सयत्तकहा नामक ग्रन्थ कहानी साहित्य की अमूल्यनिधि है। अपभ्रंश साहित्य में वस्तु, बन्ध और शैली की दृष्टि से प्रबन्धकाव्य की कई विधाएँ लक्षित होती हैं, जिनमें कथाकाव्य भी एक अन्यतम विधा है। अपभ्रंशकथाकाव्यों में नियोजित कथावस्तु लोककथाओं के सांचे में किन्हीं प्रबन्धरूढ़ियों तथ कथाभिप्रायों के साथ वर्णित मिलती है। कुछ कथाएँ जनश्रुति के रूप में प्रचलित होने पर व्रत महात्म्य तथा अनुष्ठानों से सम्बद्ध होकर काव्यबन्ध का अंग ही नहीं, प्राण बन गयी है।[5]

1. जैन कथाओं का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ. 29 2. वही, पृ. 29 3. वही, पृ. 29 4. वही, पृ. 30 5. वही, भूमिका, पृ. 6

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

2. वरंगचरिउ की मूल कथा

प्रथम संधि–पंचपरमेष्ठी का मंगलाचरण में स्तवन करके सज्जन-दुर्जन के गुणों को कहकर पश्चात् वरांग की कथा का प्रारंभ होता है। विनीत देश में रम्या नदी के तट पर कंतपुर नामक नगर था। उसमें भोजवंश का राजा धर्मसेन राज्य करता था, उसकी गुणवती (गुणदेवी) नाम की सुन्दर और रूपवती पटरानी थी। समय पाकर उनका एक पुत्र हुआ, जिसका नाम वरांग रखा गया। जब वह बालक चन्द्रमा की कला की तरह वृद्धिंगत हो रहा था। उसी समय दूसरी पत्नी मृगसेना के यहां सुषेण नामक पुत्र का जन्म होता है। जब कुमार वरांग युवा हो गया तब उसका विवाह ललितपुर के राजा देवसेन की पुत्री सुनन्दा, साथ ही विंध्यपुर के राजा महेन्द्रदत्त की पुत्री अंगवती, सिंहपुर के राजा द्विषन्तप की पुत्री यशोमती, इष्टपुरी के राजा सनत्कुमार की पुत्री वसुन्धरा, मलयदेश के अधिपति मकरध्वज की पुत्री अनन्तसेना, चक्रपुर के राजा समुद्रदत्त की पुत्री प्रियदत्ता, गिरिव्रज नगर के राजा बाज्रायुध की पुत्री सुकेशी, श्री कौशलपुरी के राजा सुमित्रसिंह की पुत्री विश्वसेना, वरांगदेश के राजा विनयन्धर की पुत्री प्रियकारिणी और व्यापारी की पुत्री धनदत्ता के साथ होता है। वरांग इनके साथ सांसारिक सुख का उपभोग करता है। एक दिन अरिष्टनेमी (नेमीनाथ) के प्रधान गणधर वरदत्त कंतपुर में आये। राजा धर्मसेन मुनि वन्दना को गया। राजा के प्रश्न करने पर उन्होंने आचारादि, सम्यग्दर्शन की प्राथमिकता आदि का उपदेश दिया। वरांग के पूछने पर उन्होंने सम्यक्त्व और मिथ्यात्व का विवेचन किया। उपदेश से प्रभावित हो वरांग ने अणुव्रत धारण किये और उनकी भावनाओं का अभ्यास किया तथा राज्य संचालन और अस्त्र-शस्त्र के संचालन में दक्षता प्राप्त की। राजा धर्मसेन वरांग के श्रेष्ठ गुणों की प्रशंसा सुनकर प्रभावित हुआ और तीन सौ पुत्रों के रहते हुए वरांग को युवराज पद पर अभिषिक्त कर दिया। वरांग के युवराज पद पर आसीन होने पर उसकी सौतेली मां मृगसेना और सौतेला भाई सुषेण को ईर्ष्या हुई ओर मंत्री सुबुद्धि से मिलकर उन्होंने षड्यन्त्र किया। मन्त्री ने एक सुशिक्षित घोड़ा वरांग को दिया जो ऊपर से सीधा और साधारण दिखता था लेकिन अन्दर कुटिल था। वरांग के उस पर बैठते ही वह हवा से बातें करने लगा। वह नदी, सरोवर, वन और अटवी को पार करता हुआ आगे बढ़ता है और वरांग को कुएं में गिरा देता है।

वरांग संयोगवश कुएं से बाहर निकलता है और भूख-प्यास से पीड़ित हो आगे बढ़ने पर कहीं तो सिंह की भयंकर दहाड़ सुनाई देती है, कहीं किलकारी भयंकर शब्द सुनाई देते हैं, कहीं मदोन्मत्त हाथियों का समूह युद्ध करते हुए दिखाई देता है, कहीं वराह (जंगली सुअर) भिड़ते दिखाई देते हैं, कहीं सिंह अपनी क्रीड़ा में मस्त हैं और कहीं सांभर (राजस्थान का पशु) रीझता

www.vitragvani.com

दिखाई देता है, कहीं मयूर मधुर शब्द करते हैं। इस तरह कुमार जंगल में भूलता–भटकता भ्रमण करता है। आगे एक बाघ से हाथी की सहायता द्वारा अपने प्राणों की रक्षा करता है।

द्वितीय संधि–द्वितीय संधि का प्रारंभ जिनेन्द्र देव का स्मरण पूर्वक होता है। जंगल में भ्रमण करते हुए आगे बढ़ता है, जहां एक यक्षिणी अजगर से उसकी रक्षा करती है और उसके स्वदार संतोषव्रत की परीक्षा कर संतुष्ट होती है। वन में भटकते हुए वरांग को भील बलि के लिए पकड़कर ले जाते हैं, किन्तु सर्प द्वारा दंशित भिल्लराज के पुत्र का विष दूर करने से उसे मुक्ति मिल जाती है। वृक्ष पर रात्रि व्यतीत कर प्रातः सागरबुद्धि सार्थपति से मिलता है। सार्थपति के साथ चलने पर मार्ग में बारह हजार सवर डाकुओं के रूप में मिलते हैं। सार्थवाह का उन सवर डाकुओं से युद्ध होता है। सार्थवाह की सेना युद्ध से भागती है। इससे सागरबुद्धि को बहुत दुःख होता है। संकट के समय वरांग ने सार्थवाह से निवेदन किया कि आप चिन्ता न करें, मैं सब सवरों को परास्त करता हूँ। कुमार ने डाकुओं को परास्त किया और सागरबुद्धि का प्रिय होकर सार्थवाहों का अधिपति वन ललितपुर में निवास करने लगा है।

तृतीय संधि–इधर घोड़े का पीछा करने वाले राजपुत्र, सैनिक और हाथी-घोड़े लौट आये, वरांग का कहीं पता न चला। इससे धर्मसेन के साथ गुणदेवी बहुत अधिक शोकमग्न हो जाती है। राजा ने गुप्तचरों को कुमार का पता लगाने के लिए भेजा। वे कुएं में गिरे हुए मृत अश्व को देखकर और कुमार के उपकरण को लेकर वापिस लौटे। उन्हें खोजने पर भी कुमार का कोई पता न लगा। अतः उनके अन्तःकरण में करुण विलाप का समुद्र उमड़ पड़ा।

आगे वरांग की वीरता का वर्णन आता है। मथुरा के राजा इन्द्रसेन का पुत्र उपेन्द्रसेन था। इस राजा ने एक दिन ललितपुर में देवसेन के पास अपना दूत भेजा और अप्रतिमल्ल नामक हाथी की मांग की। देवसेन द्वारा हाथी न दिये जाने पर रुष्ट हो मथुराधिपति ने उस पर आक्रमण कर दिया। इन्द्रसेन और उपेन्द्रसेन दोनों की सेना ने बड़ी वीरता से युद्ध किया, जिससे देवसेन की सेना छिन्न-भिन्न होने लगी। कुमार वरांग ने आकर देवसेन की सहायता की, जिससे इन्द्रसेन पराजित हो गया। ललितपुर का राजा देवसेन कुमार के बल और पराक्रम से प्रसन्न होकर उसे अपनी पुत्री सुश्री सुनन्दा और आधा राज्य प्रदान करता है।

चतुर्थ संधि–एक दिन राजा देवसेन की मनोरमा नाम की पुत्री कुमार के रूप-सौन्दर्य को देखकर आसक्त हो जाती है और विरह से जलने लगती है। मनोरमा कुमार के पास अपना दूत (दासी) भेजती है। पर दुराचार से दूर रहने वाला कुमार इनकार कर देता है। मनोरमा विरहाग्नि से जलने लगती है।

वरांग के लुप्त हो जाने पर सुषेण कंतपुर के राज्य कार्य को सम्हालता है। परन्तु वह अपनी अयोग्यताओं के कारण शासन में असफल हो जाता है। उसकी दुर्बलता और धर्मसेन की

www.vitragvani.com

वृद्धावस्था का अनुचित लाभ उठाकर वकुलाधिपति कंतपुर पर आक्रमण कर देता है। धर्मसेन ललितपुर के राजा से सहायता मांगता है। वरांग इस अवसर पर कंतपुर जाता है और वकुलाधिपति को पराजित कर देता है। पिता-पुत्र का मिलन होता है और प्रजा वरांग का स्वागत करती है। वह विरोधियों को क्षमा कर राज्य शासन प्राप्त करता है और पिता की अनुमति से दिग्विजय करने जाता है और अपना नया राज्य सरस्वती नदी के किनारे आर्नतपुर को बसाता है। जिनधर्म की प्रभावना करते हुए प्रज्ञा के ज्ञान और सुख को वर्धित करता हैं। वरांग ने आर्नतपुर में एक चैत्यालय का निर्माण कराया और विधिपूर्वक उसकी प्रतिष्ठा सम्पन्न कराई। अनुपमा महारानी की कुक्षि से पुत्र का जन्म होता है और उसका नाम सुगात्र रखा जाता है। एक दिन ब्रह्ममुहूर्त्त में राजा वरांग तेल समाप्त होते हुए दीपक को देखकर देह-भोगों से विरक्त हो जाता है और दीक्षा लेने का विचार करता है। परिवार के व्यक्तियों ने उसे दीक्षा लेने से रोकने का प्रयत्न किया, किन्तु वह न माना और वरदत्त मुनिराज के निकट दिगम्बर-दीक्षा धारण की। और तपश्चरण द्वारा आत्म-साधना करता हुआ अन्त में तपश्चरण से सर्वार्थसिद्धि को प्राप्त किया। उसकी स्त्रियों ने भी दीक्षा ले ली। उन्होंने भी अपनी शक्ति अनुसार तपादि का अनुष्ठान किया और यथायोग्य गति प्राप्त की।

वरांगचरित की कथा का मूलस्रोत

जैन कथाओं की यह विशेषता या प्रवृत्ति रही है कि इसमें आदर्श के रूप में तीर्थंकर आदि त्रेसठ शलाका पुरुषों एवं ख्यात व्यक्ति के माध्यम से विशिष्ट शैली का प्रतिपादन किया जाता है। वह शैली यह है कि चरितनायक को संकुचित परिवेश से निकालकर एवं उसकी नाना प्रकार की परीक्षा की कसौटी पर कसकर, अंत में श्रेष्ठता साबित करते हैं। डॉ. हीरालाल जैन के अनुसार "चरितनायक को उसके संकुचित परिवेश से निकालकर और उसकी नाना कठिन परिस्थितियों में परीक्षा कराकर उसके असाधारण गुणों को प्रकट करने का अच्छा अवसर प्राप्त होता है। यहां नायक के अपने निवास स्थान से निर्वासित किये जाने के हेतुओं, उसके सम्मुख आने वाली नाना कठिनाइयों, उनसे निपटने के नैपुण्य की कल्पना में तथा इन सभी के वर्णन में सरसता और सौन्दर्य लाने के कौशल में कवि को अपनी मौलिकता दिखाने का अच्छा अवसर प्राप्त होता है। इसी बीच नगरों, पर्वतों, वनों एवं पुरुष-नारियों के वर्णन की चतुराई तथा युद्ध व प्रेम के प्रसंगों पर पुरुष व नारियों के भाव वैचित्र्य का चित्रण करने का कवि को पर्याप्त अवकाश मिलता है।[1]

वरंगचरिउ नामक अपभ्रंश चरित काव्य में भी उक्त प्रकार की सभी परिस्थितियां पायी जाती

1. णायकुमार चरिउ, पुष्पदंत कृत, सम्पादक–हीरालाल जैन, ज्ञानपीठ प्रकाश, नई दिल्ली, प्रतावना, पृ. 20

www.vitragvani.com

हैं और सभी स्थलों पर कवि का कल्पनात्मक व भावात्मक चातुर्य पर्याप्त रूप से देखने को मिलता है, जो इस प्रकार है–

वरांगचरित काव्य के नायक वरांगकुमार हैं, जो एक राजा के पुत्र हैं, किन्तु सौतेले भाई सुषेण और सौतेली माता मृगसेना के विद्वेषवश, उनके षड्यंत्र के द्वारा वह घर से जंगल की ओर निर्वासित किया जाता है। पश्चात् वरांग नाना प्रदेशों में भ्रमण करते हैं और अपने शौर्य, नैपुण्य व कलाचतुर्यादि द्वारा अनेक राजाओं व राजपुरुषों को प्रभावित करते हैं। बड़े-बड़े योद्धाओं को अपनी सेवा में लेते हैं तथा अनेक राजकन्याओं से विवाह करते हैं। फिर पुनः अपने घर पर आकर जीवन के अन्तिम चरण में संसार से विरक्त होकर मुनि दीक्षा लेते हैं और अंत में सर्वार्थसिद्धि को प्राप्त करते हैं।

उक्त विषय पर यदि हम विचार करते हैं तो चरित्र का यह ढ़ांचा स्पष्ट रूप से वाल्मीकिकृत रामायण एवं विमलसूरि कृत पउमचरियं में पाते हैं। वहां भी चरितनायक मर्यादा पुरुषोत्तम राम को राजकुमार अवस्था में ही अपने विमातभ्राता भरत और विमाता कैकेयी तथा उनके बीच राज्याभिषेक संबंधी विवाद के निमित्त से प्रवासित होकर नाना प्रदेशों में (14 वर्ष वनवास) भ्रमण करना पड़ता है और अन्त में स्वयं अपने प्रति घोर अन्यायी महाबलशाली लंका नरेश को पराजित कर वे अपनी राजधानी को लौटते हैं, राज्याभिषिक्त होते हैं और अन्त में परमधाम मोक्ष व आत्मस्वरूप को प्राप्त करते है।

"वरांगचरित की कथा का मूलस्रोत जहासिंह नन्दी का वरांगचरित है, जो संस्कृत भाषा में रचित है एवं प्रथम जैन महाकाव्य है। इसका समय लगभग सातवीं शताब्दी निश्चित है। इसकी विशाल विषयवस्तु 31 सर्गों में निबद्ध हैं।"

रामायण के उक्त ढांचे ने परकालवर्ती समस्त संस्कृत, प्राकृत व अपभ्रंश कथा साहित्य को प्रभावित किया है। महाभारत में पाण्डवों के प्रवास आदि का भी यही ढांचा है। कथासरित्सागर के साक्ष्य के अनुसार उसके मूल ग्रन्थ गुणाढ्यकृत बृहत्कथा में भी यही ढांचा पाया जाता है। वसुदेवहिण्डी की भी यही रूपरेखा है तथा समस्त चरित रचनाएं प्रायः इसी सांचे में ढाली गई हैं।[1] णायकुमारचरिउ (पुष्पदंतकृत) का भी यही ढांचा प्राप्त होता है।

1. जैन कथाओं का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ. 20

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

IV. वरंगचरिउ की परम्परा

चरितकाव्य की परम्परा प्राकृत, संस्कृत एवं अपभ्रंश साहित्य में प्राप्त होती हैं। महाभारत, रामायण आदि ग्रंथों में महापुरुषों के चरित्र वर्णित हैं। अपभ्रंश साहित्य में चरितकाव्य की एक विशिष्ट शैली रही है। चरितकाव्य की परम्परा में वरंगचरिउ की दीर्घ परम्परा प्राप्त होती है, जो निम्न प्रकार द्रष्टव्य है–

वरांगचरित की परम्परा में सर्वप्रथम जटासिंह नन्दि के संस्कृत वरांगचरित का उल्लेख मिलता है। इसका समय विद्वानों ने लगभग सातवीं शताब्दी स्वीकार किया है। इसमें राजा वरांग का जीवन वर्णित है। यह विशाल ग्रन्थ 31 सर्गों में विभाजित है। इसे सातवीं शताब्दी स्वीकार करने के पीछे यह कारण है कि इसकी गाथाएँ जिनसेन ने अपने हरिवंश पुराण (ई. 783) में उल्लिखित की है।[1]

उद्योतन सूरि ने कुवलयमाला में (ई. 778) एक गाथा उल्लिखित की है, तथा साथ ही पद्मचरित के कर्त्ता का भी उल्लेख किया है। वह गाथा इस प्रकार है–

जेहिं कए रमणिज्जे वरंग-पउमाण चरिय वित्थारे।
कह व ण सलाहणिज्जे ते कइणो जडिय-रविसेणो।।

द्वितीय 'वरांगचरित' की परम्परा में कवि देवदत्त का नाम प्राप्त होता है जो वीरकवि के पिता थे। इनका समय 10वीं शताब्दी है। जम्बूस्वामी चरिउ[2] में ऐसा उल्लेख प्राप्त होता है।

इह अत्थि परमजिणपयसरणु, गुलखेडविणिग्गउ सुहचरणु।
सिरिलाडवग्गु तहिं विमलजसु कइदेवयत्तु निव्वूढकसु।
बहुभावहिं जे वरंगचरिउ, पद्धडियाबंधे उद्धरियउ।
कविगुणरसरंजियविउसह वित्थाविय सुद्दयवीरकह।
चच्चरियबंधिवि रइउ सरसु, गाइज्जइ संतिउ तारजसु।
नच्चिज्जइ जिणपयसेवयहिं किउ रासउ अंबादेवयहिं।
सम्मत्तमहाभरधुरधरहो तहो सरसइदेविलद्धवरहो।
नामेण वीरु हुउ विणयजुउ, संतुव गब्भुब्भउ पढमसुउ।
घत्ता– अखिलयसर–सक्कयकइ कलिवि आएसिउ णुउ पियरें।
पाययपबंधु बल्लहु जणहो विरइज्जउ किं इयरें।।4।।

1. हरिवंश पुराण, प्रथम अध्याय, श्लोक 35
2. जम्बूस्वामीचरिउ, वीरकविकृत, सम्पादन विमल प्रकाश जैन, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 1944, संधि 1/14

www.vitragvani.com

अर्थात् भगवान् महावीर का भक्त, गुलखेड का निवासी, शुभ आचरण वाला श्री लाडव वर्ग गोत्री, निर्मलयशवाला और काव्यरचनारूपी कसौटी पर कसा हुआ महाकवि देवदत्त था जिसने पद्धडिया छंद में नाना भावों से युक्त वरांगचरित का उद्धार किया तथा काव्यगुणों व रसों से विद्वत्सभा का मनोरंजन करने वाली सुद्दयवीर कथा का विस्तार से वर्णन किया। उन्होंने सरस चच्चरिया शैली में शान्तिनाथ का महान् यशोगान किया तथा जिन भगवान् के चरणों की सेविका अंबादेवी का रास रचा, जिसका जिनभगवान् के चरण-सेवकों द्वारा नृत्याभिनय भी किया जाता है। ऐसे सम्यक्त्वरूपी महद्भार की धुरा को धारण करने वाले और सरस्वती देवी से वरदान प्राप्त करने वाले इस (देवदत्त) कवि को संतुवा (भार्या) के गर्भ से विनयसम्पन्न वीर नाम का प्रथम पुत्र उत्पन्न हुआ। पुत्र को अस्खलित स्वर अर्थात् अव्यावाध संस्कृत कवि जानकर पिता ने आदेश दिया–लोकप्रिय प्राकृत प्रबंध (शैली) में काव्यरचना करो, अन्य रचना से क्या?।।4।।

कवि देवदत्त ने–1. वरांगचरित, 2. चच्चरिया शैली में शांतिनाथ का यशोगान (शान्तिनाथ चरित), 3. सुन्दर काव्यशैली में सुद्दयवीरकथा एवं 4. अंबादेवी रास की रचना की थी। दुर्भाग्यतः उक्त चारों रचनाओं का अभी तक कोई पता नहीं लेकिन संभव है कालान्तर में कहीं शास्त्रभण्डारों में प्राप्त हो जावे। पं. परमानंद शास्त्री ने भी अनुपलब्ध रचनाओं में कवि देवदत्त द्वारा रचित वरांगचरिउ का उल्लेख किया है।[1]

वीरकवि ने अपने पिता देवदत्त को कवियों की कोटि में तृतीय स्थान रखा है–

संते सयंभुएवे एक्को य कइत्ति बिण्णि पुणु भणिया।
जायम्मि पुप्फयंते तिण्णि तहा देवयत्तम्मि।।1।।[2]

अर्थात् कवि कहता है कि स्वयंभूदेव के होने पर एक ही कवि था। पुष्पदंत के होने पर दो हो गये और देवदत्त के होने पर तीन हो गये।

तृतीय वरांगचरित की रचना वर्धमान कवि ने की है, जिसका समय 14वीं शताब्दी माना जाता है। डॉ. उपाध्ये के अनुसार 13वीं शताब्दी तक ग्रंथकारों ने विविध रूप से जटासिंह नन्दि का स्मरण किया, किन्तु इसके बाद उनके बारे में मौन हो जाते हैं। आचार्य के अनुगामियों का शोधक जब कारण की खोज करता है तो उसे ऐसा संस्कृत वरांगचरित मिलता है, जिसे रचयिता स्वयं 'संक्षिप्त सैव वर्ण्यते' कहकर प्रस्तुत करता है अर्थात् कथावस्तु ज्यों की त्यों है। केवल धार्मिक विवेचनों को लघु कर दिया गया है। इसके रचयिता मूलसंघ बलात्कारगण भारतीगच्छ में उत्पन्न वरवादिदन्तिवञ्चानन वर्द्धमान है। डॉ. उपाध्ये के मत से अब तक दो वर्धमान प्रकाश में आये हैं। प्रथम है न्यायदीपिकाकार के धर्मभूषण के गुरु तथा दूसरे हुमच शिलालेख के रचयिता वर्द्धमान। दोनों का समय 13वीं शताब्दी से पहले ले जाना अशक्य है।

1. जैन ग्रंथ प्रशस्ति संग्रह, पृ. 144 2. जम्बूस्वामीचरिउ (5वी संधी प्रथम श्लोक)

www.vitragvani.com

अतः यह कहना अनुचित न होगा कि वर्द्धमान का वरांगचरित सरलतर होने के कारण प्रचार में आ गया होगा और स्वाध्यायी जटाचार्य के मूल वरांगचरित से दूर हो गये होंगे।[1]

चौथा अपभ्रंश भाषा में रचित कवि पं. तेजपाल विरचित **'वरंगचरिउ'** प्राप्त होता है, जिसमें पूर्वपरम्परा का ही अनुकरण किया है। इसमें संस्कृत वरांगचरित की विशाल कथावस्तु को संस्कृत वरांगचरित वर्धमान कवि द्वारा विरचित की तरह संक्षिप्त विषयवस्तु को पं. तेजपाल ने अपने वरंगचरिउ में चार संधियों में संजोया है, जो अभी तक अप्रकाशित था।

इसके पश्चात् डॉ. ए. एन. उपाध्ये के अनुसार अन्य तीन वरांगचरित का और उल्लेख प्राप्त होता है–

कन्नड़ वरांगचरित, लालचन्दकृत भाषा वरांगचरित एवं कमलनयनकृत भाषा वरांगचरित।

कन्नड़ वरांगचरित[2]– इसके लेखक विष्णुवर्द्धनपुर के निवासी थे तथा ई. 1650 के लगभग हुए थे। इन्होंने अपने पूर्ववर्ती ग्रन्थकारों का स्मरण करते हुए एक वर्द्धमान यति का भी उल्लेख किया है। अतः डॉ. उपाध्ये का अनुमान ठीक ही है कि कन्नड़ वरांगचरित का आधार वर्द्धमान का संक्षिप्त वरांगचरित रहा होगा।

लालचन्द्रकृत भाषा वरांगचरित[3]–जटाचार्य की धर्मकथा की लोकप्रियता इसी से सिद्ध हो जाती है कि जब जैनशास्त्रों के भाषा रूपान्तर का समय आया तो भाषा के विद्वान् वरांगचरित को न भूल सके। इसके अन्त में लिखा है, श्री वर्द्धमान की रचना संस्कृत में होने के कारण सबकी समझ में नहीं आ सकती, अतएव उसकी भाषा करना आवश्यक था। इस कार्य को पाण्डेलालचन्द्र ने आगरा निवासी, विलाल गौत्रीय शोभाचन्द्र की सहायता से माघ शुक्ला 5 शनिवार 1827 में पूर्ण किया है।

कमलनयनकृत भाषा वरांगचरित[4]–

ग्रंथ की प्रशस्ति के अनुसार यह कृति भी वर्द्धमान के संस्कृत काव्य का भाषान्तर मात्र है। इसे मैनपुरी निवासी श्री कमलनयन नागरवार ने संवत् 1872 में समाप्त किया था। लेखक के पितामह श्री साहौ नन्दूरामजी थे तथा पिता हरचन्ददास वैद्य थे। ये यदुवंशी बढेला थे, इनका गोत्र काश्यप था। लेखक ने अपने बड़े भाई क्षितिपति का भी उल्लेख किया है।

1. वरांगचरित, जटासिंह नंदी, सम्पा. डॉ. ए.एन. उपाध्ये, भारतवर्षीय दिगम्बर जन संघ चौरासी मथुरा, 1953, प्रस्तावना, पृ. 34
2. कर्नाटक कविचरित, आ. 2, पृ. 417 3. हरसुख जैन पुस्तकालय सं. 1905 में लिखी गयी हस्तलिखित प्रति/अनेकान्त, 58 वर्ष, किरण–2 4. (क) श्री कासप्रसाद अलीगंज (एतर, उत्तरप्रदेश) की हस्तलिखित प्रति। (ख) वरांगचरित, जटासिंह नंदी, सम्पा. डॉ. ए.एन. उपाध्ये, प्रस्ताावना, पृ. 34

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

V. समकालीन रचनाकार

जैन साहित्य के इतिहास में 15-16वीं शताब्दी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस समय कथा एवं चरित विषयक काव्यों की रचना अत्यधिक मात्रा में हुई है। पं. तेजपाल के समकालीन रचनाकारों में 15वीं–16वीं शताब्दी के अपभ्रंश कवियों को लिया है, जो इस प्रकार है–

गुणभद्र भट्टारक

भट्टारक गुणभद्र काष्ठासंघ माथुरान्वय के भट्टारक मलयकीर्ति के शिष्य और भट्टारक यश-कीर्ति के प्रशिष्य थे और मलयकीर्ति के बाद उनके पद पर प्रतिष्ठित हुए थे। उनकी कथाएँ पंचायती मंदिर खजूर मस्जिद दिल्ली के शास्त्र भण्डार के गुच्छक में संग्रहीत हैं। यह प्रतिष्ठाचार्य थे और अनेक मूर्तियों की प्रतिष्ठा इनके द्वारा सम्पन्न हुई हैं।

इन्होंने अपने द्वारा जिनधर्म का उपदेश देकर जनता को धर्म में स्थिर किया और जैनधर्म के प्रचार या प्रसार में सहयोग दिया है। इनके उपदेश से अनेक ग्रन्थ भी लिखे गये हैं। यद्यपि इन्होंने अपनी रचनाओं में किसी राजा का उल्लेख नहीं किया है, किन्तु अन्य सूत्रों से यह स्पष्ट हो जाता है कि इनकी रचनाएँ ग्वालियर के तोमर वंशी राजा डूंगरसिंह के पुत्र कीर्तिसिंह या करणसिंह के राज्यकाल में रची गई हैं। इनका समय विक्रम की 15वीं शताब्दी का अन्तिम चरण और 16वीं शताब्दी के मध्यकाल तक जान पड़ता है।[1]

रचनाएँ–1. पक्खवइ कहा, 2. णहपंचमी कहा, 3. चंदायणकहा, 4. चंदणछट्टी कहा, 5. णरय उतारी दुद्धार कहा, 6. णिद्दुहसप्तमी कहा, 7. मउडसप्तमी कहा, 8. पुप्फंजलिवय कहा, 9. रयणत्तय विहाण कहा, 10. दहलक्खणवय कहा, 11. लद्धबिहाण कहा, 12. सोलहकारणवयविहि, 13. सुयंध दहमीकहा।

उक्त व्रतकथाओं में व्रत का स्वरूप उनके आचरण की विधि और उनके कुल का प्रतिपादन करते हुए व्रत की महत्ता पर अच्छा प्रकाश डाला गया है।

धनपाल

जैन साहित्य में धनपाल नाम के कई साहित्यकारों का उल्लेख मिलता है। पं. परमानन्द शास्त्री ने धनपाल नाम के चार विद्वानों का उल्लेख किया है।[2] ये चारों ही विद्वान् भिन्न-भिन्न काल के हैं। इनमें दो संस्कृत भाषा के विद्वान् थे और दो अपभ्रंश के। प्रथम धनपाल संस्कृत के कवि राजा भोज के आश्रित थे, जिन्होंने दसवीं शताब्दी में 'तिलकमंजरी' और 'पाइयलच्छीनाममाला' ग्रंथों की रचना की थी। द्वितीय धनपाल तेरहवीं शताब्दी के हैं, जिनकी रचना ''तिलकमंजरी सार''

1. जैन ग्रन्थ प्रशस्ति संग्रह, प्रस्तावना, पृ. 112 2. पं. परमानन्द शास्त्री, धनपाल के चार विद्वान् कवि, अनेकान्त किरण 7–8, पृ. 82

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

मात्र ज्ञात है। तृतीय धनपाल अपभ्रंश में रचित 'बाहुवलिचरिउ' (बाहुवलिचरित) के रचयिता है, जिनका समय 15वीं शताब्दी कहा गया है। ये गुजरात के पुरवाड वंश के तिलक स्वरूप थे। इनकी माता का नाम सुहडादेवी और पिता का नाम सुहडप्रभ था।

भट्टारक श्रुतकीर्ति

भट्टारक श्रुतकीर्ति कृत 'धर्म परीक्षा' का समय (रचना काल) वि.सं. 1552 है। यह काव्य कविवर हरिषेण की धर्म परीक्षा के आधार पर लिखा गया है। कथानक का ही नहीं, वर्णन का भी अनुगमन किया गया है, अतएव दोनों में बहुत कुछ साम्य लक्षित होता है। अद्यावधि इसकी एक ही अपूर्ण प्रति उपलब्ध है।[1] डॉ. हीरालाल जैन के अनुसार प्रस्तुत कृति का कथानक हरिषेणकृत बृहत्कथाकोश दसवीं संधि के छठे कडवक तक पाया जाता है। अनन्तर उसी संधि में ग्यारह कडवक और हैं, फिर ग्यारहवीं संधि में सत्ताईस कडवकों की रचना है, जिनमें श्रावक धर्म का उपदेश दिया गया है। यह भाग श्रुतकीर्तिकृत धर्म परीक्षा से विच्छिन्न हो गया। सम्भवतः वह सातवीं संधि में ही पूरा हो गया।[2]

कवि ठक्कुर

कवि ठक्कुर 16वीं शताब्दी के अपभ्रंश तथा हिन्दी भाषा के कवि थे। इनका जन्म स्थान चाकसू (राजस्थान), जाति खण्डेलवाल तथा गोत्र अजमेरा था। इनके पिता का नाम घेल्ह था, जो स्वयं एक अच्छे कवि थे। कवि का रचनाकाल वि.सं. 1578-1585 कहा गया है। पं. परमानन्दजी शास्त्री के अनुसार कवि ने वि.सं. 1578 में 'पारससवण सत्ताइसी' नामक एक ग्रन्थ की रचना की थी, जो ऐतिहासिक घटना को प्रस्तुत करती है और कवि ने स्वयं के आंखों देखा वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त 'जिनचउवीसी', कृपणचरित्र (वि.सं. 1580) 'पंचेद्रियबेलि' (वि.सं. 1585) और नेमीश्वर की बेली आदि की रचना भी की थी।

परन्तु डॉ. कासलीवाल ने कवि की नौ रचनाओं का उल्लेख किया है[3]–1. पार्श्वनाथ शकुनसत्तावीस (वि.सं. 1575), 2. मेघमालाव्रतकथा (वि.सं. 1580), 3. कृपणचरित्र (वि.सं. 1585), 4. शीलबत्तीसी (वि.सं. 1585), 5. पंचेन्द्रियबेलि (वि.सं. 1585), 6. गुणवेलि, 7. नेम राजबलिबेलि, 8. सीमन्धरस्तवन, और 9. चिन्तामणिजयमाल। इनके अतिरिक्त कुछ पद भी प्राप्त हुए, जो विभिन्न गुटकों में संग्रहीत हैं।

शाह ठाकुर

रचना में इनका नाम शाह ठाकुर मिलता है। अभी तक इनकी दो रचनाएं ही उपलब्ध हो सकी हैं। एक अपभ्रंश में निबद्ध है और दूसरी हिन्दी भाषा में। 'शान्तिनाथचरित्र' एक अपभ्रंश

1. राजस्थान का जैन साहित्य, सं. अगरचन्द नाहटा आदि, प्राकृत भारती, जयपुर, 1977, पृ. 145

2. डॉ. हीरालाल जैन : श्रुतकीर्ति और उसकी धर्मपरीक्षा, अनेकान्त में प्रकाशित लेख, अनेकान्त, वर्ष–11, किरण–2, पृ. 106

3. डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल–अलभ्य ग्रन्थों की खोज, अनेकान्त में प्रकाशित, वर्ष 16, किरण 4, पृ. 170-171

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

काव्य है। यह पांच संधियों में निबद्ध है। कवि की दूसरी रचना 'महापुराणकलिका' है, जो 27 संधियों में विरचित एक हिन्दी प्रबंधकाव्य है। 'शांतिनाथचरित्र' में सोलहवें तीर्थंकर श्री शान्तिनाथ का संक्षेप में जीवनचरित्र वर्णित है। कवि ने यह प्रबन्धकाव्य वि.सं. 1652 में भाद्रपद शुक्ल पंचमी के दिन चकत्तावंश के जलालुद्दीन अकबर बादशाह के शासनकाल में ढूंढाहड देश के कच्छपवंशी राजा मानसिंह के राज्य में लिखा था। तब राजा मानसिंह की राजधानी अंबावती/आमेर में थी।[1]

कवि के पितामह का नाम साहु सील्हा और पिता का नाम खेता था। ये खण्डेलवाल जाति और बुहाड्या गोत्र के थे। ये भगवान् चन्द्रप्रभु के विशाल जिन मन्दिर से अलंकृत लुवाईणिपुर के निवासी थे। कवि संगीत, छन्द, अलंकार आदि में निपुण तथा विद्वानों का सत्संग करने वाला था। इनके गुरु अजमेर शाखा के विद्वान् भट्टारक विशालकीर्ति थे।[2]

मुनि महानन्दि

मुनि महानन्दि भट्टारक वीरचन्द के शिष्य थे। इनकी रची हुई एकमात्र कृत बारक्खड़ी या पाहुड़दोहा उपलब्ध है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति दि. जैन तेरहपंथी बड़े मन्दिर, जयपुर में क्रमांक–1825 वेष्टन सं. 1653, लेखनकाल वि.सं. 1591 मिलती है।[3] इससे यह निश्चित है कि रचना पन्द्रहवीं शताब्दी या इससे पूर्व रची गई होगी। डॉ. कासलीवाल जी ने इसका समय पन्द्रहवीं शताब्दी बताया है।[4]

पाहुडदोहा के रचयिता एक राजस्थानी दिगम्बर जैन सन्त थे। किसी-किसी हस्तलिखित प्रति में कवि का नाम 'महयंद' (महीचन्द) भी मिलता है। इस कृति में 335 दोहे हैं। किसी प्रति में 333 दोहे देखने में आते हैं। अपभ्रंश में अभी तक उपलब्ध दोहा–रचनाओं में निःसंदेह यह एक सुन्दर एवं सरस रचना है।[5]

कवि हरिचन्द

अपभ्रंश में हरिश्चन्द्र नाम के दो कवि हुए हैं। एक हरिश्चन्द अग्रवाल हुए, जिन्होंने अणत्थमियकहा, दशलक्षणकहा, नारिकेरकथा, पुष्पांजलिकथा और पंचकल्याणक की रचना की थी।[6] दूसरे कवि हरिचन्द राजस्थान के कवि थे। पं. परमानन्द शास्त्री के अनुसार कवि का नाम हल्ल या हरिइंद अथवा हरिचन्द है। कवि का 'वड्डमाणकव्व' या वर्द्धमानकाव्य विक्रम की पन्द्रहवीं सदी की रचना है। इसके अतिरिक्त दो रचनाएं और हैं–मल्लिनाथ काव्य एवं मदन पराजय। इनका रचना स्थल राजस्थान है।[7]

---

1. जैन ग्रंथ प्रशस्ति संग्रह, प्रस्तावना, पृ. 130 2. वही, पृ. 130–131 3. डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल–राजस्थान के जैन शास्त्र भंडार की ग्रंथसूची, भाग–2, पृ. 287 4. डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल–राजस्थान के जैन संत : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व, पृ. 173 5. राजस्थान का जैन साहित्य, पृ. 149 6. वही, पृ. 150 7. वही, पृ. 150

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

यह काव्य देवराय के पुत्र संघाधिप होलिबर्म के अनुरोध से रचा गया था। कवि हरिचन्द ने अपने गुरु मुनि पद्मनन्दि का भक्तिपूर्वक स्मरण किया है। कवि के शब्दों में–

"पउमणंदि मुणिणाह गणिंदहु चरणसरणगरु कइ हरिइंदहु।"

मुनि पद्मनंदी दिगम्बर जैन शासन-संघ के मध्ययुगीन परम प्रभावक भट्टारक थे, जो बाद में मुनि अवस्था को प्राप्त हुए थे। ये मंत्र-तंत्रवादी भट्टारक थे। इन्होंने अपने प्रांतों में ग्राम-ग्राम में विहार कर अनेक धार्मिक, साहित्यिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक लोकोपयोगी कार्यों को सम्पन्न किया है। आप के संबंध में ऐतिहासिक घटना का उल्लेख मिलता है।[1]

ब्रह्म वूचराज

ब्रह्म वूचराज या वल्ह मूलतः एक राजस्थानी कवि थे। इनकी रचनाओं में इनके कई नामों का उल्लेख मिलता है–वूचा, वल्ह, वील्ह या वल्हव। ये भट्टारक विजयकीर्ति के शिष्य थे। ब्रह्मचारी होने के कारण इनका 'ब्रह्म' विशेषण प्रसिद्ध हो गया। डॉ. कासलीवाल के अनुसार इनकी रची हुई आठ रचनाओं का उल्लेख प्राप्त होता है[2]–मयणजुज्झ, संतोषतिलक, जयमाल, चेतन-पुद्गल-धमाल, भुवनकीर्ति गीत, टंडाणा गीत, नेमिनाथवसतु और नेमीश्वर का बारहमासा विभिन्न रागों में गाया है। इन रचनाओं में से केवल मयणजुज्झ एक अपभ्रंश रचना है। मयणजुज्झ एक रूपक काव्य है।

मदनयुद्ध में जिनदेव और कामदेव के युद्ध का वर्णन किया गया है, जिसमें अन्ततः कामदेव पराभूत हो जाता है। 'संतोषतिलक जयमाल' भी एक रूपक काव्य है। इसमें शील, सदाचार, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चरित्र, वैराग्य, तप, करुणा, क्षमा तथा संयम के द्वारा संतोष की उपलब्धि का वर्णन किया गया है। यह रचना वि.सं. 1591 में हिसार नगर में लिखकर पूर्ण हुई थी। यह एक प्राचीन राजस्थानी रचना है। इसका समय 16वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है।

ब्रह्म साधारण

ब्रह्म साधारण राजस्थानी सन्त थे। पहले वे पंडित साधारण के नाम से प्रसिद्ध थे। किन्तु बाद में ब्रह्मचारी बनने के कारण उन्हें ब्रह्म साधारण कहा जाने लगा। उन्होंने अपनी पूर्ववर्ती परम्परा में भट्टारक रतनकीर्ति, भट्टारक प्रभाचन्द्र, भट्टारक पद्मनन्दि, हरिषेण, नरेन्द्रकीर्ति एवं विद्यानन्दि का उल्लेख किया है और अपने आपको भट्टारक नरेन्द्रकीर्ति का शिष्य लिखा है। भट्टारक नरेन्द्रकीर्ति का राजस्थान से विशेष सम्बन्ध था और वे इसी प्रदेश में विहार किया करते थे।[3] संवत् 1577 की एक प्रशस्ति में पं. साधारण का उल्लेख मिला है, जिसके अनुसार इन्हें

1. पं. परमानन्द शास्त्री, राज. के. जैन सन्त मुनि पद्मनंदी/अने., वर्ष–22, किरण–6, पृ. 285 2. डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल–राजस्थान के जैन संत : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व, पृ. 71 3. राजस्थानी जैन साहित्य, पृ. 151

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

पंचास्तिकाय की एक पाण्डुलिपि सा. धौपाल द्वारा भेंट की गई थी।[1]

ब्रह्म साधारण अपभ्रंश भाषा के विद्वान् थे। छोटी-छोटी कथाओं की रचना करके वे श्रावकों को स्वाध्याय की प्रेरणा दिया करते थे। 15वीं–16वीं शताब्दी में भी अपभ्रंश भाषा की रचनाओं का निबद्ध करना उनके अपभ्रंश प्रेम का द्योतक है। अब तक उनकी 9 रचनाएँ उपलब्ध हो चुकी है–

1. कोइलपंचमीकहा (कोकिला पंचमी कथा)
2. मउडसप्तमीकहा (मुकुट सप्तमी कथा)
3. रविवयकहा (रविव्रत कथा)
4. तियालचउबीसीकहा (त्रिकाल चौबीसीकथा)
5. पुयंजलिकहा (पुष्पांजली कथा)
6. निद्दूसिसत्तमीवयकहा (निर्दोष सप्तमी व्रत कथा)
7. णिज्झरपंचमीकहा (निर्झर पंचमी कथा)
8. अणुवेक्खा (अनुप्रेक्षा)
9. दुद्धारमिकहा (दुग्ध द्वादशी)।

उक्त सभी कृतियों में लघुकथाएँ हैं। भाषा अत्यधिक सरल किन्तु प्रवाहमय है। सभी कथाओं में अपनी पूर्ववर्ती परम्परा का उल्लेख किया है तथा कथा समाप्ति की पंक्ति में अपने आपको नरेन्द्र कीर्ति का शिष्य लिखा है।[2]

महीन्दु या महीचन्द

कवि महीन्दु या महीचन्द इल्लराज के पुत्र हैं। इससे अधिक इनके परिचय के सम्बन्ध में कुछ भी प्राप्त नहीं होता है। कवि ने 'संतिणाहचरिउ' की रचना के अन्त में अपने पिता का नामोल्लेख किया है–

भो सुणु बुद्धीसर वरमहि दुहुहर, इल्लराजसुअ णारिवज्जइ।
सण्णाणसुअ साहारण दोसी णिवारण वरणेरहि धारिज्जइ।

पुष्पिका वाक्य से भी इल्लराज का पुत्र प्रकट होता है। ग्रन्थ प्रशस्ति में कवि ने योगिनीपुर (दिल्ली) का सामान्य परिचय कराते हुए काष्ठासंघ के माथुरगच्छ और पुष्करगण के तीन भट्टारकों

1. राजस्थान के जैन शास्त्र ग्रन्थ भण्डारों की ग्रन्थसूची, पंचम भाग, पृ. 72 2. राजस्थानी जैन साहित्य, पृ. 160–161

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

का नामोल्लेख किया है–यशःकीर्ति, मलयकीर्ति और गुणभद्रसूरि। इसके पश्चात् ग्रन्थ की रचना कराने वाले साधारण नामक अग्रवाल श्रावक के वंशादि का वर्णन किया है।

ग्रन्थ के प्रत्येक परिच्छेद के प्रारम्भ में एक-एक संस्कृत पद्य द्वारा भगवान् शान्तिनाथ का जयघोष करते हुए साधारण के लिए श्री और कीर्ति आदि की प्रार्थना की है।

कवि ने 'संतिणाह चरिउ' का रचनाकाल स्वयं ही बतलाया है–

विक्कमरायहु ववगय-कालइ। रिसि-वसु-सर-भुवि अकालइ।
कत्तिय-पढम-पक्खि पंचमि-दिणि। हुड परिपुण्ण वि उग्गंतइ इणि।।

अर्थात् इस ग्रन्थ की रचना वि.सं. 1587 कार्तिक कृष्ण पंचमी मुगल बादशाह बाबर के राज्य काल में हुई।[1]

कवि विजयसिंह

कवि विजयसिंह ने अजितपुराण की प्रशस्ति में अपना परिचय दिया है। बताया है कि मेरुपुर में मेरुकीर्ति का जन्म करमसिंह राजा के यहां हुआ था, जो पद्मावती पुरवाल वंश के थे। कवि के पिता का नाम दिल्हण और माता का नाम राजमती था। कवि ने अपनी गुरु परम्परा का निर्देश नहीं किया है। अंत में पुष्पिका वाक्य से यह प्रकट है कि यह ग्रन्थ देवपाल ने लिखवाया था। कवि विजयसिंह की कविता उच्च कोटि की नहीं है। यद्यपि उनका व्यक्तित्व महत्त्वाकांक्षी का है, तो भी वे जीवन के लिए आस्था, चरित्र और विवेक को आवश्यक मानते थे। कवि ने अजितपुराण की समाप्ति वि.सं. 1505 कीर्तिक की पूर्णिमा के दिन की थी।[2]

अतएव कवि का समय विक्रम की 16वीं सदी है। कवि ने इस ग्रन्थ की रचना महाभव्य कामराज के पुत्र पंडित देवपाल की प्रेरणा से की है। बताया है कि वणिपुर या वणिक्पुर नाम के नगर में खण्डेलवाल वंश में कउडि (कौड़ी) नाम के पंडित थे। उनके पुत्र का नाम छीतु था, जो बड़े धर्मनिष्ठ और आचारवान थे। वे श्रावक की ग्यारह प्रतिमाओं का पालन करते थे। वहीं पर लोकप्रिय पंडित खेता था। इन्हीं के पुत्र कामराज हुए। कामराज की पत्नी का नाम कमलश्री था। इनके तीन पुत्र हुए–जिनदास, रयणु और देवपाल। देवपाल ने वर्धमान का एक चैत्यालय बनवाया

1. भगवान् महावीर और उनकी आचार्य परम्परा–नेमीचन्द्र शास्त्री, आचार्य शान्तिसागर छाणी ग्रन्थमाला मुजफ्फरनगर (उ.प्र.), प्रथम संस्करण, 1974, द्वि. 1992, पृ. 225 2. भगवान् महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, पृ. 227

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

था, जो उत्तुंग ध्वजाओं से अलंकृत था। इसी देवपाल की प्रेरणा से अजितपुराण लिखा गया। इस ग्रन्थ की प्रथम संधि के नवम कडवक में जिनसेन, अकलंक, गुणभद्र, गृद्धपिच्छ, प्रोष्ठिल, लक्ष्मण, श्रीधर और चतुर्मुख के नाम भी आये हैं।

इस ग्रन्थ में कवि ने द्वितीय तीर्थंकर अजितनाथ का जीवन वृत्त गुम्फित किया है। इसमें 10 संधियां हैं। पूर्व भवावली के पश्चात् अजितनाथ तीर्थंकर के गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान और निर्वाण कल्याणकों का विवेचन किया है। प्रसंगवश लोक, गुणस्थान, श्रावकाचार, श्रमणाचार, द्रव्य और गुणों का भी निर्देश किया गया है।

कवि असवाल

कवि असवाल का वंश गोलाराड था। इनके पिता का नाम लक्ष्मण था। इन्होंने अपनी रचना में मूलसंघ बलात्कारगण के आचार्य प्रभाचन्द, पद्मनन्दि, शुभचन्द्र और धर्मचन्द्र का उल्लेख किया है, जिससे यह ध्वनित होता है कि कवि इन्हीं की आम्नाय का था। कवि ने कुशार्त्त देश में स्थित करहलनगर निवासी साहू सोणिग के अनुरोध से लिखा है। ये सोणिग यदुवंश में उत्पन्न हुए थे।

मल्लिनाथचरित के कर्त्ता कवि हल्ल की प्रशंसा भी असवाल कवि ने की है। लोणासाहू के अनुरोध से ही कवि असवाल ने ''पासणाहचरिउ'' की रचना अपने ज्येष्ठभ्राता सोणिग के लिए कराई थी। पासणाहचरिउ की प्रशस्ति में रचनाकाल का उल्लेख प्राप्त होता है, जहां यह प्रस्तुत है–यह ग्रन्थ वि.सं. 1479 भाद्रपद कृष्णा एकादशी को यह ग्रन्थ समाप्त हुआ। ग्रन्थ लिखने में कवि को एक वर्ष लगा था।

प्रशस्ति में वि.सं. 1471 भोजराज के राज्य में सम्पन्न होने वाले प्रतिष्ठोत्सव का भी वर्णन आया है। इस उत्सव में रत्नमयी जिनबिम्बों की प्रतिष्ठा की गई थी। प्रशस्ति में जिस राजवंश का उल्लेख किया है, उसका अस्तित्व भी वि.सं. की 15वीं शताब्दी में उपलब्ध होता है। अतएव कवि का समय विक्रम की 15वीं शताब्दी है। कवि की एक रचना उपलब्ध है। इसमें 23वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ का जीवन चरित अंकित है। यह ग्रन्थ 13 संधियों में विभक्त है।[1]

इस चरित-ग्रन्थ में कवि ने ग्राम, नगर और प्रकृति का चित्रण भी किया है। साथ ही

1. महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, पृ. 229

www.vitragvani.com

नर-नारियों के चित्रण में परम्परायुक्त उपमानों का व्यवहार किया गया है।

माणिक्यराज

16वीं शताब्दी के अपभ्रंश काव्य निर्माताओं में माणिक्यराज का महत्त्वपूर्ण स्थान है। ये बुहसूरा (बुधसूरा) के पुत्र थे। जायस अथवा जयसवाल-कुलरूपी कमलों को प्रफुल्लित करने के लिए सूर्य थे। इनकी माता का नाम दीवादेवी था। 'णायकुमारचरिउ' की प्रशस्ति में कवि ने अपना परिचय निम्न प्रकार दिया है–

तहिं णिवसइ पंडिउ सत्थखणि, सिरिजयसवालकुलकमलतरणि।
इक्खाकुवंस महियवलि–वरिट्ठु, बुहसुरा–णंदणु सुयगरिट्ठु।
उप्पण्णउ दीवा उयरिखाणु, बुह माणिकुराये बुहहिमाणु।

कवि माणिक्यराज ने अमरसेनचरित में अपनी गुरुपरम्परा का निर्देश करते हुए लिखा है कि क्षेमकीर्ति, हेमकीर्ति, कुमारसेन, हेमचन्द्र और पद्मनन्दि आचार्य हुए। प्रस्तुत पद्मनन्दि तपस्वी, शील की खान, निर्ग्रन्थ, दयालु और अमृतवाणी थे। ये पद्मनन्दि ही माणिक्यराज के गुरु थे। अमरसेनचरित ग्रन्थ का प्रणयन रोहतक के पार्श्वनाथ मन्दिर में हुआ था। कवि माणिक्यराज अपभ्रंश के लब्धप्रतिष्ठ कवि है और इनका व्यक्तित्व सभी दृष्टियों से महनीय है।

कवि ने अमरसेनचरित की रचना वि.सं. 1576 चैत्र शुक्ला पंचमी शनिवार और कृतिका नक्षत्र में पूर्ण की है। द्वितीय रचना नागकुमारचरित का प्रणयन वि.सं. 1579 में फाल्गुन शुक्ला नवमी के दिन हुआ है। अमरसेनचरित ग्रन्थ में मुनि अमरसेन का जीवनवृत्त अंकित है, जिसकी कथावस्तु 7 संधियों में विभक्त है एवं नागकुमार चरित्र में पुण्यपुरुष नागकुमार की कथा वर्णित है, जिसकी कथावस्तु 9 संधियों में विभक्त है।[1]

कवि माणिकचन्द

डॉ. देवेन्द्र कुमार शास्त्री ने भरतपुर के जैनशास्त्र भण्डार से कवि माणिकचन्द की 'सत्तवणकहा' की प्रति प्राप्त की थी। इस कथाग्रन्थ के रचयिता जयसवाल कुलोत्पन्न कवि माणिकचन्द है। इस कथा की रचना टोडरसाहू के पुत्र ऋषभदास के हेतु हुई है। कवि मलयकीर्ति भट्टारक के वंश में उत्पन्न हुआ था। ये मलयकीर्ति एवं यशःकीर्ति के पट्टधर थे। ग्रन्थ

1. भगवान् महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, पृ. 237

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

का रचनाकाल वि.सं. 1634 है।[1] अतः कवि का समय 17वीं सदी निश्चित है।

सत्तवसणकहा–इसमें सप्तव्यसनों की सात कथाएं निबद्ध हैं। कथाग्रन्थ सात सन्धियों में विभक्त है। यह प्रबन्धशैली में लिखा गया है। कथा में वस्तु वर्णनों का आधिक्य नहीं है। कथा सीधे और सरल रूप में चलती है। संवाद योजना बड़ी मधुर है। भाषा सरल एवं स्पष्ट है।

भगवतीदास

भगवतीदास भट्टारक गुणचन्द के पट्टधर भट्टारक सकलचन्द के प्रशिष्य और महीचन्द्रसेन के शिष्य थे। महीन्द्रसेन दिल्ली की भट्टारकीय गद्दी के पट्टधर थे। पंडित भगवतीदास ने अपने गुरु महीन्द्रसेन का बड़े आदर के साथ स्मरण किया है। यह बूढ़िया, जिला–अम्बाला के निवासी थे। इनके पिता का नाम किशनदास था। इनकी जाति अग्रवाल और गोत्र बंसल था। कहा जाता है कि चतुर्थ वय में इन्होंने मुनिव्रत धारण कर लिया था।

कवि भगवतीदास संस्कृत, अपभ्रंश और हिन्दी भाषा के अच्छे कवि और विद्वान् थे। ये बूढ़िया से योगिनीपुर (दिल्ली) आकर बस गये थे। उस समय दिल्ली में अकबर बादशाह के पुत्र जहांगीर का राज्य था। दिल्ली के मोती बाजार में भगवान् पार्श्वनाथ का मन्दिर था। इसी मंदिर में आकर भगवतीदास निवास करते थे।

कवि ने अपनी अधिकांश रचनाएं जहांगीर के काल में लिखी हैं। जहांगीर का राज्य ई. सन् 1605–1628 ई. तक रहा है। अवशिष्ट रचनाएँ शाहजहां के राज्य में ई. सन् 1628–1656 में लिखी गई। कवि की लगभग 20 रचनाएँ प्राप्त होती है।

यशःकीर्ति

इनका समय 15वीं शताब्दी है। इनकी चार रचनाओं का उल्लेख प्राप्त होता है–

पाण्डवपुराण (सं. 1497), हरिवंशपुराण (र.सं. 1500),

जिनरत्तिविहाणकहा, रविवउकहा (आदित्यवय कहा)।

कवि देवनन्दि[2]

इन्होंने भी कथाग्रन्थों की रचना कर अपभ्रंश साहित्य की श्रीवृद्धि में योगदान दिया है। ये

1. भविस्सयत्त कहा तथा अपभ्रंश कथा काव्य, भा.ज्ञा.प्र., पृ. 326 2. भगवान् महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, पृ. 242

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

देवनन्दि पूज्यपाद देवनन्दि से भिन्न हैं और उनके पश्चात्वर्ती हैं। इनका 'रोहिणीविहाणकहा' नामक ग्रन्थ उपलब्ध है। रचना की शैली के आधार पर कवि का समय 15वीं सदी माना जा सकता है।

कवि अल्हू[1]

इन्होंने 'अणुवेक्खा' नामक ग्रन्थ की रचना कर संसार की अनित्यता, अशुचिता, असारता आदि का स्वरूप प्रस्तुत किया है। आत्मोत्थान के लिए अणुवेक्खा का अध्ययन उपयोगी है। रचना की भाषा और शैली से कवि का समय 16वीं सदी प्रतीत होता है।

जल्हिगल[2]

इन्होंने 'अनुपेहारास' नामक उपदेशप्रद ग्रन्थ लिखा है। इसमें अनित्य, अशरण आदि बारह भावनाओं का स्वरूपांकन किया है। कवि के सम्बन्ध में कुछ भी जानकारी प्राप्त नहीं होती है। अनुमानतः कवि का समय विक्रम की 15वीं शताब्दी प्रतीत होता है।

पं. योगदेव[3]

पं. योगदेव कुम्भनगर के मुनिसुव्रतनाथ चैत्यालय में बैठकर ''बारसअणुवेक्खारास'' नामक ग्रन्थ की रचना की है। यह ग्रन्थ भी 15वीं–16वीं शताब्दी का प्रतीत होता है।

कवि लक्ष्मीचन्द[4]

लक्ष्मीचन्द ने 'अणुपेक्खादोहा' की रचना की है। इसमें 47 दोहे हैं। सभी दोहे शिक्षाप्रद और आत्मोद्बोधक हैं। इनका समय भी 15वीं-16वीं शताब्दी के आस-पास है।

कवि नेमिचन्द्र[5]

नेमिचन्द 15वीं शताब्दी के प्रसिद्ध कवि हैं। इन्होंने रविव्रत कथा, अनन्तव्रत कथा आदि ग्रन्थों की रचना की है।

1. भगवान महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, पृ. 242 2. वही, पृ. 242 3. वही, पृ. 243 4. वही, पृ. 243 5. वही, पृ. 243

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

VI. भाषा

वरंगचरिउ की भाषा अपभ्रंश है, जिसकी प्रमुख विशेषता उकार बहुला है, जो वरंगचरिउ में सर्वत्र देखी जा सकती है। इसकी कुछ विशेषताएँ इस प्रकार हैं–

1. ऋ के स्थान पर प्रायः अ, आ, इ, उ, ए, या रि आदेश हुए हैं; यथा–

ऋ = अ, कृत = कय (4/1) गृह = घर–3/5

ऋ = इ, नृप = णिव (4/2), तृप = तिप्पइ (3/8), तृण = तिण (1/10)

ऋ = उ, मृणाल = मुणाल (4/11)

ऋ = रि, भ्रातृ = भायरि (3/3)

2. ऐ के स्थान पर ए या इ का आदेश हुआ है, यथा–

ऐ = इ, शैय्यातल = सिज्जायलि (1/8)

3. औ के सथान पर ओ या अउ आदेश हुए हैं, यथा–

औ = ओ, सौभाग्य = सोहग्ग (4/3)

औ = ओ, कौतुहल = कोऊहलि (4/3)

औ = आ, नौका = णाव (3/8)

4. एक स्वर के स्थान पर प्रायः दूसरा स्वर पाया जाता है।

यथा–अ = उ, मनुते = मुणइ (3/3)

इ = ई, ध्वनि = झुणी (1/8)

अ = ए, मर्यादा = मेरउ (4/5)

ऊ = ए, नूपुर = णेवर

5. प्रायः अल्प प्राण व्यंजनों का लोप या उनके स्थान पर य, या व श्रुति दिखलाई पड़ती है, यथा–

रयणायरू = रत्नाकर (4/1), लोय = लोक (2/1), रुपसार = रुवसार (1/6), दुखसागर = दुसायरि (1/12), अंतेपुर = अंतेवर (4/11)

www.vitragvani.com

6. कुछ शब्दों में दो स्वरों के बीच स्थित ख, घ, थ, ध, फ और भ के स्थान पर ह का प्रयोग हुआ है, यथा–

ध = ह, पयोधर = पयोहर (4/1)

भ = ह, सौभाग्य = सोहग्ग (4/3), त्रिभुवन = तिहुयण (3/21)

ध = ह, रोधन = रोहणु (3/5), निधि = णिहि (3/1)

घ = ह, निघात = णिहाउ (3/6)

ख = ह, सुखकर = सुहयरू (3/7), रेखा = रेह (3/9)

फ = ह, सफल = सहलउ (3/11)

थ = ह, पथिकजन = पहियण (1/3)

7. ट के स्थान पर ड; ठ के स्थान पर ढ और प के स्थान पर व पाया जाता है, यथा–

ट = ड, घटित = घडिउ (3/6), कटक = कडअ (3/11), सुभट = सुहड (1/6)

ठ = ढ, कठिन = कढिण (1/8)

प = व, कतिपय = कइवइ, आतापित = आयावइ (3/2)

8. कुछ शब्दों में अल्प प्राण वर्णों के स्थान पर महाप्राण वर्ण पाये जाते हैं, यथा–

स्तुति = थुत्ति (1/10), प्रशस्त = पसत्थ (1/2)

9. कुछ शब्दों में दन्त्य व्यंजन के स्थान पर मूर्धन्य व्यंजन का प्रयोग हुआ है, यथा–

रोषानल = रोसाणलु (1/12), अतिवेदन = अइवेयणु (3/2)

10. ह्म के स्थान पर म्भ आदेश हुआ है, यथा–

ब्रह्मचर्य = बम्भचेरु (1/16)

11. ट के स्थान पर क्वचित् ल हुआ है, यथा–

ट = ल; क = ह, स्फटिक = फलिह

12. य और श के स्थान पर क्रमशः ज और स तथा ष के स्थान पर छ या ह का प्रयोग हुआ है; यथा–

य = ज, युधिष्ठर = जुहिट्ठिलु, संयतं = संजय, यदि = जइ, युवराज = जुवराय (4/5)

www.vitragvani.com

श = स, शिरोरूह = सिरोरूह, पाश = पासु (3/4)

ष = छ, षटखण्ड = छक्खंड (1/13)

13. क्ष के स्थान पर ख, छ, झ, क्ख या घ प्रयुक्त हुए हैं, यथा–

क्ष = क्ख, रक्ष = रक्ख (3/4)

क्ष = झ, क्षि = झूरंति (3/6)

क्ष = ख, क्षमावान = खमंतो (4/3)

क्ष = छ, मृगाक्षि = मयच्छि (3/8)

14. त्य के स्थान पर च्च, श्य के स्थान पर च्छ और द्य के स्थान पर ज्ज का प्रयोग हुआ है, यथा–

त्य = च्च, जात्य = जच्च (3/10), प्रत्यन्त = पच्चंत (4/5), तत्त्व = तच्च (1/10)

15. शब्दों के मध्य और अन्त में स्थित असवर्ण संयुक्त वर्ण सवर्ण वर्ण में बदल गये हैं, यथा–

धर्म = धम्म (1/11), कर्म = कम्म (2/1), सिक्त = सित्त (3/2)

दुर्गम = दुग्गम (3/4)

उपर्युक्त विशेषताओं के अतिरिक्त वरंगचरिउ की भाषा में कतिपय अन्य विशेषताएँ भी हैं–

(1) ज्ञ = ण, केवलज्ञान = केवलणाण (1/1)

(2) ह्य = ज्झ, दोह्य = दुज्झइ (3/8)

(3) ध्व = झु, ध्वनि = झुणि (1/8)

(4) स्थ = ठ, स्थ+मि = ठामि (1/3)

(5) स्न = ण्ह – स्नेह = णेह (3/6)

(6) त्स = च्छ – उत्साह = उच्छाहु (1/8)

(7) ध्य = झ – असाध्य = असज्झ (3/8), ध्यान = झाणु (4/22)

(8) प्स = च्छ – अप्सरा = अच्छर (1/8).

www.vitragvani.com

VII. छंद, अलंकार एवं रस विवेचन

छंद

अपभ्रंश काव्यों में छन्दों का बाहुल्य व वैशिष्टय पाया जाता है। यहां संस्कृत और प्राकृत के प्रायः सभी वर्णिक और मात्रिक छन्दों के अतिरिक्त कुछ नवीन छन्दों का प्रयोग भी हुआ है, जिन्होंने हिन्दी आदि आधुनिक भाषाओं की काव्य शैली को प्रभावित ही नहीं किया, किन्तु इसे एक नयी दिशा भी प्रदान की है।[1]

भारतीय वाङ्मय में छन्द शब्द अनेक अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। पाणिनी के 'अष्टाध्यायी' में 'छन्दस्' शब्द वेदों का बोधक है।[2] 'भगवत्गीता' में वेदों को छन्दस् कहा गया है:–

ऊर्ध्वमूलमधः शाखमपूवत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्।।(15.1)

अमरकोश (छठी शताब्दी) में–

'अभिप्रायश्छन्दआशयः' (3.20)

अर्थात् 'छन्द' का अर्थ 'मन की बात' या 'अभिप्राय' किया गया है। वहीं आगे छन्दः पद्येऽभिलाषे च' (3.232) अर्थात् छन्द का अर्थ पद्य और 'अभिलाष' भी किया है।

'छन्द' शब्द का प्रयोग 'पद्य के अर्थ में अति प्राचीन है, क्योंकि छः वेदांगों में (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरूक्त, ज्योतिष और छन्दस्) छन्दशास्त्र को गिनाया गया है।

छन्दशास्त्र का अर्थ है अक्षर या मात्राओं के नियम से उद्भूत विविध व्रतों का शास्त्रीय विवरण। सामान्यतया हमारे देश में सर्वप्रथम पद्यात्मक कृति की रचना हुई, इसलिए प्राचीनतम 'ऋग्वेद' आदि के सूक्त छन्द में ही रचित है। वैसे जैनों के आगमग्रंथ भी अंशतः छन्द में रचित है। जैनाचार्यों ने अनेक छन्दग्रंथ भी लिखे है।[3]

नेमिचन्द्र शास्त्री के अनुसार; मनुष्य अनादि काल से छन्द का आश्रय लेकर अपने ज्ञान को स्थायी और अन्यजन ग्राह्य बनाने का प्रयत्न करता आ रहा है। छन्द, ताल, तुक ओर स्वर सम्पूर्ण मनुष्य को एक करते हैं। इनके आधार पर मनुष्य का भाव सहज ही दूसरे तक पहुंच जाता है। इनके समान एकत्व विधायिनी अन्य शक्ति नहीं है। मनुष्य को मनुष्य के प्रति संवेदनशील बनाने का सबसे प्रधान साधन छन्द है। इसी महान साधन के बल पर मनुष्य ने अपनी आशा आकांक्षाओं को, अनुराग–विराग को एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक, एक पीढ़ी से

1. जसहरचरिउ (प्रस्तावना पृ. 34), पुष्पदंत कृत, सम्पा. हीरालाल जैन, भा. ज्ञा. प्रकाशन, नई दिल्ली, 1972 (प्रथम सं. 1944), द्वितीय संस्करण, 1972 2. जैन साहित्य का वृहद् इतिहास, भाग–5, लेखक–अंबालाल प्रो. शाह पार्श्वनाथ विद्यापीठ शोध संस्थान, वाराणसी, 1969 चौथा प्रकरण, पृ. 130 3. जैन साहित्य का वृहद् इतिहास, पृ. 130

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

दूसरी पीढ़ी तक और एक युग से दूसरे युग तक भेजा है। वैद्यक, ज्योतिष, व्यापार–वाणिज्य और नीति विषयक अनुभवों का छन्द के बल पर ही सर्वग्राह्य बनाया गया है। काव्य में छन्द का व्यवहार विषयगत मनोभावों के संचार के लिए किया गया है।[1]

लय की अणिमा और महिमा ही छन्द है। नाद की गतियां जब लयमय बनती है, तब छन्द जन्म लेता है। अर्थ काव्य का प्राण है, तो छन्द ऊर्जा है। वस्तुतः छन्द लयात्मक, नियमित तथा अर्थपूर्ण वाणी है। छन्द काव्य की नैसर्गिक आवश्यकता है। छन्दोमयी रचना में सम्प्रेषणीयता और लयान्विति का योग रहता है, जिससे उसमें जीवन को आनंदित करने की शाश्वत सम्पदा मुखर हो उठती है। छन्दोबद्ध वाणी आत्मा को चमत्कृत कर उसे उल्लास में निमग्न कर देती है, ताकि जीवन की समूची विषमता ओर विषादमयता का सर्वथा विसर्जन हो।[2]

अपभ्रंश कथात्मक प्रबन्ध काव्यों व चरित्रों की एक टकशाली शैली है। जिसके अनुसार रचना को अनेक संधियों (परिच्छेदों) में विभाजित किया जाता हे। प्रत्येक संधि में अनेक कडवकों का समावेश होता है और प्रत्येक कडवक में अनेक यमक और अन्त में एक घत्ता छन्द रखा जाता है। जो संधि के आदि से अन्त तक एक सा रहता है और उसका स्वरूप संधि के प्रारंभ में ही प्रायः ध्रुवक के रूप में स्पष्ट कर दिया जाता है।

कभी–कभी प्रत्येक कडवक के प्रारंभ में एक 'दुवई' छन्द भी सम्बद्ध रहता है। जिसके अन्य नाम ध्रुवा, ध्रुवक या छद्दणिया भी है। घत्ता का अर्थ है जो विभक्त करे।

पिंगल के अनुसार घत्ता में 31 मात्राएं होती है। यति 10 और 8 पर तथा 13 मात्रा, अन्त में दो लघु होना चाहिए। आचार्य हेमचन्द्र ने 'छद्दणिया' का लक्षण इसी प्रकार दिया है जहां 10 और 8 पर यति, 13 मात्राओं के साथ अन्तिम दो लघु एवं दुवई का एक भेद छड्डणिया माना है।

मुनि नयनंदी ने अपने सुदंसणचरिउ में काव्य की विशेषता बताते हुए कहा है :–

'णिरू छंदाणुवट्टि कइकव्वु व'[3]

अर्थात् काव्य की विशेषता उसके छन्दानुवर्ती या नाना छन्दोत्मक होने में है।

संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश वाङ्मय में छंदशास्त्र लेखन की चार प्रमुख शैलियाँ उपलब्ध है।[4] यथाः–

1. सूत्रशैली–पिंगलाचार्य तथा आ. हेमचन्द्र द्वारा व्यवहृत।

1. प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ. 527 2. जैन हिन्दी काव्य में छन्दोयोजना, आदित्य प्रचण्डिया (जैन विद्या–अप्रेल, 1987) जम्बू. च. में छन्दयोजना, दीति, पृ. 8 3. सुदंसणचरिउ–मुनिनयनन्दि, सम्पा. हीरालाल जैन, प्राकृत एवं जैन विद्या शोध संस्थान, वैशाली, 1970, 2.6.7 4. हिन्दी साहित्य कोष, प्रथम–भाग, संपा. धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 291 (जैन विद्या–अप्रेल,1987), जम्बू. च. की छन्दयोजना, पृ.56, श्रीमती अलका प्रचण्डिया दीति

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

2. श्लोकशैली–अग्निपुराण और नाट्यशास्त्र में प्रयुक्त।

3. एकनिष्ठशैली–गंगादास और केदारभट्ट द्वारा गृहीत, जिसमें लक्षण उद्धृत छंद में ही निहित रहता है।

4. मिश्रितशैली–'प्राकृत पैंगलम्' में व्यवहृत शैली, जिसमें अलग छंदों में भी और कहीं–कहीं उद्धृत छंदों में भी उल्लेख हुआ है।

अपभ्रंश छन्दों के स्रोत दो हैं–एक तो विभिन्न छन्द शास्त्रियों द्वारा प्रस्तुत अपभ्रंश छन्दों का विश्लेषण और दूसरे अपभ्रंश काव्य में प्रयुक्त छंदों का अनुशीलन।[1]

अपभ्रंश प्रबन्ध काव्यधारा, सचमुच छन्द की दृष्टि से बहुत अधिक समृद्ध है। यह समृद्धि आकस्मिक् नहीं, अपितु परम्परा का विकास है। अपभ्रंश छन्द के बारे में एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि वह व्यक्ति नहीं जाति से सम्बन्ध रखती है।[2]

सामान्यतया अपभ्रंश विद्वानों ने दो प्रकार के अपभ्रंश छन्द स्वीकार किये हैं :–

(क) प्रबन्धकाव्य परम्परा के छन्द। (ख) चारण तथा मुक्त परम्परा के छन्द।

अपभ्रंश कवि छन्द के प्रयोग को लेकर बड़े सजग रहे है। लोकभाषा की गतिशीलता को बनाए रखने के लिए यह आवश्यक भी था। यही कारण है कि उसमें दोनों परम्पराओं के छन्द मिलते हैं। श्री अल्सफोर्ड ने अपभ्रंश छन्द के दो भेद किये हैं–गणप्रधान और मात्रा प्रधान। मात्रा प्रधान के पांच भेद किये हैं–

1. चार पाद का लयात्मक छन्द। 2. दोहा आकार के छन्द। 3. केवल लयवाले छन्द। 4. मिश्रित छन्द। 5. घत्ता के आकार के छन्द।

इसी प्रकार प्रयोग की दृष्टि से भी भेदों की कल्पना की जा सकती है :–

(क) मुक्तक रचनाओं में प्रयुक्त होने वाले छन्द।

(ख) कड़वक रचना में प्रयुक्त छन्द।

(ग) कड़वक आदि के अन्त में प्रयुक्त छन्द।

अन्ततः कहा जा सकता है कि अपभ्रंश के छन्द प्रायः संगीत प्रधान हैं, वे तालगेय हैं। अपभ्रंश छन्दों में 'यति' प्रायः संगीतात्मक होती है। लोकभाषा के छंदों का अपभ्रंश के छन्दों पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा है। अपभ्रंश में जिन नये छन्दों का अविष्कार हुआ, उन सबकी विशेषता है– पदान्त यमक की अनिवार्यता, जो हिन्दी में तुकबन्दी के नाम से प्रतिष्ठित हुई।[3] अपभ्रंश के

1. अपभ्रंश भाषा और साहित्य, डॉ. देवेन्द्र कुमार, पृ. 231 2. जम्बूस्वामीचरिउ, छन्दयोजना, पृ. 60 3. जसहरचरिउ, प्रस्तावना, पृ.34

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

प्रबन्ध काव्यों, मुक्तक काव्यों और चरितात्मक, स्तुत्यात्मक तथा रास आदि ग्रंथों में अनेक छन्दों का प्रयोग मिलता है। संस्कृत में वर्णवृत्तों का और अपभ्रंश में मात्रिक छन्दों का प्रयोग अधिक हुआ है, पर वहां वर्ण–वृत्तों का सर्वथा अभाव भी नहीं है। अपभ्रंश कवियों ने संस्कृत के उन्हीं छन्दों को ग्रहण किया है जिसमें उन्हें विशेष प्रकार की गति मिली है और इसी से उन्होंने संस्कृत वर्ण–वृत्तों में अपनी इच्छानुसार कुछ सुधार या परिवर्तन अथवा परिवर्धन कर, उन्हें गान तथा लय के अनुकूल बना लिया है।[1] अपभ्रंश के कवियों ने अन्त्यानुप्रास का प्रयोग प्रत्येक चरण के अन्त में तो किया ही है, किन्तु उसका प्रयोग कहीं–कहीं तथ्यों में भी हुआ है। तुकान्त या तुक का प्रयोग लय को उत्पन्न करना या उसे गति प्रदान करना है और ऐसी शब्द योजना का नाम ही तुक है।[2] प्राकृत कवियों ने प्रायः मात्रिक छन्दों का ही प्रयोग किया है, इनमें तुक का प्रयोग नहीं पाया जाता। हिन्दी के तुलसीदास आदि कवियों की रचनाओं में चौपाई या दोहा छन्द ही आता है, किन्तु अपभ्रंश कवियों की कडवक शैली में सभी वर्ण ओर मात्रिक छन्दों को सभाविष्ट करने का प्रयत्न किया गया है।[3]

पं. परमानन्द शास्त्री के अनुसार–संस्कृत के वर्ण वृत्तों से एक ही छन्द में नवीनता उत्पन्न कर अनेक नूतन छन्दों की अपभ्रंश में सृष्टि भी की है। संस्कृत के मालिनी छन्द में प्रत्येक पंक्ति में 8 और 7 अक्षरों के बाद यति के क्रम से 15 अक्षर होते हैं। उसे अपभ्रंश भाषा के कवि ने प्रत्येक पंक्ति को दो भागों में विभाजित कर यति के स्थान पर तथा पंक्ति की समाप्ति पर अन्त्यानुप्रास का प्रयोग कर छन्द को नवीन रूप में ढाल दिया है।[4] यथा :–

विविह रस विसाले, णेय कोऊ हलाले।
ललिय वयण माले, अत्थसंदोह साले। सुदंसणचरिउ, 3–4

अपभ्रंश में दो छन्दों को मिलाकर अनेक नये छन्द भी बनाये गये हैं। जैसे छप्पय, कुंडलिया, चान्द्रायन और वस्तु आदि।[5]

छन्दों के प्रकार

अपभ्रंश भाषा के काव्यों में विविध छन्दों का प्रयोग हुआ है उनके नाम इस प्रकार है :– पज्झटिका, पादाकुलिक, अलिल्लाह, रड्ढा, प्लवंगम, भुजंगप्रयात, कामिनी, तोटक, दोधक, सग्गिणी, घत्ता, दोहा, मन्दाक्रांता, मालिनी, वंसस्थ, आरणाल, तोमर, दुवई, मदनावतार, चन्द्रलेखा, कुवलयमालिनी, मोत्तियदाम, उपजाइ विलासिनी, शालिभंजिका, इन्द्रवज्रा, वसंततिलका, प्रियंवद, अनंतकोकिला, रथोद्धता, मंदारदाम, आवली, नागकन्या, पृथिवी, विद्युन्माला, अशोकमालिनी और निसेणी आदि।[6]

1. जैनग्रंथ प्रशस्ति संग्रह, परमानन्दशास्त्री, प्रस्तावना, पृ. 34 2. वही, प्रस्तावना, पृ. 34 3. वही, पृ. 34 4. वही, पृ. 35 5. वही, पृ. 35 6. वही, पृ. 35

www.vitragvani.com

कवि नयनन्दी ने अपने 'सकलविधि विधान काव्य' में 62 मात्रिक छन्दों का प्रयोग किया है। इससे प्रमाणित होता है कि नयनन्दी छन्दशास्त्र के महान वेत्ता थे। कवि श्रीचन्द्र ने 'रयणकरण्ड सावयायार' की 12वीं संधि के तीसरे कडवक में कुछ अपभ्रंश छन्दों का नामोल्लेख किया है। णिरयाल, आवली, चर्चरीरास, रासक, ध्रुवक, खंडय, उपखंडय, घत्ता, वस्तु, अवस्तु, अडिल, पद्धडिया, दोहा, उपदोहा, हेला, गाहा, उपगाहा आदि छन्दों के नाम दिये हैं।[1]

कवि लक्ष्मण ने अपने 'जिनदत्तचरिउ' की चार संधियों में वर्णवृत्त और मात्रिक दोनों प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है उनके नाम निम्न प्रकार हैं:–

विलासिणी, मदनावतार, चित्रगया, मोत्तियदाम, पिंगल, विचित्तमणोहरा, आरणाल, वस्तु, खंडय, जंभेटिया, भुंजगप्पयाउ, सोमराजी, सग्गिणी, पमाणिया, पोमिणी, चच्चर, पंचचामर, णराच, निभंगिणिया, रमणीलता, चित्तिया, भमरपय, मोणय, अमरपुर, सुन्दरी और लहुमत्तिय आदि।[2]

अपभ्रंश में अनेक छन्द ग्रंथ लिखे गये, परन्तु आज उपलब्ध नहीं हैं। मात्र एक ही स्वयंभू का छन्द ग्रंथ प्राप्त होता है, जो अपभ्रंश की महत्त्वपूर्ण देन है। इस ग्रंथ में कुल 8 अध्याय है। इसके प्रथम तीन अध्यायों में प्राकृत के वर्णवृत्तों का और अन्त के 5 अध्यायों में अपभ्रंश के छन्दों का कथन किया गया है और छन्दों के उदाहरण पूर्ववर्ती कवियों की रचनाओं एवं स्वोपज्ञ ग्रंथों से भी दिये है।[3]

वरंगचरिउ में मुख्यतः तीन प्रकार के छंदों का प्रयोग किया गया है, जो छन्द–प्रवृत्ति सामान्य रूप से अपभ्रंश काव्यों में पाई जाती है। अर्थात् कडवक के प्रारंभ में दुवई (द्विपदी), मध्य में यमक रूप में अधिकांशतः पद्धडिया (पज्झटिका) एवं अन्त में घत्ता छन्द पाया जाता है, जो इस प्रकार है–

दुवई (द्विपदी)–

इसके प्रत्येक चरण में 28 मात्राएँ पाई जाती हैं, यथा–

ण मुणंमि कुवणु ताउ तुह केरउ मायरि कवण जायउ।
को वरणयरू वप्पकमलाण ण कहि कारणि परायउ।। (वरंगचरिउ, 2/12)

पद्धडिया–

इसे अपभ्रंश काव्य का प्रमुख छन्द कहा गया है। इसके प्रत्येक चरण में चार चतुर्मात्रिक गण अर्थात् सोलह मात्राएं होती हैं, जिनमें अन्तिम मात्राएं जगण (।ऽ।) होती है। वरंगचरिउ में अधिकांशतः इसका प्रयोग हुआ है, यथा–

1. छंदणिरयाल आवलियहिं, चच्चरि रासय रासहि ललियहिं। वत्थु अवत्थू जाइ विसेसहिं, अडिल मडिल पद्धडिया अंसहिं। दोहय उवदोहय अवभंसहिं, दुवई हेला गाहु व गाहहिं। धुवय खंड उवखंडय घत्तहिं सम–विसमद्ध समेहिं विचित्तहिं।।
–रयणकरंड सावयायार, 12वीं संधि, कडवक–3

2. जैनग्रंथ प्रशस्ति सं., पृ. 35 3. वही, पृ. 36

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

पुणु चित्तसेणु भासइ सुवाय, सुरसेणहु किज्जइणेहुराय।
पुणु देवसेणु तुरियउ पवुत्त, हउं अक्खमि किज्जइ अवरुवत्त।

(वरंगचरिउ, 1/6)

पंगुरणहीण णिद्दोसयारि, तिण्हइ वेलइ णउ लहहि वारि।
जो तह संहारइ पावयम्मु, तहिसरिसउ अवरू ण कोअहम्मु।।

(वरंगचरिउ, 1/13)

वदनक–

इसके प्रत्येक चरण में सोलह मात्राएं होती हैं, जिनमें अन्तिम दो मात्राएं प्रायः लघु होती हैं, यथा–

परतिय णरयजोणि दरिसावइ, परमहिला जमउरि महिलावइ।
परमुद्धा सत्तउ जणु जाणइ, अजसकित्ति लोउ वक्खाणइ।।

(वरंगचरिउ, 1/14)

मदनावतार–

इसके प्रत्येक चरण में 20 मात्राएँ होती हैं, यथा–

सकोहा सलोहा मणे जुद्ध कामा, पपिच्छंत भइया वणाअंग सामा।
वलावेवि लग्गा रणे जे वि धीरा, पपिच्छेवि सत्थाइ लग्गा अधीरा।।

(वरंगचरिउ, 2/7)

विलासिनी–

इसके प्रत्येक चरण में 16 मात्राएँ होती हैं और अंत गुरु से होता है, यथा–

अवर वि णिय-णियपुत्ति समाणा, अट्ठवि णरवइ तित्थु पराणा।

(वरंगचरिउ, 1/8)

कडवक के अंत में घत्ता छन्द प्रयुक्त हुआ है, जो इस प्रकार है–

राजहंस–

इसके प्रथम और तृतीय चरण में पन्द्रह-पन्द्रह तथा द्वितीय एवं चतुर्थ चरण में बारह-बारह मात्राएं होती हैं, यथा–

इक्कहि दरसाविय कुडिलगइ, अवरुवि किद्धउ सरलउ।
कुडिलु पेरंतहं वाहुडइ, अकुडिलु गच्छइ तरलउ।।

(वरंगचरिउ, 1/19)

कामिनी-हास–

इसके प्रथम और तृतीय चरण में ग्यारह-ग्यारह तथा द्वितीय एवं चतुर्थ चरण में बारह-बारह मात्राएं होती हैं, यथा–

www.vitragvani.com

कुमरवरंगु लएवि, सायरविद्धि पहाणउ।
सयलहि अप्पिउ तासु, पिक्खहि सुंदरमाणउ।। (वरंगचरिउ, 2/6)

बासठमात्रिक छन्द–

इसके प्रत्येक चरण में क्रमशः दस, आठ और तेरह मात्राओं पर यति होती है। चतुर्थ संधि के प्रत्येक कडवक के अन्त में प्रयुक्त घत्ते इसी छंद में पाये जाते हैं, यथा–

जहि कोइल सद्दहि, कय रुइ भद्दहि, कीर मोक्खइं खइं पुणु।
जहि वर कमलायरू, णं रयणायरु, रेहयंति कइ खइं वणु।। (वरंगचरिउ, 4/1)

अलंकार

'अलंकार' काव्योत्कर्ष का एक अनिवार्य साधन है–"अलंकरोति इति अलंकारः" से यही ध्वनित होता है। कवि की प्रतिभा का कौशल इस बात से स्पष्ट होता है कि वह अपनी रचनाओं में अलंकारों का प्रयोग कितना और कैसा करता है। जितना ही अधिक कोई कवि अलंकारों का सहज और अकृत्रिम प्रयोग करता है, उतना ही उसका काव्य श्रृंगार मण्डित होता है।

महाकवि नयनन्दि अलंकार युक्त काव्य को संसार की सर्वाधिक सरस उपलब्धि बतलाते हैं। कवि कहते हैं–प्रवाल की लालिमा से शोभित तरुणी के अधर, भौरों को नचाने वाले आम, मधुर ईख, अमृत, कस्तूरी, चन्दन तथा चन्द्र में भी वह रस नहीं है, जो सुकवि रचित अलंकारयुक्त काव्य में मिलता है, यथा–

णो संजादं तरुणिअहरे विद्दुमारत्तसोहे।
णो साहारे भमियभमरे णेव पुंडुच्छदंडे।
णो पीऊसे णहि मिगमदे चंदणे णेव चंदे।
सालंकारे सुकइ भणिदे जं रसं होइ कव्वे। (सुदंसणचरिउ, 3/1)

महाकवि दण्डी के अनुसार काव्य में शब्द और अर्थ को शोभित करने वाला ही अलंकार होता है।[1] वामन के अनुसार यह गुण का कार्य है और अतिशय शोभा करने वाला धर्म ही अलंकार है।[2] आनंदवर्धन ने अलंकार को शब्द एवं अर्थ का आश्रित माना है और उन्हें कटक, कुण्डल आदि के समान शब्दार्थ रूप शरीर का शोभाजनक कार्य कहा है।[3] आनंदवर्द्धन ने अलंकार लक्षण में अलंकार का रस के साथ कोई संबंध निर्दिष्ट नहीं किया, किन्तु मम्मट[4] और विश्वनाथ के अनुसार अलंकार शब्द और अर्थ की शोभा द्वारा रस का भी उपकार करते हैं।

1. काव्याशोभाकरान् धर्मानलङ्कारान् प्रचक्षते।। काव्यादर्श–219 2. तदतिशयहेतवस्त्वलङ्काराः। काव्यादर्श 3/1/2
3. अङ्गाश्रितास्त्वलङ्काराः मन्तव्या कटकादिवत्।। ध्वन्यालोक 2/6 4. उपकुर्वन्ति तं सन्तयेङ्गद्वारेण जातुवित्।। काव्यप्रकाश 8/67

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

स्वयंभू का विश्वास है कि अलंकार रहित सुकथा वैसे ही व्यर्थ है, जैसे लांछन सहित कन्या। कन्या लांछन रहित होनी चाहिए, भले ही वह अलंकार न पहने हो। ऐसे ही कथा भले ही लांछन रहित अच्छी हो, किंतु उसका अलंकृत होना जरूरी है। उसका सबसे बड़ा लांछन, अलंकार विहीन होना है। उक्त कथनों से यह स्पष्ट है कि काव्य में अलंकार का रहना आवश्यक है।

वरंगचरिउ एक चरितकाव्य है। अतः इसमें भी अलंकारों की प्राप्ति होती है। कवि ने उत्प्रेक्षा और उपमा का अत्यधिक प्रयोग किया है, साथ ही यमक एवं अनुप्रास अलंकार के माध्यम से भी काव्य रचना की है।

उपमा अलंकार—साहित्य दर्पण के अनुसार एक वाक्य में दो पदार्थों के वैधर्म्य रहित, वाच्यसादृश को उपमा कहते हैं, यथा—

1. पारद्धिउ चउगइ भमइ केम, चल पहरिय झिंदु व पुहइ जेम। (1/13)
2. सव्वह वल्लहु णिय जीवयव्वु, सो णउ घाइज्जइ करिवि गव्वु। (1/13)
3. छणइंदु व सरिसउ वयणु भाइ, बालक्क तेयविहि दिण्ण णाइ। (2/15)
4. हा हा पइं विणु खडरसभोयणु, विसरिव भासइ जीविय मोयणु। (3/2)
5. फेणु व णिस्सारउ मणुय जम्मु, इय जाणिवि किज्जइ णिवइ धम्मु। (3/8)
6. तणु धणु जोवणु णिय जीवयव्वु, सुरधणुमिव भंगुर लोयसव्वु।
   लायण्णु वण्णु पुणु सुयण संगु, जलबुब्ब व सण्णिहु हवइ भंगु। (4/18)
7. धरवइ रज्जु देवी णियपुत्रहो, जुण्ण तिणुव्व रज्जु परिचत्तहो। (4/21)

उक्त रेखांकित शब्दों से वाच्य-सादृश्यता प्रदर्शित होती है।

उत्प्रेक्षा अलंकार—उपमेय में उपमान की संभावना को उत्प्रेक्षा कहते हैं, यथा—वरंगचरिउ में उत्प्रेक्षा अलंकार का व्यापक वर्णन किया गया है, यथा—

1. धवलुज्जणु णं उडवइ पयाउ, णं धरिउ पयोणिहि वेलभाउ।
   णं णहयलि लग्गउ सुरविभाणु उत्तंगु विउल णं गिरिपमाणु। (1/4)
2. णं सुरपुरि महियलि इत्थु आय, जहि णिच्चु वि हुय दुंदुहि णिणाय। (1/4)
3. णं मयरद्धउ जगि पयडु जाउ, णं पुंजी कउ दय धम्मभाउ। (1/4)
4. णं दीणाणाहहं कप्परुक्खु, अरिकामिणी हियवइ देह दुक्खु। (1/4)
5. तुह आएसु होइ ता आणामि, णं तो वयणहि तित्थु समणामि। (1/9)
6. करिवि पसंसण गय णियभवणहो, णं विहि णिम्मिय मग्गण पयणहो। (1/18)
7. अइ णिविड पयोहर कढिणतुंग, णं मणसिय कीडण गिरि उयंग। (2/2)
8. इय वयण सुणिवि कोहेण जलिउ, णं उग्घय सित्तिउ जलणु जलिउ। (2/9)

www.vitragvani.com

9. अगणिय सरधोरणि वरसंतउ, णं अयालि वरसागमु पत्तउ। (2/10)

10. सवरसंघु जुज्झं तह मारिउ, णं मुणि कम्मवूहु संघारिउ। (1/10)

11. णित्तंसुयजलु किम परियलियउ, णं अयालि गुरु पावसु सरियउ। (3/5)

12. णयणंसुय जलेहि तणु सित्तउ, णं विहिणा णिज्झरणु विहित्तउ। (3/2)

13. णं सुर अच्छरगणु इत्थ पत्ति, वरतण राणिय पिय पाय भत्ति। (3/6)

14. इय वयणु सुणिवि कोहें पलित्तु, णं केण हुयासु घएण सित्तु। (3/10)

15. किं किज्जइ उण्ण पयोहराइं, कंचुय बंधणु णं वंधणाइं। (4/1)

16. किं वर णेउर सद्दइ कुणंति, णं कामभिच्च हणु हणु भणंति। (4/1)

17. विण्णिवि अंसु जलुल्लिय णित्तइ, णं सयवत्त इउ सा सित्तइ। (4/7)

18. इय वयणइ णरेंदु याणंदिउ, णं वरसागमि तरुगणु णंदिउ।
 णं दालिद्दिएण धणु लद्धउ, णं रसवाइ रसायणु सिद्धउ।
 णं वरहंसु सिवप्पुरि पत्तउ, णं हंसउ मण सरवरि रत्तउ। (4/10)

19. पिय मायरिहि महुच्छउ कीयउ, णं णवपुत्त जाउ धणु दीयउ। (4/10)

20. मायंग तुरय चंपाण जाण, विविहइ पासायइ णं विमाण। (4/18)

उक्त रेखांकित पदों में उपमेय में उपमान की संभावना दिखाई गई है।

अनुप्रास अलंकार–वर्णसाम्य अनुप्रास है।[1] बार-बार वर्णों की आवृत्ति अनुप्रास है। यह आवृत्ति स्वरसाम्यमूलक तथा स्वर वैषम्यमूलक दोनों प्रकार से हो सकती है। इतना ही नहीं यह आवृत्ति शब्द के आदि, मध्य तथा अन्त में कहीं भी हो सकती है, यथा–

1. पडिहारें विण्णवियउ चंगउ पय पोसइ अरितिमिर पयंगउ।

(प वर्ण की आवृत्ति बार-बार आती है।)

2. सुजोव्वणु रुवसुवण्ण सुअंगु, सुवंधव गेहु मुणिंदह संगु।
 सुचीरु सुभोयणु देसु णरेंदु, दिणिंदु धणिंदु सुइंदु पडिंदु। (1/22)

(स और द वर्ण की आवृत्ति बार-बार आई है।)

यमक अलंकार–सार्थक होने पर भी भिन्न अर्थ वाले स्वर व्यंजन समुदाय की क्रमशः आवृत्ति को यमक कहते हैं, यथा–

णउ गिण्हहि जिणदिक्ख परिग्गहु, पइं विणु हउं किं रहमि परिग्गहु। (4/21)

(परिग्रह शब्द में यमक अलंकार है, क्योंकि यहां पर परिग्रह के दो अर्थ हैं–एक तो जिनदीक्षा को ग्रहण के अर्थ में एवं दूसरा अर्थ धन-दौलत से है।)

1. मम्मट, काव्यप्रकाश, 9.2 (वर्णसाम्यनुप्रासः)

www.vitragvani.com

रस

रस की निष्पत्ति भावों के विविध स्वरूपों के सम्मिश्रण से होती है। अपभ्रंश प्रबंध काव्यों में रसयोजना परम्परागत है। शास्त्रीय दृष्टि से श्रृंगार, वीर और शांत रस में से एक ही अंगीरस हो सकता है।

देवेन्द्र कुमार शास्त्री के अनुसार अपभ्रंश काव्यों का समापन शान्त-रस में होता है। इसलिए वही रस मुख्य है एवं यदि समापन वाली कसौटी को हटा दिया जाए तो वर्णन की प्रचुरता और व्यापक दृष्टि से श्रृंगार और वीररसों का स्थान महत्त्वपूर्ण हो जाता है। श्रृंगार के दोनों रूपों (संयोग और वियोग) का चित्रण अपभ्रंश काव्य में विशदता से उपलब्ध होता है।

उक्त परम्परा में 'वरंगचरिउ' चरितकाव्य में भी मुख्य शान्त रस प्रधान है। साथ ही गौणरूप से श्रृंगार, वीर, रौद्र और भयानक रसों का निरूपण प्राप्त होता है, जो इस प्रकार है–

श्रृंगार रस–श्रृंगार रस के लिए आचार्यों ने आदि रस और रसराज की संज्ञा प्रदान की है। कामदेव के उद्‌भेद (अंकुरित होने) को श्रृंग कहते हैं, उसकी उत्पत्ति का कारण अधिकांश उत्तम प्रकृति से युक्त रस श्रृंगार कहलाता है।[1] मुख्यतः इसके दो भेद हैं[2]–संयोग श्रृंगार और वियोग श्रृंगार। जहां अनुराग तो अति उत्कट है, परन्तु प्रिय समागम नहीं होता, उसे वियोग श्रृंगार कहते हैं एवं एक-दूसरे से प्रेम से पगे नायक और नायिका जहां परस्पर दर्शन, स्पर्शन आदि करते हैं, वह संयोग श्रृंगार कहलाता है।

वरंगचरिउ एक धार्मिक ग्रन्थ है, फिर भी इसमें श्रृंगार रस के दोनों पक्षों का सुन्दर चित्रण हुआ है। वियोग श्रृंगार रस का चित्रण मनोरमा और कुमार-वरांग के माध्यम से प्राप्त होता है। मनोरमा प्रियमिलन के विरह से परितप्त हो जाती है,[3] यथा–

इस प्रकार श्रेष्ठ नगर में नववधुओं के साथ प्रमोद करते हुए निवास करता है। एक दिन मातुल (मामा) की पुत्री, जिसका नाम कुमारी मनोरमा है, वरांग को रतिरस में आसक्त देखती है और मन में चिंतन करती है कि इसके साथ संसर्ग/संभोग करना चाहिए। उसका शरीर व्याकुल हो जाता है। स्त्री के चित्त (मन) को कामदेव का बाण पीड़ित करता है। श्वासोच्छ्‌वास अति तीव्रवेग से प्रवाहित होते हैं, शीतल जल का लेपन भी ताप उत्पन्न करता है, शरीर की तड़फड़ाहट (तड़पन) ऐसे होती है, जैसे मछली का, जल के सूख जाने पर होती है।

1. श्रृंगं हि मन्यथोद्‌भेदस्तदागमन हेतुकः।
उत्तम प्रकृति प्रायो रसः श्रृंगार इष्यते।। (साहित्य दर्पण 3/183)
2. वही, 3/186, 187, 210 3. वरंगचरिउ, संधि–4, कडवक–2

www.vitragvani.com

क्या मेरे केश भौरों के समूह के समान है। किसी भी प्रकार से मेरे प्राणों की रक्षा नहीं हो सकती है। क्या कुंडल है, क्या मेरी बिन्दी की शोभा है, वरांग के बिना मुझे सभी लोहा जैसे भासित होते हैं। हाय-हाय क्या मेरा मुख-मंडल है, क्या मेरे कपोल है, मुक्तामणि का हार शीघ्रता से घूमता है, वह भी मुझे सर्प के जैसा भासित होता है। इन उन्नत पयोधर (स्तन) का क्या करना चाहिए, चोली का बंधन ही मानो बंधन है।

क्या करधनी (मेखला) और श्रेष्ठ माला है, क्या मेरे बहुत से वस्त्र हैं एवं क्या यौवन है, क्या श्रेष्ठ नूपुर शब्द करते हैं, मानो काम सेवक मारो-मारो कहता है। इस प्रकार सभी आभूषण विष तुल्य भासित होते हैं और कोई भी कार्य नहीं सुहाता है।

इसी प्रकार सम्भोग श्रृंगार का भी एक उदाहरण प्राप्त होता है। कुमार वरांग के विवाह के पश्चात् प्रिय मिलन होता है,[1] यथा–

कुमार भी रतिप्रमोद भोगते हुए वहां पर हर्षित हुआ। प्रवाल मूंगा की तरह सरस अधरों का चुंबन करता है, अपनी भुजाओं में प्रिय पत्नी को आलिंगित करता है। उन्नत एवं झुके हुए स्तनों को हाथों से सहलाता है। रमणी (स्त्री) के साथ शैय्या (पलंग) पर क्रीड़ा करता है। अपनी स्त्री में अनुरक्त होता है, परन्तु परस्त्री के साथ मन में भी रत नहीं होता है एवं परनारी के साथ बात भी नहीं करता है। अपनी स्त्री के लिए पान (ताम्बूल) देता है, किन्तु पर-स्त्री के साथ स्नेह अर्पित नहीं करता है।

अपनी सीमा में रहकर भ्राताओं की स्त्रियों को आदर देता है और इस प्रकार परस्त्री के प्रति भाव रखता है।

करुण-रस–करुण-रस कोमलता का प्रतीक है। इसकी अभिव्यक्ति इष्ट नाश और अनिष्ट प्राप्ति से बतायी गयी है। अर्थात् इष्ट वस्तु की हानि, अनिष्ट वस्तु का लाभ, प्रेम-पात्र का चिर-वियोग, अर्थहानि आदि से जहां शोकभाव की परिपुष्टि होती है, वहां करुण रस होता है।[2]

वरंगचरिउ में इसके उदाहरण राजधर्मसेन और रानी गुणदेवी के पुत्र विरह एवं बंधुओं के अपने पति-विरह के माध्यम से बताया गया है।[3]

वीर-रस–जिस विषय में जहां उत्साह का संचार हो अर्थात् उत्साह भाव का परिपोषण हो, वहां वीर रस होता है।[4] वरंगचरिउ में युद्ध प्रसंग में 'वीर रस' की पुष्टि होती है,[5] यथा–

1. वरांगचरिउ, संधि–1, कडवक–8 2. साहित्य दर्पण, 3/222 3. वरांगचरिउ, तृतीय संधि, कडवक–2, 3 4. काव्यदर्पण, पृ. 183 5. वरांगचरिउ, 2/9-10, 3/16-17

श्रेष्ठ हाथी के साथ हाथी भिड़ते हैं और फिर घोड़े के साथ घोड़े (घुड़सवार के साथ घुड़सवार) भिड़ते हैं, रथ पर सवार रथ पर सवार से भिड़ते हैं। युद्ध भूमि में युद्ध इतनी तेजी से हो रहा है, उड़ती हुई धूल के कारण मार्ग नहीं दिखाई पड़ रहा है। पैदल सिपाही, पैदल सिपाही को मारते हैं, योद्धा, योद्धा का परस्पर (एक-दूसरे) संहार कर रहे हैं।

दोनों सेना में रौद्रता (क्रोध का रोस) उत्पन्न हो गया है, दोनों सेनाओं की धूल से रणभूमि ढक गई है, घोड़े के मुंह से फेन एवं हाथी का मद गिरने लगा है, घाव और रुधिर से धूल भी शांत हो गई हैं। फिर वीर (बहादुर) वीर से युद्ध में लड़ते हैं, कोई भिड़ता है, कोई पृथ्वी पर मूर्च्छित पड़ा है, किसी का सिर पृथ्वी पर गिरा पड़ा है, भयानक बलवान (योद्धा) पड़े हुए हैं, कैसे धड़, हाथ और चरणादि गिरे पड़े हैं, कैसे भूमि में मरण को प्राप्त हुए।

भयानक-रस–भयानक-रस का स्थायीभाव 'भय' है। वरंगचरिउ में कुमार वरांग के भूल जाने पर भ्रमण करते हुए भयानक जंगल का वर्णन किया गया है,[1] यथा–

कहीं सिंह के रौद्र गर्जना होती है, कहीं पर हिरण क्रीड़ा करते हैं, कहीं पर हाथियों का समूह युद्ध कर रहा है, कहीं पर वराह (जंगली सुअर) भिड़ते हैं और क्रोध पूर्वक अत्यन्त लड़ते हैं, कहीं सिंह का समूह अपनी क्रीड़ा में लवलीन है, कहीं पर सांभर (राजस्थान का जंगली पशु) और नील गायों का समूह प्राप्त करता है। कहीं पर मयूरी नाच रही है एवं मधुर शब्द कर रही हैं। उस जंगल में कुमार भूला हुआ भ्रमण करता है। किसी तरह वह बेचारा श्रेष्ठमार्ग नहीं पाता है।

हत्या (मारने) करने के लिए भयानक आवाज हो रही है। फिर तुरन्त ही सिंह को पाता है, वह विकराल दांतों वाला, (भक्षण करने के लिए) अपनी जीभ को लपलपा रहा था। उसकी पूंछ बड़ी और निरन्तर हिंसक थी। क्रूरता से युक्त वह दुष्ट मानो प्रलयकाल हो।

यह देखकर राजपुत्र (वरांग) शंकित होता है, जीवन के भय से शरीर कांपने लगता है और वह शीघ्र वृक्ष पर चढ़ जाता है।

शान्त-रस–वरंगचरिउ में अध्यात्म एवं दर्शन होने से मुनि-प्रसंग में दो स्थान पर शान्त-रस का प्रतिपादन प्राप्त होता है, साथ ही इसका अन्त भी शान्त-रस से ही होता है।

1. वरांगचरिउ, प्रथम संधि, कडवक–20, 21

www.vitragvani.com

VIII. चारित्रिक विकास

'वरंगचरिउ' एक मध्ययुगीन चरितकाव्य है, जिसका नायक और कथानक दोनों ही पौराणिक परम्परा में बाईसवें तीर्थंकर भगवान् नेमीनाथ के समय से सम्बद्ध हैं। जहाँ कथा और उसके पात्र परम्परागत होते हैं तथा उनका चरित्र भी बहुत कुछ रूढ़ और परम्परागत है। अनुभूति युगीन यथार्थ को उसमें खोजना व्यर्थ है।

अतः ऐसे काव्यों में चरित्र-चित्रण का अर्थ यह देखना है कि उसमें कितनी नवीनता और परिस्थिति के अनुकूल कितना स्पन्दन हमें मिलता है। मध्ययुगीन काव्यों में नायक अधिकतर पुरुष ही होता है अतः कुमार वरांग इसका नायक है।

प्रधान पात्र के रूप में वरांगकुमार ही है, इसके अतिरिक्त धर्मसेन, देवसेन, गुणदेवी, मृगसेना, सुषेण, सुबुद्धि (मंत्री), वणिपति, सागरबुद्धि और भिल्लराज आदि इस काव्य के प्रमुख पात्र हैं, जिनके चारित्रिक विकास को वरांगचरिउ में देखा जा सकता है।

वरांग कुमार–'वरंगचरिउ' में कुमार वरांग का अन्य नाम 'वरतणु' भी प्राप्त होता है। युवराज वरांग के अनेक विशेषण वणिवरपहाण, सुन्दर, चारुवयण, चारूगत आदि वरंगचरिउ में प्राप्त हेते हैं। भोजवंशीय राजा धर्मसेन एवं गुणदेवी के यहां कुमार वरांग का जन्म हुआ था। कुमार के नगर का नाम कंतपुर था, जो विनीत देश में रम्या नदी के तट पर विद्यमान था। नूतन चन्द्रमा की तरह कुमार वरांग वृद्धिंगत हो रहा था।

"गुणदेविहि पुत्तु वरंगु जाउ, परिवड्ढिउ णवससि जिम कलाउ।"

जब वह युवा हो गया तो उसका विवाह ललितपुर के राजा देवसेन की पुत्री सुनन्दा के साथ हुआ, साथ ही अनेक राजाओं की पुत्रियों का भी विवाह उसके साथ हुआ एवं एक वणिक्पुत्री के साथ भी उसका विवाह हुआ।

वरांग उदार, निर्भीक (निडर), निपुण, विवेकवान, दयालु, वीर आदि अनेक गुणों से युक्त था।

गुणदेवी–गुणदेवी उत्तमपुर के राजा धर्मसेन की प्रिय पटरानी और कुमार वरांग की माता है। माता के गुणों का बखान नहीं किया जा सकता है, वैसे ही गुणदेवी के मातृरूप का वर्णन करना अशक्य है। मातृस्नेह की जीवन्त प्रतिमा के रूप में गुणदेवी का वर्णन वरंगचरिउ में किया गया है।

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

धर्मसेन–उत्तम प्रजापालक एवं अधिपति धर्मसेन थे, जो भोजवंश के अद्वितीय नक्षत्र थे। उनमें वीरता, साहस, धार्मिक, पुत्रस्नेह एवं दयालुता आदि अनेक गुणों का सद्‌भाव था। वे कुमार वरांग के पिता थे, जो कुमार को बहुत ही स्नेह किया करते थे। कुमार के खो हो जाने पर वे बहुत अधिक शोकातुर हो जाते हैं, जिसका तेजपाल ने अत्यन्त मार्मिक वर्णन किया है–

हे पुत्र! तुम्हारे बिना कौन सहारा है, शोक से उठते और गिरते हैं, तुम्हारे बिना घर आंगन सूना है, तुम्हारे बिना कौन शत्रुराजा और सेना का संहार करेगा, तुम्हारे बिना कौन दुर्जनों को आतापित करेगा। यहां तक कहा है कि नयनों से जो आंसू बह रहे हैं, मानो विधाता ने झरने का निर्माण किया हो। तुम्हारे बिना कुछ भी अच्छा नहीं लगता है, तुम्हारे बिना ताम्बूल का लेपन दाह की तरह अति वेदना देता है,[1] पुनः जब कुमार वरांग घर पर वापिस आता है, तब पुनः उसको राज्याभिषेक देने को तैयार हो जाते हैं।

IX. प्रकृति-चित्रण

प्रकृति मानव की जन्म से ही सहचारिणी है। प्रकृति सदा ही उसे निष्कलुष एवं असीम-सुषमा का उन्मुक्त वातावरण प्रदान करती रही है। प्रकृति मनुष्य के लिए अपना सब कुछ समर्पित करती रही है। हम प्रकृति की गोद में जन्म लेते हैं और जीवन पर्यन्त उसके प्रतिक्षण नवीन लगने वाले सौन्दर्य को देख-देखकर प्रेरित और भावित हुआ करते हैं।

प्राचीन भारतीय कवियों की कृतियों में प्रकृति के विविध रूपों का अत्यन्त मार्मिक चित्रण मिलता है। इसी परम्परा में वरांगचरिउ में भी सामान्य रूप से प्रकृति चित्रण किया गया है। इस ग्रन्थ में कवि ने प्रसंगवश नगर, नदी, तालाब, समुद्र एवं वृक्ष आदि का वर्णन किया है, जो प्रकृति के ही अंग है। मुनिराज की तपस्या प्रसंग में षट्‌ऋतु का नाम दिया है। वहां कहा है कि मुनिराज छह ऋतुओं में कैसे तप-तपते हैं।

यथा–

हिमसिसिरवसंतइ गिंभयालि, अण्णु वि वरसालइ सद्दयालि।
सुह भुंजइ अंतेवर समाणु, जिणधम्म कुणंतउ णयपमाणु।।

(वरंगचरिउ 4/16)

1. वरांगचरिउ, कडवक–3/2

www.vitragvani.com

X. धार्मिक-विवेचन

'वरंगचरिउ' एक चरितकाव्य है। इस काव्य-ग्रन्थ में कवि ने प्रसंगवश संक्षिप्त रूप में धार्मिक एवं दार्शनिक-विवेचन प्रस्तुत किये हैं। स्वभावतः जो भी प्रासंगिक रहा, उसका संक्षिप्त परन्तु प्रामाणिक विवेचन किया है। इसलिए कथा-प्रवाह बोझल नहीं हो पाया है। दार्शनिक सूत्र उतने ही प्रस्तुत किये गये हैं, जो कथा संचालन में सहयोगी बन सके।

धर्म भारतीय संस्कृति का प्राण है। मानव हृदय उदार और विशाल धर्म से ही बनता है। अतः कवि का धार्मिक होना अत्यन्त वांछनीय है। श्रेष्ठ काव्य भी उसे ही माना जाता है, जिसमें धर्म का प्ररूपण होता है। इस सम्बन्ध में भगवज्जिनसेनाचार्यजी ने स्पष्ट कहा है कि कविता वही प्रशंसनीय समझी जाती है, जो धर्मशास्त्र से सम्बन्ध रखती है। शेष कविताएँ तो मनोहर होने पर भी मात्र पापाश्रय के लिए ही होती हैं। कितने ही मिथ्यादृष्टि कानों को प्रिय लगने वाले, मनोहर काव्यों की रचना करते हैं, परन्तु उनके वे काव्य पापानुबन्धी होने से धर्मशास्त्र के निरूपक न होने के कारण सज्जनों को संतुष्ट नहीं कर पाते। अतः बुद्धिमानों को शास्त्र और अर्थ का अच्छी तरह अभ्यास कर तथा महाकवियों की उपासना करके ऐसे काव्य की रचना करनी चाहिए, जो धर्मोपदेश सहित हो, प्रशंसनीय और यश को बढ़ाने वाली हो।[1]

धर्म का स्वरूप

धार्मिक आचार्यों के समक्ष प्राथमिक समस्या रही है कि धर्म की परिभाषा क्या हो? वह परिभाषा ऐसी होनी चाहिए जो सार्वभौमिकता एवं यथावश्यक गुणों से ओत-प्रोत हो। साधारणतः धर्म के साथ कई भावनाएँ, रीति-रिवाज तथा क्रियाकाण्ड जुड़े रहते हैं, पर उन्हें धर्म नहीं कहा जा सकता। धर्म तो वस्तुतः आन्तरिक विशुद्धि भावना से सम्बद्ध है, जिसमें वैयक्तिकता और सार्वभौमिकता क्षीर-जलवत् घुली रहती हैं। विश्वास (श्रद्धा) धर्म का प्राण है, पर उसे सम्यग्ज्ञान, भावना और आचरण (चरित्र) पर आधारित होना चाहिए। इसलिए धर्म भावनात्मक, ज्ञानात्मक और क्रियात्मक—इन तीनों तत्त्वों का समन्वित रूप होना चाहिए।

जैनाचार्यों द्वारा निर्धारित धर्म की परिभाषाओं का यदि विश्लेषण किया जाए तो उन्हें हम तीन वर्गों में विभाजित कर सकते हैं—आध्यात्मिक, सामाजिक और आध्यात्मिक-सामाजिक।

प्रथम आध्यात्मिक परिभाषा के अनुसार वैयक्तिक विशुद्धि पर अधिक जोर दिया जाता है, जिसमें रागादि भाव से निवृत्ति हो, मिथ्यात्व से मुक्त हो और मोहक्षय के फलस्वरूप आत्मा के स्वाभाविक परिणामों की अभिव्यक्ति हो।

1. आदि पुराण—जिनसेनाचार्यकृत, सम्पा. एवं अनुवादक—पन्नालाल जैन, भारतीय ज्ञानपीठ, 1988, तृतीय संस्करण, आदिपुराण—1/62—64

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

जैनाचार्यों ने धर्म की द्वितीय परिभाषा पर भी गहनता से चिन्तन किया है। उनकी दृष्टि में व्यक्ति के साथ ही समाज भी अनुस्यूत है। अतः धर्म को सामाजिकता की सीमा में कसने के लिए उन्होंने उसे और व्यापक बनाया और कहा कि धर्म वह है, जो अहिंसामय हो, दयामूलक हो और संयमगर्भित हो। धम्मोदयाविसुद्धो,[1] अहिंसादिलक्षणोधर्मः,[2] धम्मोमंगलमुक्किट्ठं अहिंसा संजमो तवो[3] आदि परिभाषाओं में व्यक्ति की अपेक्षा समाज प्रमुख हो जाता है।

धर्म की तृतीय परिभाषा में व्यक्ति और समाज–दोनों समाहित हो जाते हैं। उसमें सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप रत्नत्रय के परिपालन को धर्म माना गया है–रयणत्तयं च धम्मो जीवाणं रक्खणं धम्मो। व्यक्ति और समाज की सारी गतिविधियों का मूल्यांकन रत्नत्रय की परिधि में हो जाता है। जीवन की यथार्थ व्याख्या और लक्ष्य प्रतिष्ठा इसी में संघटित हो जाती है।

राजा धर्मसेन अपने परिजन सहित गणधर वरदत्त केवली से धर्म का स्वरूप पूछते हैं–

पुच्छइ महिवइ भत्ति कयायर, धम्मसरूप कहहि गुणसायर। (1/10)

नृप के वचनों को सुनकर मुनिराज कहते हैं–श्रेष्ठ धर्म वह है, जो सिद्धगति (मोक्ष) को ले जाने वाला है, जो भवसागर (संसार) से तारने वाला है, प्रशम धारण करने से शुभगति का बंध होता है, चारों गतियों के दुःखों के बंधनों से मुक्त करने वाला है, ऐसा वह धर्म सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रय रूप करने योग्य है–

अक्खइ परमधम्मु सिवगामिउ।

सम्मद्दंसणरयण करंडउ, जो भवसायर तरणतरंडउ।

पढमु धरिज्जइ सुहगइ वंधणु, किज्जइ चउगइ दुक्खहं रूंधणु।

सम्यक्दर्शन आदि रत्नत्रय स्वरूप

रत्नत्रय का आशय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र से है। इन तीनों की एकता ही मोक्षमार्ग का कारण है।[4]

रत्नत्रय का महत्त्व–शिवमार्ग को ले जाने वाला श्रेष्ठ धर्म है। जो भवसागर को पार कराने वाला, शुभगति के बंध का कारण, चतुर्गति के दुःखों को नष्ट करने वाला, इन्द्र, प्रतीन्द्र, चन्द्र, विद्याधर, सुरेन्द्र, नर, चक्रवर्ती और बलभद्र जिस रत्नत्रय को प्रणाम करते हैं, वह रत्नत्रय श्रेष्ठ है।[5]

1. बोधपाहुड–25 गाथा 2. तत्त्वार्थ राजवार्तिक–6/13/5 3. दसवेयालियं 1.1 4. तत्त्वार्थसूत्र 1/1, सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणिमोक्षमार्गः। 5. वरंगचरिउ, प्रथम संधि, कडवक–10

www.vitragvani.com

सम्यग्दर्शन

आचार्य उमास्वामी सम्यग्दर्शन का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं—सातों तत्त्वों का यथार्थ श्रद्धान ही सम्यग्दर्शन है।[1] यही भाव पं. तेजपाल ने भी प्रतिपादित किये हैं। सम्यक् दर्शन के बिना व्रत निरर्थक है और व्रत के बिना मनुष्य जन्म निरर्थक है।

अर्थात् दुःखों से स्थायी छुटकारा पाने के लिए सबसे पहले सम्यक्त्व की प्राप्ति करना चाहिए। मुक्ति के लिए सात तत्त्वों पर दृढ़ आस्था का होना सम्यक्दर्शन है और उनका ज्ञान होना ही सम्यग्ज्ञान है। ये दोनों ही आगे बढ़ने की भूमिका रूप हैं। इनके बिना मुक्ति के लिए प्रयत्न करना व्यर्थ है। जिस जीव को इस प्रकार का दृढ़ श्रद्धान और ज्ञान हो जाता है, वह सम्यग्दृष्टि कहलाता है।[2] अर्थात् उसकी दृष्टि ठीक मानी जाती है। सम्यग्दर्शन को मोक्षमार्ग में कर्णधार (खिवैया) बतलाया है। जैसे नाव को ठीक दिशा में ले जाना खेने वालें के हाथ में नहीं होता किन्तु नाव के पीछे लगे हुए डॉड संचालन करने वाले के हाथ में होता है। वह जहां भी घुमाता है, वहां ही नाव की गति हो जाती है। यही बात सम्यग्दर्शन के विषय में भी जानना चाहिए। इसी कारण जैन सिद्धान्त में सम्यग्दर्शन का बहुत महत्त्व है। इसके बिना न कोई ज्ञान सम्यग्ज्ञान कहलाता है और न कोई चारित्र सम्यक्चारित्र कहलाता है।[3]

श्रावकधर्म का प्रतिपादन बारह व्रतों एवं अहिंसा आदि अनेक लक्षणों के रूप में पाया जाता है।

श्रावक का अर्थ—श्रावक शब्द तीन गुणों के संयोग से बना है—1. श्रद्धावान, 2. विवेकवान और 3. क्रियावान। जिसमें इन तीन गुणों का समावेश पाया जाता है, उस व्रतधारी गृहस्थ को श्रावक, उपासक और सागार आदि नामों से अभिहित किया जाता है। वह श्रद्धापूर्वक अपने गुरुजनों, मुनियों के प्रवचन का श्रवण करता है, अतः वह श्रावक कहलाता है।

व्रत एक अटल निश्चय है, जब तक मानव व्रत ग्रहण नहीं करता, तब तक उसका मन अस्त-व्यस्त रहता है, उसकी बुद्धि निश्चल और निश्छल नहीं हो पाती। व्रत एक प्रकार की प्रतिज्ञा है। व्रत को ग्रहण करना एक प्रकार से प्रतिज्ञाबद्ध होना है। प्रतिज्ञाबद्ध व्यक्ति निश्चल हो जाता है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय आदि जो व्रत हैं, वे किसी एक ही धर्म की धरोहर नहीं हैं और न उन पर किसी का एकाधिकार ही है। ये व्रत सभी व्यक्तियों के लिए समाज और राष्ट्र के लिए हैं, जिनमें योग्यता और क्षमता है, वे व्यक्ति व्रत ग्रहण कर सकते हैं।[4]

व्रतों का मूल उद्देश्य कर्मों की निर्जरा है। आत्मशुद्धि, परमात्मा भाव की प्राप्ति और वीतरागता की उपलब्धि है। कोई भी भौतिक, सांसारिक लालसा, स्वार्थ, भय, प्रलोभन व्रतों का

1. तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं, 1/2 2. वरंगचरिउ, कडवक 1/11 3. जैन धर्म की सांस्कृतिक विरासत, पृ. 98
4. वही, पृ. 112

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

उद्देश्य नहीं है।[1] पं. तेजपाल व्रत का महत्त्वपूर्ण वर्णन करते हुए कहते हैं कि 'वयविणु मणुयजम्मु अकयत्थउ'[2] अर्थात् व्रत के बिना मनुष्य जन्म सार्थक नहीं है और आगे बारह व्रतों का प्रयोजनभूत वर्णन किया है–

रिउ रिउ पयार सावय वयाइ।
दिढु करि पालिज्जइ सावयाइ।।[3]

अर्थात् श्रावक के लिए 12 व्रतों का पालन दृढ़ता से करना चाहिए। वह बारह व्रत इस प्रकार हैं–पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत।

अणुव्रत–हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील और मूर्च्छा (परिग्रह)–इन पांचों पापों से स्थूलरूप या एकदेश रूप से विरत होना अणुव्रत है। अणु शब्द लघु या छोटे के अर्थ में प्रयुक्त होता है। जो स्थूलरूप से पांचों पापों का त्याग करता है, वही अणुव्रत का धारी माना जाता है।

1. अहिंसाणुव्रत–जीवों की हिंसा से एकदेश विरत होना अहिंसाणुव्रत है। मन, वचन, काय और कृत, कारित, अनुमोदन से दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चौइन्द्रिय तथा पंचेन्द्रिय जीवों का घात न करना अहिंसाणुव्रत है।[4] प्रथम जीव का अभयदान का व्रत रखना चाहिए। अपने समान ही जीवमात्र को मानना चाहिए। त्रसकाय जीवों की रक्षा करना चाहिए। स्थावर जीवों में भी परिमाण रखना चाहिए।[5] दम्भ,पाखण्ड, ऊँच-नीच की भावना, अभिमान, स्वार्थबुद्धि, छल-कपट प्रभृति भावनाएँ हिंसा हैं। अहिंसा में त्याग है, भोग नहीं। जहां राग-द्वेष है, वहां हिंसा अवश्य है। अतः राग-द्वेष की प्रवृत्ति का नियंत्रण आवश्यक है।[6]

2. सत्याणुव्रत–अहिंसा और सत्य में घनिष्ठ सम्बन्ध है। एक के अभाव में दूसरे की साधना शक्य नहीं। ये दोनों एक-दूसरे के पूरक तथा अन्योन्याश्रित हैं।[7] जो स्थूल झूठ न तो स्वयं बोलता है और न दूसरों से बुलवाता है तथा विपत्ति का कारणभूत सत्य-वचन भी न तो स्वयं बोलता है और न दूसरों से बुलवाता है, उसी को सत्याणुव्रत कहते हैं।[8] असत्य कभी भी नहीं बोलना चाहिए, हित-मित प्रिय वचन ही बोलना चाहिए।[9] अतः स्थूल झूठ का त्याग किये बिना प्राणी अहिंसक नहीं बन सकता है।

3. अचौर्याणुव्रत–मन, वचन और काय से किसी की सम्पत्ति को बिना आज्ञा न लेना अचौर्याणुव्रत है अर्थात् स्वयं अथवा अन्य व्यक्तियों के द्वारा दिये गए पर-द्रव्य को ग्रहण नहीं

1. जैन धर्म की सांस्कृतिक विरासत, पृ. 114 2. वरंगचरिउ, कडवक 1/11 3. वरंगचरिउ, 1/16 4. रत्नकरण्ड श्रावकाचार, 3/53 5. वरंगचरिउ, 1/16 6. जैन धर्म की सांस्कृतिक विरासत, पृ. 116 7. वही, 116 8. रत्नकरण्ड श्रावकाचार 3/55 9. वरंगचरिउ, 1/16

www.vitragvani.com

करना, मार्ग में पड़े हुए या रखे हुए पर-द्रव्य को नहीं लेना, न उसे दूसरे व्यक्ति को देना, न अपने हाथों से स्पर्श करना, चोरों के समूह में भ्रमण नहीं करना, चोर के साथ व्यापार और स्नेह नहीं करना, न लोभ से उसके घर जाना और मन, वचन, काय से चोर के कार्यों का त्याग देना, अचौर्याणुव्रत है। अचौर्याणुव्रत के पालन करने से लोक और परलोक में सुख की प्राप्ति होती है।[1] तीसरे व्रत—पर-द्रव्य को ग्रहण नहीं करना चाहिए।[2]

4. ब्रह्मचर्याणुव्रत—ब्रह्मचर्याणुव्रत का दूसरा नाम स्वदार संतोष[3] व्रत भी कहा है। मन, वचन और काय से अपनी भार्या के अतिरिक्त शेष समस्त स्त्रियों के साथ विषयसेवन का त्याग करना स्वदार संतोषव्रत है।[4] जिस प्रकार श्रावक के लिए स्वदार संतोषव्रत का विधान है, वैसे ही श्राविका के लिए स्वपति संतोष का नियम है।[5] ब्रह्मचर्य को धारण करना चाहिए जो संसार को तारने वाला है।[6]

5. परिग्रह परिमाण व्रत—धन, धान्य, स्वर्ण, गृह, दासी, दास, ताम्बूल, विलेपन एवं उत्तम सुवास, इनके प्रति लोभ की भावना का त्यागकर, इन वस्तुओं का परिमाण करना परिग्रह परिमाण व्रत है।[7] अर्थात् संसार के धन, ऐश्वर्य आदि का नियमन कर लेना भी परिग्रह परिमाण व्रत है।

गुणव्रत और शिक्षाव्रत

श्रावक धर्म में गुणव्रत और शिक्षाव्रत अहिंसा की साधना को आगे बढ़ाने के लिए हैं। गुणव्रत तीन हैं—

1. दिग्व्रत,
2. देशावकाशिक व्रत,
3. अनर्थदण्ड व्रत।

1. दिग्व्रत—सभी दिशाओं और विदिशाओं का सीमित करना, बढ़ते हुए मन का विरोध करना एवं दिन-प्रतिदिन प्रभातकाल में नियम ग्रहण करना, प्रथम (दिग्व्रत) गुणव्रत है। जो पाप को हरण करने वाला है।[8] अपनी इच्छाओं को सीमित करने के लिए सभी दिशाओं का परिमाण करना दिग्व्रत है। अर्थात् अर्थलोलुपी मानव तृष्णा के वश होकर विभिन्न देशों में परिभ्रमण करता है और विदेशों में व्यापार—संस्थान स्थापित करता है। मनुष्य की इस निरंकुश तृष्णा को नियंत्रित करने हेतु दिग्व्रत का विधान किया गया है। पूर्वादि दिशाओं में नदी, ग्राम, नगर आदि प्रसिद्ध

1. पासणाहचरिउ, 5/5/4-7 2. वरंगचरिउ, 1/16 3. वही, 1/16 4. वही, 1/16 5. वरंगचरिउ, 1/15 6. वही, 1/16 7. वही, 1/16 8. रइधू पासणाहचरिउ, 5/6/1-2

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

स्थानों की मर्यादा बांधकर आजन्म उससे बाहर न जाना और उसके भीतर लेन-देन करना दिग्व्रत है।[1]

2. देशावकाशिकव्रत–दिग्व्रत में जीवन पर्यन्त के लिए दिशाओं का परिमाण किया जाता है। इसमें किये गये परिमाण में कुछ समय के लिए किसी निश्चित देश पर्यन्त आने जाने का नियम ग्रहण करना देशावकाशिक व्रत है।

3. अनर्थदण्डव्रत–प्रयोजन रहित पापबंध के कारणभूत कार्यों से विरक्त होने को अनर्थदण्ड व्रत कहते हैं।[2] बिना प्रयोजन के कार्यों का त्याग करना, अनर्थदंडव्रत कहलाता है। जिनसे अपना कुछ भी लाभ न हो और व्यर्थ ही पाप का संचय होता है तो ऐसे कार्यों को अनर्थदण्ड कहते हैं और उनके त्याग को अनर्थदण्डव्रत कहा जाता है।

शिक्षाव्रत–जिनके प्रभाव से विशेष श्रुतज्ञान का अभ्यास हो या जिससे मुनिव्रत पालन करने की शिक्षा मिले, उन्हें शिक्षाव्रत कहते हैं।[3]

शिक्षाव्रत चार प्रकार के होते हैं–1. सामायिक, 2. प्रोषधोपवास, 3. अतिथिसंविभाग व्रत, 4. भोगोपभोग परिमाण व्रत।

1. सामायिक–समभाव या शान्ति की प्राप्ति के लिए सामायिक करना चाहिए। समस्त कर्मों से विरत होकर नियत स्थान पर नियत समय के लिए मन, वचन और काय के एकाग्र करने को सामायिक व्रत कहते हैं। वरांचरिउ में सामायिक का प्रतिपादन करते हुए बताया है कि तीनों काल में सामायिक करना चाहिए अथवा दिन में 6-6 घड़ी तक सामायिक करना चाहिए।[4] रइधू कवि ने पासणाह चरिउ में सामायिक का मनभावी विवेचन किया है–''सभी जीवों को मैं नियम से क्षमा करता हूँ, वे भी मुझे प्रसन्न होकर क्षमा करें, ऐसा विचार कर सभी सावद्य कर्मों का त्याग करें तथा जिन भगवान् के सम्मुख बैठकर निष्कपट भाव से पर्यंकासन मारकर, मन को स्थिर करके और सुखकारी रत्नत्रय का स्मरण कर अपनी शक्ति पूर्वक संकल्प छोड़कर सामायिक करें। ज्ञानी व्यक्ति सिद्ध, बुद्ध, चेतन, पवित्र, अमूर्त्त, निरंजन एवं निर्दोष आत्मा का भावनापूर्वक ध्यान करें। निश्चय से इसे सामायिक शिक्षाव्रत कहते हैं।[5] जितने समय तक व्रती सामायिक करता है, उतने समय तक वह महाव्रती के समान हो जाता है।

2. प्रोषधोपवास–पाँचों इन्द्रियाँ अपने-अपने विषय से निवृत्त होकर उपवासी नियंत्रित रहें, उसे उपवास कहते हैं। प्रोषध अर्थात् पर्व के दिन उपवास करना प्रोषधोपवास है। सामान्य तौर

1. जैन धर्म की सांस्कृतिक विरासत, पृ. 120 2. रत्नकारण्ड श्रावकाचार, 4/67 3. वही, 5/91 4. वरंगचरिउ, कडवक 1/16 5. रइधू. पास. 5/7/1–6

www.vitragvani.com

पर चारों प्रकार के आहार का त्याग करना उपवास है, पर सभी इन्द्रियों के विषय भोगों से निवृत्त रहना ही यथार्थ में उपवास है। अष्टमी, चतुर्दशी एवं पर्व के दिनों में आरम्भ कार्यों में संवर करें, सप्तमी और नवमी को भव्यजन लालसा छोड़कर एक बार भोजन करें। एक माह में अष्टमी और चतुर्दशी को उपवास करना चाहिए।[1] साथ ही उस दिन सावद्य कर्मों का त्याग करें और शुभ धर्मध्यान में रत रहें।

3. अतिथिसंविभाग–गुणवान व्यक्ति को घर के दरवाजे पर आये हुए सत्पात्र को पड़गाहना चाहिए। अपनी शक्तिपूर्वक उसे गौरव के साथ मान कषायादि छोड़कर दान देना चाहिए, यही अतिथिसंविभागव्रत है। जो संयम की रक्षा करते हुए विहार करता है अथवा जिसके आने की कोई निश्चित तिथि नहीं है, वह अतिथि है। इस प्रकार के अतिथि को शुभ चित्त से निर्दोष विधिपूर्वक आहार देना अतिथि संविभाग व्रत है। इस प्रकार के अतिथियों को योग्य औषध, धर्मोपकरण, शास्त्र आदि देना इसी व्रत में सम्मिलित है।

4. भोगोपभोग परिमाण–भोग का अर्थ है जो वस्तु एक बार भोगी जाती है। जैसे–आहार-पान, गन्ध-माला आदि एवं जिस वस्तु का बार-बार उपयोग किया जाता है, उसे उपभोग कहते हैं। जैसे–वस्त्र आदि। विषयासक्ति को कम करने के लिए भोग-उपभोग की वस्तुओं का कुछ समय के लिए अथवा जीवन-पर्यन्त के लिए परिमाण करना भोगोपभोग परिमाणव्रत है। भोग के बारे में यह भी कहा कि–''पालियइ कंख भोयहु विरत्तु।''[2]

अर्थात् इच्छाओं का परिमाण करके संयम का पालन करना एवं भोगोपभोग वस्तुओं का परिमाण करना चाहिए। अपने मन को स्थिर करके भोग-उपभोगों की संख्या सीमित करना चाहिए, जिनसे संवर बढ़ता है, संसार रूपी वृक्ष जल जाता है और सुस्थिर (मोक्ष) पद प्राप्त होता है।

सप्त व्यसन

पं. तेजपाल द्वारा वरंगचरिउ में व्यसनों का वर्णन विस्तृत रूप से किया गया है। व्यसन का अर्थ है–जिस कार्य को एक बार करने पर भी उचित-अनुचित का विचार नहीं रहता है और पुनः प्रवृत्ति होती है, उसे व्यसन कहते हैं। व्यसन का तात्पर्य बुरी आदतों और बुरे कार्यों से है। जुआ, माँस, मद्य, वेश्या, शिकार, चोरी और परस्त्री सेवन–इस प्रकार ये सात महापापरूप व्यसन हैं। बुद्धिमान पुरुष को इन सबका त्याग करना चाहिए।[3]

लोक में निंदनीय सप्त व्यसन अग्रलिखित हैं–

1. जुआ–जुआ अनर्थ का मूल कारण है। जुआ (द्यूतक्रीड़ा) अत्यधिक दुःख को देने वाला

1. वरंगचरिउ, 1/16 2. वही, 1/16 3. पंचविंशतिकाय, पद्मनंदिकृत, जीवराज ग्रन्थमाला, 1932, अध्याय–6, पृ. 10

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

है। व्यक्ति अपने धन को जुआ में हारता है और दूसरे के धन की वांछा करता है। यहां तक कि अपने घर को भी दांव पर लगा देता है। अपयश और अकीर्ति में पड़ते हुए प्रत्यक्ष देखा जाता है। सत्य का हनन करता है एवं असत्य की भावना रखता है। खेलते हुए दया धर्म का विनाश करता है। हारने पर कटु वाणी (गालियां) बोलता है। अथवा यदि दूसरे के धन को किस प्रकार प्राप्त करूं और साथ ही मद्य-मांस का सेवन भी करता है। धन हारने पर रोता है और परिजनों एवं अपनी पत्नी को भी छोड़ता है। जुआ के कारण राजा युधिष्ठिर सहित पांचों पाण्डव बारह वर्ष तक जंगल में रहे। जुआ से अत्यधिक दुःख को प्राप्त करता है। जुआ में रमण करते हुए अपने नरभव को हारता है। उसके द्वारा अपने आपका ही नाश होता है। अतः यह जानकर जुआ नहीं खेलना चाहिए और मनुष्य जन्म को सार्थक बनाना चाहिए।[1]

2. मांसाहार–जो मनुष्य गृद्धता से मांस का सेवन करता है, वह अपने आपको दुर्गति में गिराता है। जो जंगल जाकर, जाते हुए निर्बल मृग को मारकर खाता है, उसके समान पापी दूसरा नहीं है, न ही प्राप्त किया जा सकता है। जो जिह्वा की लंपटतावश माँस का भक्षण (पलु) करता है, वह कुत्ते के समान जड़ का जड़ है। मांस, गुत्थ, मूत्र और कृमि आदि का अशुभ समूह है और उसी में कलेवर को छोड़ता है, जो किसी से छुपा नहीं है। शुभ मनुष्य दृष्टि भी नहीं डालता है। पापी पापबुद्धि से सदा भक्षण करता है। जो जानकर स्वयं ही छोड़ता है और व्रतों को प्राप्त करता है, वह सुख को प्राप्त करता है। जो मांस की आशा से जीता है और जीवों को त्रास (नष्ट) करता है, वह नित्य ही नरक के निवास को प्राप्त करता है।[2]

3. मद्यपान–मदिरा में मत्त व्यक्ति कुछ भी नहीं जानता है।

"मइरा मत्तउ किंपि ण याणइ, जणणि-सहोयरि-तिय सममाणइ।
मत्तउ मग्गे पडेइ तुरंतउ, सुणहुल्लउ मुहि सवइ सरंतउ।।"[3]

अर्थात् मदिरा में मस्त व्यक्ति माता, बहिन और पत्नी को समान मानता है। मस्त होने पर मार्ग में गिरता है और कुत्ते आकर मुंह में पेशाब करते हैं। मद्य में मस्त होकर किसी की नहीं सुनता है, माता, पिता और बंधुजनों का अपमान करता है। गाता, बकता, नाचता और खिलखिलाकर हंसता है, अपने आपको दुःख सागर में डालता है। व्यर्थ में ही क्रोध रूप अग्नि को धारण करता है, दूसरों को मारता है एवं स्वयं का भी संहार करता है। जीव की निगोदराशि परिपूर्ण है और पाप रूपी वृक्ष निरंतर बढ़ रहा है। मांस और मद्य में कोई भी अंतर नहीं है। अन्य जन्म में निरंतर (हमेशा) दुःख देते हैं। यह नरक का कारण भी है। इस प्रकार जानकर के व्रत को रखना चाहिए। मद्य का सेवन करने वाले को उसे त्याग कर सत्संगति करना चाहिए, क्योंकि 56 करोड़ यादव बली, सुरा में रमणता के कारण यमपुरी को प्राप्त हुए थे।

1. वरंगचरिउ, 1/11 2. वही, 1/11 3. वही, 1/12

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

इस प्रकार दोषों को सुनकर व्रत का नाश करने वाले, ऐसे व्यसनों का मन से त्याग करना चाहिए।[1]

4. वेश्या सेवन—वेश्या कुत्सित मांस और शराब का सेवन करती है एवं मिथ्यावचन नित्य ही कहती है। धनवान कुरूप को भी प्रवेश करवाती है लेकिन निर्धन (अर्थहीन) रूपवान को भी निर्धनता के कारण प्रवेश नहीं करने देती है। एक के साथ रमती है एवं अन्य एक का चिंतन करती है। लज्जिततता से रमते हुए व्यक्ति कोढी होता है।

वेश्या के अंग रूप के बारे में क्या कहा जाये, विधाता ने उसे पाप के समूह से निर्मित किया है। जो रमण करता है, वह सभी प्रिय स्वामी है। वह निश्चित रूप से कुयोनि को गमन किया करता है।[2]

5. शिकार—वन में बहुत से जीवों का निवास होता है। तिर्यंचों की अवस्था बहुत ही दयनीय है। निर्दोष प्राणियों को नहीं मारना चाहिए। बेचारे बेजुबान होते हैं, उनको सन्ताप नहीं देना चाहिए। "जो तहं संहारइ पावयम्मु, तहि सरिसउ अवरू ण को अहम्मु"। जो उनका पापकर्म से संहार करता है, उसके समान अन्य कोई दूसरा अधर्मी नहीं है। जिस प्रकार गेंद की तरह पृथ्वी का घूमना होता है, वैसे ही चारों गतियों में जीव का भ्रमण होता है। सभी जीव अपने आपको बहुत प्यार करते हैं। उसे अन्य का घात करके गर्व नहीं करना चाहिए। उसकी कुत्सित योनि का प्रारंभ हो जाता है, जो मूर्ख दूसरे जीव का घात करता है। व्यक्ति जैसे अपने आपको सुख में चाहता है, वैसे ही अन्य के प्राणों का भी हरण और संताप न दे, बल्कि सुख प्रदान करना चाहिए।

इस प्रकार जानकर जीवों की रक्षा करना चाहिए, ऐसा मन, वचन और काय से करने को कहा गया है।[3]

6. चोरी—चोर (तस्कर) सभी लोगों से क्रोधपूर्वक लाभ को प्राप्त करता है, वह घर के मुखिया के सिर का छेदन-भेदन कर देता है अथवा पैर आदि अंगों का भी छेदन कर देता है। दूसरों के धन की चोरी करते हुए उसे दया भी नहीं आती है। चोर के मारते हुए कोई रक्षा नहीं करता है। जो पाप कर्म से परद्रव्य को हरता है, वह भववन में भ्रमण करता रहता है। जैसे दूसरों की लक्ष्मी का अपहरण किया करता है, वैसे वह स्वयं ही अपने आपको अपहरण करता है एवं परलोक के लिए दुःखों का बंध करता है। चोर का कर्म निश्चित रूप से भय का सिंधु है। इस प्रकार मानकर चोरी का त्याग करना चाहिए।[4]

1. वरंगचरिउ, 1/12 2. वही, 1/12 3. वही, 1/13 4. वही, 1/13

www.vitragvani.com

7. परस्त्री सेवन—परस्त्री सेवन नरक योनि को दिखाने वाला है, यमपुरी के पथ को लाने वाला है। परस्त्री में आसक्ति को व्यक्ति जानता है, जिससे अपयश और अकीर्ति संसार में कही गयी है।

अथवा यदि राजा सुनता है तो हाथ, पैर और सिर को हरने की, नष्ट करने की आज्ञा देता है। यदि राजा को ज्ञात नहीं होता है तो कांपते हुए परस्त्री को मनाता है। यदि स्त्री का पति आ जाता है तो उसको मारने का विचार करता है। इतने दुःखों को सहता है और उसको प्राप्त करता है। यदि प्राप्त नहीं कर पाता है तो विरह की आग में जलता है।

जैसे-जैसे परस्त्री का मन में ध्यान आता है, वैसे-वैसे कामदेव आता है। स्त्री के आभूषण देखकर रोता है। मनुष्य इन्द्रिय पोषण का लाभ प्राप्त नहीं कर पाता है। जैसे-जैसे स्त्री को अलंकार (आभूषण) में देखता है, वैसे-वैसे कामी अपने मन में रोता है।

परस्त्री के वदन (मुख) को देखता है, उसके साथ शरीररमण को करना चाहता है। वह पुण्यविहीन क्या प्राप्त करता है। कर्म के वशीभूत अपनी निधि से हीन होता है। कामी परस्त्री को घूरता है और चित्त में धारण करता है। वह कामी महान पाप को प्राप्त करता है और नरक रूपी वन में नित्य निवास प्राप्त करता है।

परस्त्री सेवन की लंपटता में त्रिखण्डपति दशानन रावण विख्यात है, जिसने बलभद्र राम से उनकी पत्नी सीता का हरण किया था। जनार्दन (प्रतिनारायण) ने जिसका हनन किया और उस रावण ने नरक को प्राप्त किया। द्रोपदी के कारण और भी भयानक बलवान भीम ने कीचक का नाश किया। इसलिए ऐसा जानकर के परस्त्री से स्नेह नहीं करना चाहिए। मन, वचन और काय की शुद्धि पूर्वक अपने मन में संतोष रखना चाहिए।[1]

रात्रिभोजन त्याग—पापसमूह स्वरूप रात्रिभोजन नहीं करना चाहिए। क्योंकि त्रस–स्थावर जीवों की उत्पत्ति रात्रि में बहुत होती है। जो गृद्धता से रात्रि का भोजन करता है, वह दीर्घ काल तक अनेक भवों (जन्मों) में भ्रमण करता है। किसी भी अवस्था में रात्रि में भोजन नहीं करना चाहिए, क्योंकि क्या कहूं यह बहु पाप की दशा है।[2]

अनछना जल का त्याग—सम्पूर्ण काल में जल (जलगालणु) को छानकर पीना चाहिए। उसके पुण्य में विज्ञान सुख की प्राप्ति होती है। जो भव्य श्रेष्ठ दयावान और पुण्यवान होता है, वह हमेशा घड़े में पानी छानकर रखता है और जीवानी को वही कुएं में छोड़ता है। प्रासुक जल

1. वरंगचरिउ, 1/15 2. वही, 1/15

www.vitragvani.com

को एक पहर तक उपयोग करता है। स्वयं ही अच्छे कर्म करने की इच्छा रखता है। गर्म करने पर आठ पहर तक रखता है।

आप स्वयं सुकृत कर्म करना चाहते हो तो एक पहर तक पीने योग्य जल रखना चाहिए। गर्म होने पर आठ पहर की मर्यादा होती है, उसके ऊपर असंख्यात जीव उत्पन्न हो जाते हैं, इसके अलावा इससे अधिक समय में अनंत जीवों की उत्पत्ति होती है। अतः रागरहित होकर अनछने जल का त्याग करना चाहिए।

अष्ट मूलगुण—मद्य, मांस, मधु (शहद) और पांच उदुम्बर (बड़, पीपल, ऊमर, कठूमर और पाकर) उक्त आठ का त्याग करके अष्टमूलगुणों का पालन करना चाहिए।[1]

इस प्रकार श्रावक का आचार प्रतिपादन किया है जो हमारे लिए नित्य पालन करने योग्य है, साथ ही संयम को धारण करके, जीवों की रक्षा के प्रयोजनार्थ, दया धर्म का पालन करना चाहिए। अन्याय, अनीति और अभक्ष्य के त्याग सहित सम्यग्दर्शन की प्राप्ति करना चाहिए, जो हमारा प्रथम लक्ष्य है।

1. वरंगचरिउ, 1/15

पंडिय तेयपाल विरइउ

वरंगचरिउ

मूलपाठ

एवं

हिंदी अनुवाद

पंडिय तेयपाल विरइउ

वरंगचरिउ

।। ऊँ नमो वीतरागाय[1] ।।

पणविवि जिणईसहो जियवम्मीसहो केवलणाणपयासहो।
सुरनरखेयरवुहयणु[2] पय–पयरुह वसुकम्मारि विणासहो।।छ।।

वसुगुण समिद्ध पणवेवि सिद्ध   आयरिय णमो जगि जे पसिद्ध।
उज्झाय साहु पणविवि तियाल   सिवपहु दरसाविय गुणविसाल।
वाएसरी[3] होउ पसण्णबुद्धि   जिणवर वाणिय कय विवलबुद्धि।
हउं[4] णेडु छंदलक्खणविहीणु   वायरणु ण याणमि बुद्धिहीणु।
णउ जाणमि संधिसमास किंपि   धिट्टत्त करेसमि कव्वु तंपि।
हउं जाणमि जिणवर–भत्ति[5] जुत्ति   वित्थरय[6] जेण पविमल सुकित्ति।
जे विउल–वियक्खण[7]–बुद्धिवंत[8]   जिणभत्तिलीण पंडियमहंत।
ते हीणाहिउ पउमुणिवि कव्वु   परिट्ठवहु चारुपउ परमभव्वु।
सुरसर[9]णयरहि णिवसंत संत   महुचिंतउ वण्णिय मणिमहंत।
महु णामु पसिद्धउ तेयपालु   मइ गमिउ णिरत्थउ सयलकालु।*

घत्ता–एवहि हउं[10]करमि, चिरमलु[11]हरमि, रायवरंगचारुचरिउ।
जणु जणियाणंदु, तमुहयचंदु, कोअहलसएहि भरिउ।।1[12]।।

2

कलिकालु [1]एहु संपइ रउद्दु   अइ दुस्सहु[2] भारह दुहु समुद्दु।
तहि दुज्जण जण परदोस लिंति   वहुयइ पाविय महियलि भमंति।
दुज्जण दव्वीयर सरिस पाव   सरलत्तु ण[3] गच्छहि[4] कुडिल भाव[5]।

---

1. 1. K,ऊं नमो श्री वीतरागायः। आचार्य विसालकीर्ति गुरुभ्यो नमः। 2. A, K, N, णुय 3.K,वाएसरी 4.A, K, N, हउ; अपभ्रंश के अध्ययन से ज्ञात हुआ कि हउं पाठ अधिक शुद्ध है। 5.K, भत्त 6.K, विछरय 7. K,वियकरण 8.K, वुद्धिवंत 9. K, सुरमर *इस पंक्ति के स्थान पर N, प्रति के अनुसार 'मइ धम्मविहीणउ गमिउ कालु' पाठ भी लिया जा सकता है। 10. A,K, हंउ हउ; अपभ्रंश के अध्ययन से ज्ञात हुआ कि हउं पाठ अधिक शुद्ध है। 11. K, में चिरम शब्द नहीं है। 12. K, में नंबर नहीं हैं।

2. 1. N, ऐहु 2. A,N, दुक्खहु 3. K, ण्ण 4. K, गछहि। 5, N, पाव

पण्डित तेजपाल विरचित
वरांगचरित : हिन्दी अनुवाद
प्रथम सन्धि

।। जो वीतरागी हैं, उन्हें नमस्कार हो।।

1. मंगलाचरण पंचपरमेष्ठी स्तवन

कामदेव के जीतने वाले, केवलज्ञान के प्रकाशक, जिनके चरण–कमल अष्टकर्मों का विनाश करने वाले और देवों, मनुष्यों, विद्याधरों एवं बुधजनों से वन्दनीय जिनेश्वर को प्रणाम कर।।छप्पय।।

जो जग में प्रसिद्ध हुए हैं, ऐसे अष्ट गुणों की समृद्धि (वैभव) से युक्त सिद्धों को प्रणाम करके, आचार्यों को नमस्कार हो, उपाध्याय एवं साधु को नमस्कार हो, जिनमें त्रिकाल गुणों में दीर्घता रहती है एवं मोक्षमार्ग को दिखाने वाले हैं, जिनकी प्रज्ञा पर सरस्वती सदा प्रसन्न रहती है, जिनेन्द्र देव की वाणी अनंतज्ञान से युक्त है, ऐसे अरहंत देव को नमस्कार करता हूँ। यद्यपि मैं छन्द, लक्षण एवं व्याकरण आदि को नहीं जानता हूँ, संधि–समास कुछ भी नहीं जानता हूँ तो भी काव्य लिखने की धृष्टता कर रहा हूँ। जिनकी विशुद्ध सुकीर्ति विस्तृत एवं निर्मल है, ऐसे जिनदेव की भक्ति का प्रयत्न मैं जानता हूँ, जो विपुल एवं विलक्षण बुद्धि से सम्पन्न है, जिनकी भक्ति में पंडित महात्मा लोग लीन रहते हैं। मैं अपने चिन्तन के अनुसार उन श्रेष्ठ पुरुष का वर्णन करता हूँ, जो देवताओं की नगरी में निवास करते हैं। मेरे द्वारा सम्पूर्ण काल बिना प्रयोजन ही व्यतीत हो गया है। मेरा नाम प्रसिद्ध तेजपाल है।

घत्ता—इस प्रकार मैं चिरकाल के कर्ममल का हरण करने के लिए राजा वरांग के चरित्र का वर्णन करता हूँ। जो लोगों को आनंदित करने वाला है एवं अंधकार का हरण करने के लिए चन्द्रमा है। इस कौतूहलवश यह (काव्यरूप) कार्य कर रहा हूँ।

2. दुर्जन-सज्जन स्वरूप

यह कलियुग का समय अत्यधिक दुस्सह और रौद्र स्वरूप दुःख रूपी समुद्र से युक्त है। जहाँ पर दुर्जनों के द्वारा दूसरों के दोषों को दिखलाते हुए अत्यधिक पापों से युक्त होकर इस पृथ्वीतल पर परिभ्रमण किया जाता है। दुर्जन के कार्य सर्प के समान हैं जो कुटिल भाव को धारण करते हुए सरलता से नहीं चलता है। क्योंकि दुर्जनों का स्वभाव अंगार के समान (तीक्ष्ण) होता है। जो दुर्जन के इस स्वभाव को देखकर मैं (कवि तेजपाल) मन में ऐसा सोचता हूँ कि काव्य रूपी समुद्र के किस तरह भरूं अथवा दुर्जन का यही स्वभाव है कि वह दूसरे के दोषों

www.vitragvani.com

दुज्जण[6] सहाउ अंगाल जेम पयधोयउ धोयउ कलुसु[7] तेम।
तं पिक्खिवि[8] हउं मणिभउ करेमि पयकव्वु महण्णउ किं तरेमि।
अहवा दुज्जणहं[9] सहाउ एहु परच्छिद्दइं गहणनिवद्धणेहु।
जिम दुज्जणु परदोसइ गहंति तिम सज्जणु उवयारु जि वहंति।
अवगणइ मुयवि परगुण गहेइ अप्पणउ पहुत्तणु णउ कहेइ।
मलयागिर–सण्णिह–सुयण–चित्त णियगुण ण विहंडइ कय पवित्त।
सज्जणु सलहिज्जइ सयल लोइ सज्जणउ वहंतहं धम्मु होइ।
सज्जण–णंदउ–धरयलि पसत्थ जिणणम्मि पवट्टउ हुय[10] कुसत्थ।
वायरणमहण्णउ पारिपत्त चिर हुयवहु कइवय जगि पसत्त[11]।
तह कव्वरइय णाणापयार जगि धम्मु पवड्ढिउ लोयसार।

घत्ता– णियबुद्धि पयारिं करमि सुसारिं[12] कव्वुमनोहर वण्णउ।
वहुदीव समुद्दहिं वेढिउ भद्दहिं जंबूदीउ[13] रवण्णउ।।2।।

3

तहि[1] मज्झि परिट्ठिउ भरह खेत्तु सरि–सर गिरिवर–पुरवर विचित्तु।
तहि अंतरिवसइ विणीयदेसु णं धरणी धरियउ दिव्ववेसु।
धण–कण–कंचण परिपुण्ण गाम पुर–णयरइं सिव[2] मणहिराम।
जहि ठामि–ठामि[3] मुणि तउ तवंति जहि ठामि–ठामि जिणगुण भणंति।
जहि गामि–गामि वरसालि छित्त कणभर पणविय णं सुयणचित्त।
णिसि पहियण कय पहसिरि निवासु णउ चोरमारि आवइ विणासु।
जहि इक्खु वणइ रसइं सियाइ[4] वरणारि व जण–मण–मोहणाइ।
जहि दक्खारसु चक्खंति[5] लोय कलयंविय सद्दु व महुरु होय।
णं महिकामिणि भालयलतिलउ[6] जणवइ सेविउ णं लच्छिणिलउ।
तरुवर–फल–कुसुमइ परिमलाइ जहि विविहइं हुय वण–उववणाइ।
इय रेहइ वसुमइ विसउ जित्थु णामेण कंतपुरणयरु तित्थु।
तहि पंचवण्ण–माणिक्क दित्त वरपंचवण्ण–धयवड–विचित्त।
तहि[7] णिवसइ लोउ चयारिवग्गु[8] जणसंकुल सोहइ रायमग्गु[9]।

घत्ता– सो णयरु रवण्णउ, मणहरवण्णउ, छुह[10] पंकिय विविहइ घरइं।
णं फलिहविणिम्मिउ,सुरयणवण्णिउ कणय–कलसमंडिय[11]सिरइं।।3।।

6. K, दुजण 7. N, K, कलुस 8. A, K, N पिखिवि 9. A, K, N दुज्जणह 10. K, हूय
11. K, पसंत्त 12. A, K, N सुसारें 13. K, °जबू।

3. 1. K, तिहि 2 A, K, N सीव 3. K, खमि 4. K, सियाइं N, दंसियाइ 5. K, चक्खेंति 6. K, त्तिलउ
7. A, K, N तहिं 8. K, वग्ग 9. K,N मगु 10. K, छुहं। 11. N, मंडियं।

www.vitragvani.com

को निकालने में लगा रहता है और वह दुर्जन जिस प्रकार दूसरों के दोषों की निन्दा करता है, उसी प्रकार सज्जन दूसरों के उपकार को धारण करते हैं। वे किसी को कुछ नहीं समझते हुए इस प्रवृत्ति को छोड़ते हुए दूसरों के गुणों को ग्रहण करते हैं।

सज्जन व्यक्ति का चित्त मलयगिरी के समान दृढ़ कहा गया है। जो प्रवृत्ति युक्त होते हुए भी अपने गुणों का बखान नहीं करते हैं। इसलिए जो सज्जन व्यक्ति होते हैं वे लोक में सभी के द्वारा श्लाघ्य (प्रशंसनीय) होते हैं। सज्जनता को धारण किये जाते हुए के द्वारा धर्म होता है। सज्जन व्यक्ति इस पृथ्वी पर आनंद और प्रशस्त रूप कहे गये हैं, क्योंकि जिनधर्म में प्रवृत्त होने से उनके द्वारा कल्याण होता है। इस संसार में दीर्घकाल कवि रूप में प्रसिद्धि पाना व्याकरण रूपी समुद्र के पार पाने के समान कठिन है। अतः अनेक प्रकार के काव्य की रचना से संसार में धर्म बढ़ता है, यह लोक का सार है।

घत्ता—अपनी बुद्धि से मनोहर काव्य का वर्णन करता हूँ और सभी प्रकार के सम्यक् कल्याणकारी कार्य करूंगा। जो अनेक द्वीपों और समुद्रों से घिरा हुआ है, ऐसे जम्बूद्वीप का वर्णन करता हूँ।

3. विनीतदेश का वर्णन

उसके (जम्बूद्वीप) मध्य में भरतक्षेत्र स्थित है। जो नदी, तालाब, पर्वतों और नगरों से युक्त सुन्दर (विचित्र) है। उसके अंतर्गत विनीत देश है, मानो उसकी धरती दिव्यता को धारण करती है एवं धन–दौलत, सोना आदि से परिपूर्ण थी। उसके ग्राम, पुर एवं नगर आदि कल्याणशील एवं मनोहर थे, जहां जगह–जगह मुनि तप तपते हैं और जहां लोग जगह–जगह जिनगुणों का बखान करते हैं, जहां गांव–गांव शालि (चावल) विशेष धान्यों से परिपूर्ण कृषि भूमि थी, मानो सज्जन धान्यभार से झुककर प्रणाम करता हो। रात्रि के समय पथिकजन के लिए कान्तियुक्त लक्ष्मी का निवास होता है, मानो चोरी करने वाले का विनाश हो, जहां गन्ने के वन रसों और श्वेतवर्ण से युक्त है, मानो श्रेष्ठ नारी व्यक्ति के मन को मोह रही हो, जहां के लोग अंगूर के रस का रसास्वादन करते हैं, मानो कलकल की ध्वनि भी मधुर हो जाती है, जहां श्रेष्ठ वृक्ष फलों से युक्त एवं पुष्पों की सुगंधी से सहित है, जहाँ विविध प्रकार के वृक्ष सहित वन हैं, जहां की पृथ्वी विषयभोगों से शोभित है, वहां कंतपुर नाम का नगर है, वहां पंचवर्णों से युक्त रत्न दिये जाते थे, जहां पंचवर्ण वाली जैनध्वजपाताका भी है, वहां लोक के चार वर्ग का निवास है एवं लोगों की एकत्रता (एकता) राजमार्ग को शोभित करती है।

घत्ता—वह नगर रमणीय है, वहां के मकान (घर) मनोहारी रंगों से युक्त हैं, जैसे—श्वेत–चूने की पंक से पुताई की गई हो; ऐसे प्रतीत होते हैं मानो घर स्फटिक मणि से निर्मित किये गये हो, स्वर्णकलश से जिसके शिखर शोभित हैं, देवगण भी जिसका वर्णन करते हैं।

www.vitragvani.com

4

धवलुज्जणु णं उडवइ पयाउ णं धरिउ पयोणिहि वेलभाउ।
णं णहयलि लग्गउ सुरविमाणु उत्तुंगु[1] विउल णं गिरिपमाणु।
परिहा–दुस्सम णं सइ य चित्तु सालु विरेहइ आयार चित्तु[2]।
घरि–घरि विलुलिय तोरणह माल घरि–घरि संचिय मोतियपवाल।
घरि–घरि कुंकुंम जलच्छडय दिण्ण घरि–घरि गोउर सोहइ रवण्ण।
वंकत्तणु जहि तियलोयणेहि मइलत्तणु णारि[3]–पयोहरेहि[4]।
दाडिम–खज्जूरइ–माहुलिंग णारियल[4]–एल–फोफल–लवंग।
पुरवाहियालि इय तरुवराइं णं पयडिय वम्महु मग्गणाइ।
झिंदुय[5] भामिज्जइ णयरि केम दुक्कम्मि भमइ जगि जीउ जेम।
णं सुरपुरि महियलि इत्थु[6] आय[7] जहि णिच्चु वि हुय दुंदुहि[8] णिणाय।
जहि जिणवर वरभवणइ गरिट्ठ णिच्चु जि पणवहि भवियण गरिट्ठ।
तहि[10] धम्मसेणु णरवइपहाणु अरिदंतिदलणकेसरिसमाणु।
णं मयरद्धउ जगि पयडु जाउ णं पुंजी कउ दयधम्मभाउ।
लक्खण–लक्खं किउ गुणसमुद्दु कुसमाल जारणिहणणरउद्दु[11]।
णं दीणाणाहहं कप्परुक्खु अरि–कामिणि हियवइ देइ दुक्खु।
सुरवरहं[12] पहाणउ इंदु जेम णरवरहं[13] पहाणउ राउ तेम।

घत्ता– हरिवंसउवण्णउ[14], विणिहय[15]दुण्णउ भोजणरेंदहु णंदणु।
गुणदेवि–पहाणिय–महिवइ–राणिय पियमणणयणाणंदणु।।4।।

5

अवरवि मयसेणा[1] हुय सवत्ति अग्गेसरि[2] हुय सयं तिण्णि पत्ति।
संतत्त–कणय–पइचारूगत्त वरसोहालंकिय हरिणणित्त।
तहि सुहु भुंजंतह धरणिपालु ण वियाणिउ किंपि वि गलिउ कालु।
मयसेणइ जाउ सुसेण[3] पुत्तु कलगुण विण्णाणहि[4] हुयउ[5] धुत्तु।
गुणदेविहि पुत्तु वरंगु जाउ परिवड्ढिउ णवससि जिम कलाउ।
अण्णुवि णंदण–अय चारूवत्त णरवइ–वल्लहियहि हुय वहुत्त।
सोहइ गरूयउवि वरंगु केम णहि ताराणियरहिचंदु जेम।
गय कालहि सोजि जुवाणु[6] जाउ उप्पण्णउ मणिसाणंद भाउ।

---

4. 1. A, K, उत्तंगु 2. K, वित्तु 3. A, नारि 4. A, K, N, णालियर 5. A, K, हिंण्डुय 6 K, इछु 7 K, आंय 8 A, दुंदुंहि K, N, दुदुंहि 9. N, चर 10. K, N तहिं 11. A, रुद्दु K, N, रउद्द 12. K, N, सुरवरह 13. A, N, नरवरह 14 K, बण्णउ 15. A, विणिहयं

5. A, K, N, मइसेणा 2. A, K, अग्रेसरि 3. A, K, N, सुखेण 4. K, बिण्णाणहि 5. N, हुंयउ 6. K, ज्जुवाणु

www.vitragvani.com

4. कंतपुर का वर्णन एवं राजा धर्मसेन

नगर में मानो श्वेत एवं उज्ज्वल चन्द्रमा की चांदनी बिखेर दी गई हो, मानो इस अवसर पर दूध का खजाना धारण किया हो। वहां की इमारतें (मकान) पर्वत के समान दीर्घ एवं ऊँचे थे एवं ऐसा प्रतीत होता है जैसे नभतल (आकाश) को छू रहे हों। नगर के बाहर जो खाई (परिहा) थी जिसको पार करना स्त्री के चित्त (मन) को जानने जैसा कठिन है। आचार से युक्त चित्त चावल की तरह शोभित होता है। घर–घर में दरवाजे पर मालाएँ डोल रही हैं, घर–घर में मोतियों का चूर्ण पूरा गया है, प्रत्येक घर के द्वार पर कुंकुम एवं जल छिड़का गया है, जो शोभा से शोभित एवं रमणीक है, जहां स्त्रियों के नेत्रों में वक्रता रहती है एवं उनके स्तन मलिनता से युक्त होते हैं। नगर के बाहर (नगर के चारों ओर) अंगूर, खजूर, नींबू, इलायची, सुपारी और लोंग के श्रेष्ठ वृक्ष हैं, ऐसा प्रतीत होता है जैसे स्वर्गलोक का पृथ्वी तल पर आगमन हुआ हो। जहाँ नित्य ही दुंदुभि आदि वाद्ययंत्रों का नाद (स्वर गूंजना) होता है, जहां जिनवर (जिनेन्द्रदेव) का श्रेष्ठ मंदिर है, जिसमें हमेशा श्रेष्ठ भक्तगण (भविजन) दर्शन करने आते हैं। वहां के महाराजा धर्मसेन हैं जो शत्रुओं का दमन करने में सिंह के समान हैं। वे जग में प्रसिद्ध कामदेव के समान सुन्दर हैं। जो दयाधर्मभाव के पुंज (समूह) हैं, जो लाखों (अनेक) लक्षण से सहित गुण-सिन्धु हैं। चोरी और व्यभिचार का जिन्होंने हनन करके मनुष्य का उद्धार किया है। जो दीनों और अनाथों के लिए कल्पवृक्ष की तरह हैं। शत्रुरूपी कामयुक्त स्त्री के हृदय को दुःख देने वाले हैं। जिस प्रकार देवताओं का प्रधान इन्द्र होता है, उसी प्रकार मनुष्यों में श्रेष्ठ राजा धर्मसेन हैं।

घत्ता—हरिवंश में जिसका वर्णन है, जो दुष्ट नीतियों का नाश करने वाला भोजराजा का पुत्र नंदन है, प्रिय एवं नयनों को आनंदित करने वाली राज्य की प्रधान रानी गुणदेवी है।

5. रानी मृगसेना एवं पुत्र सुषेण

दूसरी पत्नी के रूप में मृगसेना हुई। आगे इस प्रकार राजा धर्मसेन की 300 पत्नियां हुईं। वे संतप्त सोने की प्रभा की तरह सुन्दर शरीर वाली, मृग के समान नेत्रों वाली एवं श्रेष्ठ शोभा से अलंकृत थी। वहां राजा विषय सुख भोगते हुए कार्य विशेष को थोड़ा भी नहीं जान पाया कि काल व्यतीत हो गया। मृगसेना के यहां सुषेण नामक पुत्र का जन्म हुआ। वह बालक कला आदि गुण–विज्ञान में कुशल हुआ। गुणदेवी से वरांग नामक पुत्र का जन्म हुआ। जिस प्रकार चन्द्रमा की कलाएँ वर्धित होती हैं, उसी प्रकार वह नूतन-बालक वर्धित हो रहा था। उनके अन्य पुत्र भी अत्यन्त सुन्दर थे। कुमार वरांग ऐसे शोभायमान हो रहा था, जैसे आकाश में तारा-समूह के बीच चन्द्रमा सुशोभित होता है। काल व्यतीत हुआ और उसका यौवन आया। राजा की देखरेख में पुत्र

www.vitragvani.com

रायं पिक्खिवि णंदणु वियड्ढु[7] चिंतइ[8] परिणाविज्जइ गुणड्ढु।
अवलोइज्जइ कहु तणिय पुत्ति दूउवि पडवियइ[9] कहि दवत्ति[10]।
इत्तहि इक्कुवि वणिवइपहाणु अक्खइ सुणि हरिकुल गयणभाणु।
धियसेण[11] णरिंदहु तणिय धीय[12] भूवें रइपिय अह णाइ सीय।
सा मग्गिवि किज्जइ सुयविवाहु राय[13] उच्चरियउ साहु साहु।
सम्माणु–दाणु कय णिहयतंदु राय[14] पट्टवियउ[15] वणिवरेंदु।
इत्तहि सह मज्झि वइट्ठु राउ मंतिय परिपुच्छइ[16] मंतभाउ।
घत्ता– भो! मंति वियक्खण, भूवसलक्खण, कुमरिवरंग समाणिय।
कहु णंदिणि लिज्जइ, विणउवहिज्जइ अक्खहु बुद्धिं[17] चिराणिय।।५।।

6

तं णिसुणिवि भणइ अणंतवीरु णिव णिसुणहि अक्खरमि सुहडधीरु[1]।
ललिताहणयरि सुरसेणु[2] राउ अरियण–सिर–सेहरि–दिण्णघाउ।
तहो गिहि[3] सुणंदा कुमरिणाम तहो करि लाइज्जइ रुवसाम।
अवरु वि सुरसेणहु भाइणेहु जुत्तुवि परिवट्टइ चिरुसणेहु।
तं वयाणाणंतरि[4] लवइ अवरु णामेंणज्जियउ सुबुद्धि[5] पवरु।
पइं[6] भणियउ चंगउ वयणु[7] येहु परअण्णु वि किज्जइ णवसणेहु।
पुणु चित्तसेणु भासइ सुवाय सुरसेणहु किज्जइ णेहुराय।
पुणु देवसेणु तुरियउ पवुत्त हउं[8] अक्खमि किज्जइ अवरुवत्त।
माहेंददत्त–बंधवरि[9]–राउ अंगवइणाम तहो पुत्तिजाउ।
सीहउरणराहिव तणिय पुत्ति णामेण जसोमइ कामसत्ति।
पुरमलयणरेंदु वि मयरकेउ हुय धीयाणंतसिरी सुतेउ।
पुरिइट्ठ महीवइ सणकुमार तणया वि वसुंधरिरुवसार।
पुरचक्क पयोणिहिदत्त राउ पियवत्ता पुत्तिय तासु जाउ।
गिरिवज्जणयरि णं सुरवरेंदु वज्जायहु णामें णरवरेंदु।
तहो पुत्ति सुकेसीकमलवत्त सुरु[10] छंडिवि णं रइ इच्छु[11] पत्त।
घत्ता– वरणयरसुकोसल,जणपयकोसल,पयडु धरायलि राणउ।
अरि–गिरि सोयामणि, तेयइ दिणमणि, मित्तु सीहु अहिहाणउ।।६।।

7. A, वियढु 8. K, चिंतवइ 9. K, ⁰बियइ 10. A,K,N, द्दवत्ति। 11. A,K,N, धियखेण 12. A, धीव 13. A, K, N, रायं 14. A,K,N, रायं 15. A, पट्टविय 16. K, पुछइ 17. A, बुद्धि।

6. 1. A, K, N, धीर 2. K, N, प्रति में सुरसेण का अपरनाम देवसेन दिया हुआ है। 3. A, K, N, गेहि 4. A, K, N, तंव्वाया⁰ 5. A, N, सुवुंद्धि 6. A, पइ 7. K, N, बयणु 8. A, हउ 9. A, वंधवरि 10. K, N, सुर 11. K, इछु।

www.vitragvani.com

कुशलता को प्राप्त करता है। राजा बालक के गुणों की वृद्धि को देखकर विचार करता है। किसी की पुत्री का अवलोकन किया जाये और कहीं पर दूत को शीघ्र भेजा जाये। इस प्रकार से एक वणिपति प्रधान कहता है–हे हरिकुल! आकाश के सूर्य! सुनो– धृतिसेन राजा की पुत्री है, जो रतिप्रिय अथवा सीता के समान है।

उसको मांगकर अपने पुत्र का विवाह किया जाये। राजा ने साधु-साधु (उत्तम-उत्तम) शब्द उच्चारित किये। सम्मान, दानादि दिया और अपनी चिन्ता को नष्ट किया। राजाओं और वणिक को वापिस भेजा। फिर मन्त्रियों के मध्य में बैठकर राजा ने मंत्रणा की और मंत्रियों की (सलाह) पूछते हैं।

घत्ता–हे विलक्षण बुद्धि सम्पन्न मंत्री! राजा के लक्षणों से युक्त कुमार वरांग सम्मानित है। चिर-परिचित बुद्धिमान (मंत्री) कहो–नंदिनी को लिया जाये जो विनयादिगुण में प्रवृत्त है।

6. कुमार वरांग की विवाह चर्चा

उक्त वार्ता सुनकर सुभट (वीर) और धैर्यवान् अनंतवीर (मंत्री) कहता है– हे! राजन् सुनो– मैं शब्दों को कहता हूँ। ललितपुर नगरी में देवसेन नाम का राजा है, जो शत्रुओं के मस्तक को सिंह की तरह घात देने वाला है। उसके घर पर सुनंदा नाम की पुत्री है, उस रूपसुन्दरी को हाथी पर लाया जाये। दूसरी बात कुमार देवसेन का भान्जा है। उनसे जुड़कर के चिरस्नेह को बर्धित करते हैं। तत्पश्चात् अन्य श्रेष्ठ मंत्री भी कहते हैं, जिसका नाम सुबुद्धि है, तुम्हारे लिए नूतन स्नेह के लिए सुन्दर वचन कहता हूँ, अन्य के साथ भी सम्बन्ध कीजिए। फिर तुरन्त ही चित्तसेन भी कहता है। मैं कहता हूँ ये परिणय-संबंध कीजिए। विंध्यपुर के राजा महेन्द्रदत्त की पुत्री, जिसका नाम अंगवती है। सिंहपुर के राजा (द्विषन्तप) की कामासक्त पुत्री, जिसका नाम यशोमति है। मलयदेश के अधिपति मकरध्वज की पुत्री अनंतश्री, इष्टपुरी के राजा सनत्कुमार की पुत्री रूप से परिपूर्ण 'वसुंधरा' है। चक्रपुर के राजा समुद्रदत्त की पुत्री प्रियदत्ता उसके यहां उत्पन्न हुई, गिरिव्रज नगर का राजा बज्रायुध मानो मनुष्यों में श्रेष्ठ सुरेन्द्र हो, उसकी पुत्री कमलिनि की तरह सुकेशी है, जिसे देखकर देव भी कार्य छोड़कर मानो रति इच्छा के लिए पहुंचते हैं।

घत्ता–जिसका श्रेष्ठ नगर कुशल है, जनपद (प्रजा) भी कुशल है, पृथ्वी पर एक राजा प्रगट हुआ है, जो शत्रु रूपी पर्वत के लिए विद्युत् की तरह है, जिसका तेज सूर्य की तरह है, वह सुमित्रसिंह नाम से जाना जाता है।

7. वधुओं का वर्णन

जो श्रेष्ठ ज्ञानवान और सभी कलाओं सहित है, उनकी पुत्री का नाम विश्वसेना है। अन्य

www.vitragvani.com

7

वरविण्णाण–कलागुण–सहिया णामें विस्सुसेण तहो दुहिया।
अवरुवि अंगदेस विणयंधरु[1] अच्छि महीवइ कज्ज धुरंधरु।
पियकारणिय पुत्ति तहो हूइ[2] णं विहिणा कय रइवइ दूई।
इय वरअट्ठकण्ण जगिसारहो किज्जइ पाणिग्गहणु[3] कुमारहो।
देवसेणमंतिय वयणुल्लउ लग्गउ सवणि महीवइ भल्लउ।
इय णिसुणेप्पिणु[4] महिवइ जंपइ किज्जइ येहु कज्जु लहु संपइ।
तो पुरे–पुरि पट्ठाविय केंकर लेहु समप्पिवि णयण सुहंकर।
इक्कु मंति धियसेणहो पेसिउ तेण जाइ धियसेणु णमंसिउ।
अक्खइ मंतिउ तुज्झ कुमारिय दिज्जइ देवकुमारहो सारिय।
पभणइ णरवइ एउ जि चंगउ कुमरिह मारिय कुमरवरंगउ।
धम्मसेण पुरवरि आइव्वउ सुमहुत्तहि जि विवाहु करिव्वउ।
दूउ[5] पल्लट्टिवि[6] तित्थु[7] जि आयउ धम्मसेणु अच्छइ विक्खायउ।
मंडउ इत्थु[8] विचित्तु रइज्जइ कुमरहो करगहणुल्लउ किज्जइ।
अवर दूव पट्ठाविय जिह–जिह कज्जु करेप्पिणु आइय तिह–तिह।
जं णरवइ पइं वयणु जि कहियउ सयल णरिंदहि तं सद्दहियउ।

घत्ता–ता अण्णहि अवसरि[9], पत्तसुवासरि, मंडउ सोह रवण्णउ।
तहि[10] पुरवरि किद्धउ, रयण समद्धिउ, विरइय णाणावण्णउ।। ७।।

8

गेयइज्झुणि णारीयणु णंदिउ णरवइणियमणम्मियाणंदिउ।
कुमरवरंग विवाहइं अवसरि रुवें जियसुर[1] अरिगय केसरि।
कवण–कवण उच्छाहु ण जायउ मंगल–रवपूरिय–णह[2] भायउ।
पुरिपरियणु णियपुत्ति लएप्पिणु[3] कुमरिविवाहकज्जु मण्णेप्पिणु।
धियसेणु[4] वि णरवइ संपत्तउ णिहणियारि जिणवरपयभत्तउ।
अवर वि णिय–णियपुत्ति समाणा अट्ठवि णरवइ[5] तित्थु पराणा।
वहु किं अक्खमि कय अच्छेरउ हुयउ विवाहु वरंगहो केरउ।
अच्छरसरिसरुवणवपरिणिय अवर–इक्क–वणिसुय हुय घरिणिय।
जे जे णरवइ जित्थु पराविय ते ते णिय–णिय पुरि पट्ठाविय।

---

7. 1. K, घरू 2. A, K, N, हुई 3. A, K, पाणिग्रहणु 4. A, K, णिसुणिपिणु 5. K, हूउ 6. A, K, पल्लटिवि 7. K, तिछु 8. K, इछु A, इत्थु 9. K, अवसरे 10. K, तहिं।

8. 1. A, K, जियसर 2. K, N, णहयल 3. A, K, N, लएपिणु 4. K, घियसेणुवि 5. K, णरवइ।

www.vitragvani.com

भी अंगदेश (वरांगदेश) के राजा विनयंधर है, यह महीपति कार्य में कुशल और धुरंधर योद्धा कहा जाता है, उनकी पुत्री प्रियकारिणी हुई मानो विधाता ने जिसे रतिवती दूती के रूप में निर्माण किया हो। इस प्रकार श्रेष्ठ आठ कन्याएँ हैं, जो जग में रूप-सौन्दर्य में सारभूत हैं, उनके साथ कुमार का विवाह किया जाये। देवसेन मंत्री कहता है कि शुभ मुहूर्त में सभी राजा भद्र (सज्जन) लगते हैं। इस प्रकार राजा (धर्मसेन) सुनकर कहता है कि यह कार्य शीघ्र ही अभी सम्पन्न करवाओ।

तब राज्य और नगरों में सेवक भेजें। वे जाकर धृतिसेन को नमस्कार करते हैं और कहते हैं तुम्हारी पुत्री देवकुमार (वरांग) के लिए दीजिए। नरपति कहता है यह तो अत्यन्त सुन्दर है। मैं अपनी पुत्री कुमार के लिए देता हूँ। धर्मसेन के नगर में आऊँगा और शुभमुहूर्त में विवाह करेंगे। दूत भी लौटकर वहां आते हैं, जहाँ धर्मसेन प्रसिद्ध होते हैं। धर्मसेन कहते हैं–विचित्र और सुन्दर मंडप की रचना करके, कुमार का विवाह किया जाये। दूसरे दूत जहां-जहां भेजे थे वहां-वहां से वे कार्य करके आ गये। दूत राजा से कहते हैं– जिन राजाओं से आपके वचन कहे गये, उन सभी राजा ने सम्मान दिया।

घत्ता–तब शुभ अवसर का शुभ दिन आया, रमणीय मंडप शोभित है। सम्पूर्ण नगर को रत्नों एवं नाना रंगों से सजाया गया।

8. विवाहोत्सव

कुमार के विवाह के अवसर पर नारियां गीतों को गाकर आनंदित होती हैं, राजा अपने मन में आनंदित होता है। जैसे सिंह गज को जीतता है, वैसे ही कुमार वरांग रूप-सौन्दर्य में देव को जीतता है। नगर में किस-किसको उत्साह नहीं है? अर्थात् सभी उत्साह से परिपूर्ण हैं। आकाश गीतों के स्वरों से गुंजायमान था। राजा नगर में कुमार के साथ विवाह के लिए अपनी पुत्री को लेकर आते हैं।

शत्रुओं का घातक धृतिसेन (राजा) भी जिनदेव की भक्ति करके वहां पहुंचता है। दूसरे भी अपनी पुत्रियों के साथ आठ राजा वहां पहुंचते हैं। आश्चर्यपूर्वक! बहुत क्या कहूं। कुमार-वरांग का विवाह हुआ। वे नव परिणिता अप्सरा के समान सुन्दर रूप वाली और दूसरी एक वणिक पुत्री भी गृहिणी (पत्नी) हुई। जो-जो राजा जहां से आये थे, वे-वे अपने-अपने नगर में लौटे। गुणदेवी में नववधुओं को देखकर संतोष एवं अनुराग उत्पन्न हुआ। कुमार रतिप्रमोद भोगते हुए वहां पर हर्षित हुआ। वह कुमार प्रवालमूंगा की तरह नववधुओं के सरस अधरों का चुंबन करता है, अपनी भुजाओं में स्त्री को आलिंगित करता है। उन्नत स्तनों को हाथों से सहलाता है, अपनी स्त्री के साथ शैय्या (पलंग) पर क्रीड़ा करता है। अपनी स्त्री में अनुरक्त होता है, किन्तु परस्त्री के साथ

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

गुणदेविहि संतोसु वि जायउ णववहुयइ पिक्खिवि अणुरायउ।
कुमरु वि रइविलासु भुंजंतउ तित्थु जि अच्छइ हरिसु जणंतउ।
विद्दुमाइं सरसाहर चुंवइ णियभुयाइ णारी अवरुंडइ।
कट्ठिणपयोहराइं करपीडइ रमणी सहु सिज्जायलि कीडइ।
अच्छइ णियकामिणि अणुरत्तउ पररमणीय ण चित्त वि रत्तउ।
णियकामिणिहि मालउ परिघल्लउ[6] परणारी सहु[7] वयणु ण वुल्लइ।
णियरमणिहि तंबोलु समप्पइ पररमणी सहु णेहु ण अप्पइ[8]।
णियसीमं तिणिभोय कयायरु इम अच्छइ पररमणी भायरु।

घत्ता–हरिकुलणहं इंदु, णिहणियतंदु, सुह भुंजंतु वि अच्छइ।
जिणवरपयभत्तउ पियसंजुत्तउ, तायहो आण पडिच्छइ।।८।।

9

इक्क दिवसि महिवलय गरिट्ठउ धम्मसेणु णियसहहि परिट्ठिउ।
पडिहारें विण्णवियउ चंगउ पयपोसइ अरितिमिर–पयंगउ।
णिसुणहि णरवइ महु वयणुल्लउ वारि तुहारइ अच्छइ भल्लउ।
लय–सुमण–सवणवालु परायउ हरिसवंतु रोमंचिय कायउ।
तुह आएसु होइ ता आणमि णं तो वयणहि तित्थु समाणमि।
रायइ भणिउ सिग्घु आणिज्जइ जं पभणइ[1] तं वयणु करिज्जइ।
पडिहारें अक्खिउ वणवालहो तुह वुल्लाविउ[2] लहु महिपालहो।
तो वणपालु परायउ[3] तित्तहि धम्मसेणु अच्छइ णिउ जित्तहि।
पय पणविवि महिवइ[4] विण्णत्तउ[5] कुसुमकरंडउ अग्गइ घित्तउ।
देव देव मुणिणाहु परायउ वरदत्तु वि गणहरु विक्खायउ।
इय वयणहि णरवइ आणंदिउ[6] सत्त पयहि जाएप्पिणु[7] वंदिउ।
पढम परोक्ख[8] विणउ मणि किद्धउ पच्छइ तूराणंदुवि दिद्धउ।
पुरपरियणु सकलत्त लएप्पिणु[9] लइय पुत्त मणि भत्ति धरेप्पिणु।[10]
चलिउ वरंगु[11] वि परियण जुत्तउ हणियवेरि जिणधम्मासत्तउ।

घत्ता– जाइवि मुणिवंदिउ, जगिआणंदिउ भत्ति धरेप्पिणु मणि पवरु।
सुह–पहु–दरसावणु सिवगइभावणु णमियामर अवहीसयरु।।९।।

6. A, रिघल्लउ 7. A, सहुं 8. A, K, N, अपइ।

9. 1. A, K,पभणइं 2. A, K, वुलाविउ 3. A, K, परायउं 4. K, महिवइं 5. A, वीण्णत्तउ 6. A, K, आणंदेउ 7. A, K, N, जाएपिणु 8. A, परोखव 9. A, K, N, लएपिणु 10. A, K, N, धरेपिणु 11. N, वरगु।

www.vitragvani.com

चित्त भी नहीं लगाता है। अपनी स्त्री के ऊपर माला फेंकता है परन्तु परनारी के साथ बात भी नहीं करता है। अपनी स्त्री के लिए पान (ताम्बूल) देता है किन्तु पर-स्त्री के प्रति स्नेह अर्पित नहीं करता है। अपनी सीमा में रहकर भ्राताओं की स्त्रियों को आदर देता है। इस प्रकार कुमार परस्त्री के प्रति भाव रखता है।

घत्ता—वह कुमार जो हरिकुल नभ का चन्द्रमा एवं तन्द्रा (निद्रा) का घातक है, सुख भोगते हुए रहता है। प्रिय पत्नियों के साथ जिनदेव के चरणों की भक्ति के लिए जाने की पिताजी से आज्ञा ग्रहण करता है।

9. मुनि वन्दना के लिए प्रस्थान

एक दिन धर्मसेन अपने साथियों के साथ भूमंडल पर श्रेष्ठता से बैठा हुआ था। जैसे पतंगा अंधकार के पद का पोषण करते हुए प्रसन्न रहता है वैसे ही द्वारपाल प्रसन्न मन से विनय पूर्वक कहता है—हे! नरपति (राजन्) मेरे भले वचनों को सुनो, तुम्हारा समय अच्छा है। वनपाल पुष्प लेकर आया था, उसकी काया हर्ष से रोमांचित थी मानो उसके वचन तीर्थ के समान थे। तुम्हारा आदेश हो तो मैं उसे लेकर आता हूँ। राजा ने कहा शीघ्र ही ले आइये। पुनः प्रतिहारी (द्वारपाल) वनपाल के लिए कहता है—तुम्हें राजा ने शीघ्र बुलाया है। तब वनपाल वहां पर पहुंचता है जहां पर राजा धर्मसेन बैठा हुआ था।

चरणों में प्रणाम करके, फूलों की टोकरी आगे क्षेपणकर, महीपति से विनती करता है—हे देव! नगर में मुनिराज पहुंचे हैं, जो वरदत्त गणधर नाम से प्रसिद्ध हैं। इन वचनों से नरपति आनंदित होता है एवं साथ जाकर दर्शन करता है। प्रथम तो परोक्ष रूप से मन में विनय करता है, पश्चात् आनंद की दुंदुभि बजवाता है। नगरवासी, स्वपरिजन (परिवारजन), पत्नी एवं पुत्रों को लेकर मन में भक्ति धारण कर, परिजनों के साथ जिनधर्म में आसक्त होकर, मोह रूपी शत्रु का हनन करने के लिए वरांग भी चलता है।

घत्ता—वे सभी जाकर मुनिराज के दर्शन करते हैं, वे सभी मन में मुनि प्रवर की भक्ति धारण कर प्रसन्न होते हैं। सुख-दुःख को दिखाने वाले, शिवगति (मोक्ष) की भावना रखने वाले उन अवधिज्ञानी मुनिराज को नमस्कार किया।

10. मुनि वरदत्त द्वारा धार्मिक उपदेश

नगरवासी लोक में श्रेष्ठ राजा धर्मसेन और परिजनों के साथ पृथ्वीतल (जमीन पर) पर बैठता है। राजा भक्ति-भाव पूर्वक मुनिराज से पूछता है— हे गुणसागर! धर्म का स्वरूप कहिए। नृप के वचन सुनकर मुनिराज कहते हैं कि मोक्ष में जाना ही श्रेष्ठ धर्म है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान

www.vitragvani.com

10

करिवि थुत्ति खोणियलि णिविट्ठउ पुर–परियण सह लोयगरिट्ठउ।
पुच्छइ महिवइ भत्ति कयायर[1] धम्मसरुव कहहि गुणसायर।
णिव वयणइ सुणेवि मुणिसामिउ अक्खइ परमधम्मु[2] सिवगामिउ।
सम्मद्दंसणरयण करंडउ जो भवसायर तरणतरंडउ।
पढमु धरिज्जइ सुहगइ–बंधणु[3] किज्जइ चउगइ दुक्खहं रुंधणु।
सो किं दंसणरयणु भणिज्जइ भणइ राउ सामिय दरसिज्जइ।
इंद–पडिंद–चंद–विज्जाहर सुर–णर–चक्कवट्टि–हरिहलहर।
जसु पयकमलरेणु सिरि घल्लहि णिच्चु वि पणवहि णिहणिय[4] सल्लहि।
सो जिंदेउ जिणवरु मण्णिज्जइ अणुदिणु णियमाणसि समरिज्जइ।
वीयराउ वरकेवलवंतउ णिहणिउ मोहमल्लु बलवंतउ।
सो[5] जिंदेउ[6] संसारहो तारइ अण्णु कुदेव ण करिहइ पारइ।
धम्मु सोज्जि[7] जिणणाहें बुत्तउ दहलक्खणु पुण्णुदय[8] संजुत्तउ।
तसथावर जीवहंदय किज्जइ मारंतुवि णवि को मारिज्जइ।
धम्मु अहिंसा लक्खणु वुत्तउ धारिज्जइ मणम्मि दिढु चित्तउ।
सव्वसंगपरिचाउ जि किद्धउ विसयसुक्खसिहि पाणिउ दिद्धउ।
तउ णिग्गंथु[9] जेहिं[10] दिढु धरियउ सुहि–दुहि तिण–कंचणु समसरियउ।
सो गुरु सइ[11] पुणु अण्णह तारइ दुग्गइ जंत जीवउ[12] साहारइ।
सत्त तच्च पुणु णववि पयत्थहं[13] रिउदव्वहं काय वि पंचत्थहं[14]।
जं सद्दहणु करिज्जइ णियमणि तं सम्मत्तु होइ जगि दिणमणि।

घत्ता– संमत्तपहावें अकुडिल भावें णरइ णिगोय ण गच्छइ।
तिरियत्तु ण पावइ कयवहु आवइ मरिवि सुसग्गहो अच्छइ।।१०।।

11

समत्तें विणु वयाइ[1] णिरत्थइ वय विणु मणुयजम्मु अकयत्थइ।
रुइसहियउ सायारु वि धम्मउ एवहि अक्खमि सुणि कय सम्मउ।
पढमउ वसणराउ परिच्छिंडहु जूवरमणि अप्पउ ण विहंडउ।
जूव अणत्थमूलभवकारणु जूवउ देइ दुक्ख अइदारणु।
णियधणु हारइ जूवारिउ णरु परधणु वंछइ[2] छंडइ णियघरु।

10. 1 A, कयायरं 2 A,परमं धम्मु 3 A,K, वंधणु 4 A, णिहणेय 5 A,सों 6 K,जिदेउ 7 A,K, सोजि 8 A,K, पुणुदय 9 A,K,N णिगंथु 10 A,K,N,जेहि 11A,K,N, सइं 2 A,जंतजीव K,जंतजीवउ 13 K,पयछहं 14 A,K,N,पंच्चत्थहं **11.**1 A,K,N,वइय 2 K,वंछंइ

www.vitragvani.com

और सम्यक्चारित्र रूप रत्नत्रय की पिटारी धारण करना चाहिए जो भवसागर से तारने वाली है। प्रथम सम्यग्दर्शन धारण करने से शुभगति का बंधन होता है और चतुर्गति के दुःखों को रोकने वाला है। राजा ने कहा–वह दर्शनादिरत्नत्रय क्या है? मुनिराज कहते हैं–इन्द्र, प्रतीन्द्र, चन्द्र, विद्याधर, देव, मनुष्य, चक्रवर्ती, नारायण और बलदेव (हलधर) जिनके चरणकमलों की धूल को सिर से ढोक देते हैं और नित्य ही प्रणाम करते हैं, जिन्होंने तीन शल्यों का अभाव किया है उन्हें जिनेन्द्र देव मानना चाहिए एवं अपने मन में दिन–प्रतिदिन स्मरण करना चाहिए। जिन्होंने बलवान मोह मल्ल (योद्धा) का नाश किया है, जो वीतरागी और केवलज्ञान से युक्त हैं, वह जिनेन्द्रदेव संसार से तारने वाले हैं, अन्य कुदेव ऐसा करने में समर्थवान नहीं है। धर्म वही है, जिसको जिनेन्द्रदेव ने कहा है, पुण्योदय से जोड़ने वाला दसलक्षण धर्म कहा है। त्रस और स्थावर जीवों पर दया कीजिए अर्थात् न तो जीव मात्र को मारिए और न किसी का मरण करवाना चाहिए। धर्म का लक्षण अहिंसा कहा गया है, यह धर्म चित्त को दृढ़ करके धारण कीजिए। सम्पूर्ण परिग्रह का त्याग और सम्पूर्ण विषय-भोगों की अग्नि में पानी डाल देना चाहिए। जैसे निर्ग्रंथ मुनि तप को दृढ़ता से धारण करते हैं, सुख-दुःख और तृण-सोना में समान भाव धारण करते हैं, वह गुरु स्वयं तरते हैं, फिर अन्य के लिए भी तारते हैं एवं दुर्गति में जाते हुए के लिए सहायक होते हैं। अपने मन में सप्त-तत्त्व, नव पदार्थ, छह द्रव्य एवं पंचास्तिकाय के प्रति श्रद्धा रखनी चाहिए। जो उनकी श्रद्धा रखता है, उसको जग में सम्यक्त्व–सूर्य का उदय होता है।

घत्ता–सम्यक्त्व के प्रभाव एवं अकुटिलता के भाव से जीव नरक और निगोद में नहीं जाता है, तिर्यंच गति को भी प्राप्त नहीं करता है और बहुत अधिक क्या कहा जाए, वह मरकर स्वर्ग में विद्यमान होता है।

11. जुआ एवं मांस-सेवन व्यसन का स्वरूप

सम्यक्त्व के बिना व्रतादि निरर्थक हैं और व्रत के बिना मनुष्य जन्म अप्रयोजनीय है। रुचि सहित ही धर्म का आकार (आचार) होता है। इस प्रकार मैं कहता हूं कि सम्यक्त्व को प्रगट करो। सम्यक्त्व के लिए प्रथम तो व्यसन का त्याग करना चाहिए, जुआ खेलकर, अपने आपका विच्छेद नहीं करो, जुआ अनर्थ एवं संसार का मूल कारण है, अति भयानक दुःख को देने वाला है, जुआरी अपने धन को हारता और दूसरों के धन की इच्छा करता है और अपने घर तक को छोड़ता है। अपयश और अकीर्ति में पड़ते हुए दिखाई देता है, सत्य का हनन और असत्य को रखता है, खेलते हुए दयाधर्म का विनाश करता है, हारते हुए कठोर वचन बोलता है अथवा यदि दूसरे के धन को कैसे भी पाता है तो मद्य और माँस दास (सेवक) के द्वारा भेजकर मंगवाता है, धन हार

अजसकित्तिपडहहु दरिसावइ सच्चु हणेइ असच्चहु[3] भावइ।
कीडंतह दयधम्मु[4] विणासइ[5] हारंतह कडुयक्खर भासइ[6]।
अहवा जइ परधणु किं पावइ मज्जमंस दासियहि गमावइ[7]।
धणु हारिवि हुइ रोरहु भायण छंडहि बंधव णियदारायणु।
राउ जुहिट्ठिलु बंधवसहियउ संवच्छरबारह वणे रहियउ।
जूवइ दुह पत्तउ गरुयारउ जूयहो कोऊहलु वि असारउ।
जूव रमंतह णरभउ हारिउ अप्पाणउ तेण जि संघारिउ।
इय जाणिवि जूवइ ण रमिज्जइ मणुयत्तणु सकयत्थउ किज्जइ।
मंसासणु जो णिग्घिणु सेवइ सो अप्पाणउ दुग्गइ खेवइ।
जो जंगलु भक्खइ मयगाविउ तहि समाण णउ अवरु ण[8] पाविउ।
जो पलु भक्खइ जीहालंपडु सो कुक्कर समाण जडयाहं जडु।
गुत्थ–मुत्त–किमि असुयह संकुल अवरु वि तसथावरहं णिरंकुल।
मुंचइ[9] कलेवर कोवि ण छिप्पइ पिच्छंतहं भयावणु घिप्पइ।
धम्मवंत णर दिट्ठि ण पिक्खहि[10] पाविए पाववुद्धि सइ भक्खहि।

घत्ता– जो जाणिवि छंडइ अप्पउ मंडइ वयहो पहावें सुहु लहइ।
जो पलु आसासइ[11] जीवह[12] तासइ णरयणिवासु णिच्चु लहइ[13]।।११।।

12

वगुराउ वि मंसासण णडियउ दुक्खमहण्णव दुस्सइ पडियउ।
एवहि मइरादोस समक्खमि णिसुणि णरेंद तुज्झ हउं अक्खमि।
मइरा मत्तउ किंपि ण याणइ जणणि–सहोयरि–तिय सममाणइ।
मत्तउ मग्गे पडेइ तुरंतउ सुणहुल्लउ मुहि सवइ सरंतउ।
मज्जें मत्तउ वयणु ण मण्णइ जणणि–जणणु–वंधव अवगण्णइ।
गायइ वायइ णच्चइ खिल्लइ अप्पाणउ दुहसायरि घल्लइ।
वियलिंदिउ रोसाणलु धारइ अण्णु हणइ अह सयं संघारइ।
जीवणिगोयरासि परिपुण्णउ पाव महीरुह वड्ढइ उण्णउ।
पिसिय मज्जु णउ किंपि वि अंतरु अण्णजम्मि दुह देइ णिरंतरु।
अवरदोस जे णरयहो कारणु सयल समज्जइ मज्जहो धारणु।
इय जाणिवि वय रक्खणु किज्जइ मज्जासत्तहं संगु चइज्जइ।
छप्पंचासकोडिजादववलु सुररमणहं जमउरि पत्तउ खलु।

3 A,Nअच्चहु K,असच्चुहु 4 A, K,N, दयधमु 5 A,विणासइं 6 A, भासइं 7 A,K,N,णमावइ 8 K, वि
9 A, K,N,मुवइ 10 A, K,N, पिखहि 11 A, आसासइं 12 K,N,जीवहं 13 K,N, लहइं

www.vitragvani.com

करके दरिद्रता का पात्र होता है एवं बंधुजन (परिवारजन) और अपनी पत्नी को भी छोड़ता है। जुआ के कारण राजा युधिष्ठिर परिवार सहित बारह वर्ष तक वन में रहे। जुआ से भयानक दुःख की प्राप्ति होती है, जुआ का कौतूहल असार है, जुआ में रमते हुए अपने मनुष्य भव को हार जाता है, उससे अपने आपका ही संहार होता है। इस प्रकार जानकर जुआ नहीं खेलना चाहिए और अपने मनुष्य भव को सार्थक करना चाहिए। जो मांस का करुणा रहित होकर सेवन करता है, वह अपने आपको दुर्गति में गिराता है। जो जंगल में मृगादि का भक्षण करता है, उसके समान अन्य कोई पापी नहीं है। जो जिह्वा की लंपटतावश मांस का भक्षण करता है, वह कुत्ते के समान जड़ का जड़ है। 'मांस' मूत्र, क्षुद्र जीव आदि से परिपूर्ण अशुभ पिण्ड है एवं उसमें अन्य त्रस-स्थावर भी विद्यमान होते हैं, वह अपने मृत शरीर को उसी में छोड़ते हैं जो किसी से भी छिपा नहीं है। धर्मवान मनुष्य तो देखता भी नहीं है और पापी पापबुद्धिपूर्वक सदा भक्षण करता है।

घत्ता—जो उक्त दोषों को जानकर मांस भक्षण को छोड़ता है, वह अपनी आत्मा का चिंतन करता है, व्रतों के प्रभाव से सुख को प्राप्त करता है। जो मांस की आशा में जीवों का नाश करता है वह नित्य ही नरक निवास को प्राप्त करता है।

12. मद्यपान, वेश्यागमन व्यसन

वगुराजा भी मांस भक्षण से व्याकुल हुए और असहनीय दुःख रूपी समुद्र में पड़ते हैं। इसी प्रकार से मदिरा दोष को भी कहता हूँ। हे राजन्! सुनो मैं तुमको कहता हूँ, मदिरा में मस्त व्यक्ति किसी को भी नहीं जानता है, माँ, बहिन और स्त्री को समान मानता है। मदिरा में मदमस्त होकर तुरन्त ही मार्ग में पड़ता है और उसके मुंह में कुत्ता मूत्र छोड़ता है। मद्य में मस्त मनुष्य के वचनों को कोई नहीं मानता है। माता-पिता और परिजन तिरस्कार करते हैं। वह गाता, बोलता, नाचता और खिलखिलाता है और अपने आपको दुःखसागर में गिराता है। विकलेन्द्रिय होकर क्रोध रूप अग्नि को धारण करता है, अन्य का नाश करता है अथवा यहां तक कि स्वयं का संहार भी करता है। जीवों की निगोद-राशि परिपूर्ण है और पापरूपी वृक्ष बढ़कर उन्नत हो रहा है। मांस-भक्षण और मद्य (शराब) में कोई भी अंतर नहीं है क्योंकि अन्य जन्म में दोनों निरन्तर दुःख को देते हैं, दूसरा दोष यह है कि दोनों नरक के कारण हैं। व्यक्ति मद्य का सेवन करके सम्पूर्ण पापों का उपार्जन करते हैं। यह जानकर व्रतों की रक्षा करना चाहिए और मद्य में आसक्त पुरुषों की संगति का त्याग करना चाहिए। छप्पन-करोड़ यादव योद्धा भी शराब का सेवन करते हुए यमपुरी को प्राप्त हुए थे। इस प्रकार से दोषों को सुनकर लज्जित होना और व्रतों के नाशक व्यसन का मन में चिन्तन करना चाहिए, जो मांस और शराब का कुत्सितता से भक्षण करता है, वह नित्य ही झूठ वचनों को कहता है।

www.vitragvani.com

एवहि लंजिय दोसायण्णहि वय णिण्णासु वसणु मणि मण्णहि।
पिसियसुरायलु कुच्छिउ भक्खहि मिच्छावयणु णिच्चु परिअक्खहि।
धणवंतउ कुरूउ पइसारहि णिद्धणु रुववंतु णिद्धाडहि।
इक्कु रमहि अण्णेक्कुविचिंतहि कोढु होइ लंजियहि रमंतहि।
वेसा अंगरुव किं कहियउ पावपुंज्जु विहिणा णिम्मइयउ।
सव्ववल्लहं[1] जो कय रमणउ सो णिच्छइ कुजोणि कय गमणउ।

घत्ता– लंजिय सेवंतउ, सुहु मण्णंतउ, खद्धइं कोडि सुवणइं।
वसुदह परिमाणउ, कय अवमाणउ, पुणु पाविय अवयण्णइं।।१२।।

13

वणिसुउ णामेण जि चारुदत्तु विट्ठइ गिह घल्लिउ दुक्ख पत्तु।
इय मुणिवि पाउ लंजिय सहाउ वय–कारणि किज्जइ रमणचाउ।
एवहि णिसुणहि णिव पावरिद्धि वसणु वि विद्धंसइ सयलसिद्धि।
काणणि णिवसहि वहुजीव सत्थ तिरियम्मु लद्धु एही अवत्थ।
पंगु रणहीण णिद्दोसयारि तिण्हइ वेलइ णउ लहहि वारि।
जो तहं संहारइ पावयम्मु तहि सरिसउ अवरु ण को अहम्मु।
पारद्धिउ चउगइ भमइ केम चलपहरिय झिंदु व पुहइ जेम।
सव्वह वल्लहु णियजीवयव्वु सो णउ घाइज्जइ करिवि गव्वु।
पारद्धिउ कुच्छिय जोणि जाइ परजीवह जीविउ मूढ घाइ।
थरहरइ जीउ मरणहो भएण सो किं ताडिज्जइ असिवरेण।
जहि परपाणिय–पाणहरु किण्णु तहि णियजीविय सुहवारि दिण्णु।
इय जाणिवि किज्जइ जीवरक्ख मण–वयण–काय वसि करिवि अक्ख।
चक्कवइ सुभोमु पयंडवाहु पारद्ध होउ वरि णिवद्ध गाहु।
सो धम्मराय कवलियउ पाउ रवरव पत्तउ छंक्खंड राउ।
एवहि तक्कर आयण्णिदोस जणु सयलु लहइ तक्करहो रोस।
छिंदइ भिंदइ णरणाहु सीसु अहवा छिंदइ पय पाणि ईसु।
परधणु चोरंतह दय ण होइ तक्करु हणंत रक्खइ ण कोइ।
जो पावयम्मु परदव्वु हरइ सो भवकाणणि भुल्लउ सरइ।
जहि परलच्छी अवहरणु किद्धु तहि परजीविउ सयमेव लिद्धु।
इह[1] परभव जीवह दुह णिबंधु कुसुमालकम्मु खलु भयहं सिंधु[2]।
सिवभूइ विप्पु लोहेण णडिउ रयणइ णउ कप्पिय कुगइ पडिउ।
इय मण्णिवि किज्जइ तासु चाउ चाएण पयट्टइ सहलकाउ।

12. 1 A, K,N, सव्वहवल्लहं (समास किया है) 13. 1 N, इहं 2. K, सिंधु

जिसके यहां धनवान कुरूप हो तो भी उसका प्रवेश होता है लेकिन निर्धन रूपवान होने पर भी निष्कासित किया जाता है। वह वेश्या एक के साथ रमण करती है और अन्य एक का चिंतन करती है, लज्जा से रमण करते हुए कोढ़ी होती है। वेश्या के अंगरूप के बारे में क्या कहा जाये, विधाता ने तो उसमें पापों का समूह निर्मित किया है। उसको सभी प्रिय हैं जो रमण करते हैं, वे निश्चित ही कुयोनि में जाते हैं।

घत्ता—जो लज्जित होते हुए सेवन करते हैं एवं सुख मानते हैं, वह उनका करोड़ों का सोना खा जाती है, वह वेश्या अठारह (वसुदह) दोषों का पिण्ड है, उसके द्वारा व्यक्ति अपमान के शब्द सुनने पर भी उसे प्राप्त करना चाहता है।

13. शिकार और चोरी-व्यसन का स्वरूप

वणिक् पुत्र जिसका नाम चारुदत्त है, वेश्या के घर में प्रविष्ट होकर अनुरक्त प्रेमी हुआ और दुःख को प्राप्त करता है। इस प्रकार लज्जित होकर स्वभाव को प्राप्त करो और व्रत के कारण पाप—सम्पदा की रमणता का त्याग करना चाहिए। इस प्रकार 'राजा' सुनो—व्यसन ही सम्पूर्ण सिद्धियों का विध्वंसक है। वन में बहुत से जीव निवास करते हैं, तिर्यंच भी यही अवस्था को प्राप्त करते हैं, वे वस्त्रादि से हीन और निर्दोष हैं, समय पर जिनको तिनकादि भी प्राप्त नहीं होता है जो उनका संहार करके पाप-कर्म करता है, उसके समान अन्य कोई पापी नहीं है। यह शिकारी चतुर्गति में उसी प्रकार भ्रमण करता है, जिस प्रकार पृथ्वी पहरों में चलती है। जिस प्रकार सभी के लिए अपना जीवन प्रिय होता है, उसी प्रकार उसे गर्व करके किसी का घात नहीं करना चाहिए। शिकारी कुत्सित पर्याय को प्राप्त करता है और दूसरे के जीवन का घात करता है। प्राणी मरण के भय से (थर-थर) कांपते हैं, वह क्यों तलवार से जीवों को ताड़ित किया करता है। जो दूसरे जीवों का प्राणहरण करते हैं, वह अपने जीवन के सुख को जला देते हैं। ऐसा जानकर जीव की रक्षा करना चाहिए। मन, वचन, काय और इन्द्रियों को वश में करना चाहिए। प्राणियों का वध करने पर भी, चक्रवर्ती सुभौम जो प्रचंड भुजाओं वाला था, छह खंड का राजा होते हुए वह भी धर्मराज के द्वारा काल कवलित किया गया।

यहां तस्कर (चोर) के दोष सुनो— सभी लोग चोर के क्रोध को प्राप्त करते हैं, वह मुखिया के सिर को छेदन-भेदन कर देता है अथवा पैरों और हाथों को ईर्ष्या से छेदन कर देता है, उसे दूसरों के धन को चुराते हुए दया नहीं आती है। चोर के द्वारा मारे जाते हुए की कोई रक्षा नहीं करता। जो दूसरों का धन चुराता है एवं चुराने का स्मरण करता है, वह संसारवन में भूला हुआ है।

जैसे दूसरों की लक्ष्मी का अपहरण किया है, वैसे दूसरों का जीवन स्वयं ही ले लिया है। इहलोक और परलोक में ऐसे जीवों को दुःख का बंध होता है। चोरकर्म निश्चय ही भय का सागर

www.vitragvani.com

घत्ता– परमुद्धा मेलउ, रमणह[3] कीलउ, खणमेत्तु वि सुहयारउ।
पच्छइ दुहु दारणु, णरयहु कारणु, पावइ जीउ असारउ।।१३[4]।।

14

परतिय णरयजोणि दरिसावइ परमहिला जमउरि पहि लावइ[1]।
परमुद्धासत्तउ जणु जाणइ अजसकित्ति लोउ वक्खाणइ।
अहवा जइ जगतीवइ णिसुणइ करचरणाइसीसु आणि हणइ।
खररोहणु करेइ णिद्धाडइ वसु अवहरइ वयण पुणु ताडइ।
अहवा जइ पुहवइ ण वियाणइ थरहरंतु परभामिणि माणइ।
जइ पुणु कंतु[2] णियच्छइ जारहो जीवयव्वु अवहरइ सुसारहो।
इय दुक्खइ सहेइ जइ पावइ अलहंतउ विरहाणलु तावइ।
जिम जिम पररमणी मणि झावइ तिम तिम मयणु देउ[3] वहु आवइ।
आकंदइ पिक्खिवि तियभूसणु णरु अलहंतउ इंदियपोसणु।
जिम जिम सालंकार पलोयइ[4] तिम तिम कामिउ णियमणि रोवइ।
परवणिया वयणुल्लउ पिक्खइ तहो तणरमणु वाउ परिसिक्खइ[5]।
सो किं पावइ पुण्णविहीणउ कम्मवसेण जाउ णिहि हीणउ[6]।
परवणिया परिणामु करंतउ कामिउ झूरइ चित्ति धरंतउ।
पाउ महंतु सो जि उप्पावइ णरयावणिणिवासु धुव पावइ।
परतिय लंपडु दहमुह जायउ तिक्खंडइ राउणु विक्खायउ।
तेण हरिय कलत्त वलहद्दहो सो णिहणिउ अट्ठमइ जणद्दहो।
पंकपहाहि पत्तु सो रावणु दोवइ कारणि अवरु भयावणु।
कीयकु हणिउ भीमिवलवंतए णियवंधव तियदोस वहंतए।

घत्ता– इय मुणिवि णरेंद, कुवलयचंद, परतिय णेहु ण किज्जइ[7]।
मणवयणतिसुद्ध, परिणियसुद्ध[8], णियमणु संतोसिज्जइ।।१४।।

15

जिह वज्जिज्जइ पररमणि राउ तिह तिय वज्जहु परपुरिसभाउ।
परपुरिस रमणि[1] दासीसमाणु णरसरिस दोस जंपिउ पमाणु।
इक्किक्क वसण सण्णिहिय चित्त ते कालें कवलिय दुक्ख पत्त।
पुणु जो सत्त वि वसणाइ रत्तु तहो दुह अक्खइ सरसइ सुवत्तु।
महुमज्जमंसपंचुंवराइ परिवज्जहु सावय वय धराइ[2]।

3.ए रमणहं 4. ।ए ज्ञए नं.13 की जगह 12 नं. लिखा है। **14** 1. K,लवइ 2.K,कतु 3. A,K, N,देइ 4.A,K,N पलोवइ 5. K,[0]सिक्खई 6. K, णिहिणउ 7. K, कीज्जइ 8. A,N, मुद्ध **15** 1. A, रमिणि 2. A,घराइ K, वराइ

www.vitragvani.com

है। शिवभूति ब्राह्मण लोभ से व्याकुलित हुआ और रत्नादि कल्पित नहीं हुए, फिर भी कुगति में गिरता है। इस प्रकार जान करके उसका त्याग करना चाहिए और त्याग के द्वारा सार्थक कार्य में प्रवृत्ति लगाना चाहिए।

घत्ता– (दूसरे) परस्त्री से मिलता है, रमण की क्रीड़ा करता है, यह क्षण मात्र ही सुखकारक है, पश्चात् अत्यधिक दुःख एवं नरक का कारण हैं और जीव असारता को प्राप्त करता है।

14. परस्त्रीसेवन व्यसन स्वरूप

परस्त्री नरकगति को दिखाने वाली है और वह यमपुरी के मार्ग में लाती है। परमुग्धा में आसक्ति लोग जानते हैं, जिसका अपयश और अकीर्ति लोक में प्रसिद्ध है। यदि राजा सुनता है तो व्यभिचारी के हाथ, पैर और सिर छिन्न-भिन्न करने की आज्ञा देता है, गधे पर सवार करके नगर से निष्कासित करता है, उसकी सम्पत्ति (धन) का अपहरण करता है और वचनों से ताड़ित किया जाता है अथवा यदि उसका पति व्यभिचारी को देख लेता है तो वह भलीभांति उसके जीवन का अपहरण करता है। यदि व्यभिचारी परस्त्री को प्राप्त करता है तो इस प्रकार उक्त दुःखों को सहन करता है। यदि प्राप्त नहीं करता है तो विरह की आग में तपता है। जैसे-जैसे परस्त्री का मन में ध्यान आता है, वैसे-वैसे कामदेव अत्यंत पीड़ित दिखाई देता है। परस्त्री के आभूषणों को देखकर क्रन्दन–सा करता है, मनुष्य इन्द्रिय की तृप्ति नहीं कर पाता है। जैसे-जैसे उसको अलंकार सहित देखता है, वैसे-वैसे कामी पुरुष अपने मन में रोता है। परस्त्री के वचनों को सुनता है और उसके तन की सुगंध की हवा से सुख महसूस करता है। वह पुण्यहीन क्या प्राप्त करता है, कर्म के वश में होकर अपने खजाने को नष्ट करता है। परस्त्री के प्रति अपने परिणाम को करते हुए कामी-पुरुष कुटिलता (टेढ़ापन) को चित्त में धारण करता है और कामी पुरुष महान-पाप उत्पन्न करता है जो नरक रूपी वन में ध्रुव रूप से निवास करवाने वाला है। परस्त्री की लंपटता को धारण करने वाला दशानन हुआ, जो त्रिखंड का अधिपति रावण नाम से विख्यात है, उसने बलभद्र की पत्नी को हरण किया, वह अष्टम जनार्दन (नारायण लक्ष्मण) के द्वारा मारा गया और उसने नरक को प्राप्त किया। दूसरा, द्रोपदी के कारण भयंकर परिणाम हुआ, बलवान भीम ने कीचक का वध किया और अपने परिजनों के लिए स्त्री–दोष का वहन किया।

घत्ता–हे नरेन्द्र! पृथ्वीमंडल के चन्द्र इस प्रकार जानकर परस्त्री में प्रेम नहीं करना चाहिए। मन, वचन और काय की शुद्धिपूर्वक विवाह कीजिए और अपने मन में संतोष को धारण कीजिए।

15. पर-पुरुष सेवन और रात्रिभोजन का त्याग

जिस प्रकार परस्त्री में रमण करने के राग को वर्जित (निषेध) किया गया है, उसी प्रकार स्त्री के लिए परपुरुष के प्रति रमण करने के भाव का निषेध है। परपुरुष में रमण दासी के समान

www.vitragvani.com

णिसिभोयणु छंडहु[3] पावरासि तसथावरजीवह सव्वगासि।
जो णिग्घिणु णिसिभोयणु करेइ सो दीह भवावलि संसरेइ।
णत्तिहि णवि पिच्छइ किंपि वत्थु[3] किं अखम्मि वहु पावइ अवत्थु[4]।
जलगालणु किज्जइ सयलकाल तहु पुण्णें पावइ सुहविसाल।
जो भव्वु दयावरु पुण्णवंतु[5] जुय जुय घडियहि गालइ तुरंतु।
अणगलिउ णीरु परिट्ठवहु तत्थ[6] वरकूव णिवाणह गहिउ जत्थ।
फासुय रखिज्जइ पहर जुम्म अप्पाणउ वंछहु[7] सुकिय कम्मु।
उण्होयउ वसुपहराय संख तह उप्परि उप्पज्जहि असंख।
कालिंदालावु अणंतकाय परिचवहु कुसुम भखणु णिराय।

घत्ता– मंखणु परिवज्जहु, पुण्णु समज्जहु, दहि अहवा तक्करइं सहुं।
वियलण्णु णर वज्जइ, पावउ वज्जइ, परिपालज्जइ जयणु तहु।।१५।।

16

गोरसु वियलण्णु सिहीहि तत्तु भक्खिज्जइ भोयणि दोसचत्तु।
रिउ रिउ[1] पयार सावय वयाइ दिढु करि पालिज्जइ सावयाइ।
पढमउ वउ जीवह[2] अभयदाणु अणिवत्तहि दिज्जइ अप्पमाणु।
तस रक्खहु जयणु करेवि कंख थावर रक्खिज्जहु करिवि संख।
वीयउ असच्चु णवि भक्खियए हिउमिउ वयणुल्लउ अक्खियए।
वसुराउ असच्चहो खयहु गउ परदव्वु ण लिज्जइ तियउ वउ।
रणिरावलि चच्चरमुहि पडिउ अणु दिण्णु ण लिज्जइ महिजडिउ।
णियदारासंतोसियइ मणु पररमणी छंडिवि जेम तिणु।
अहवा वंभव्वउ धारियए अप्पउ संसारहि तारियए।
धणधण्णदासदासीसुवण्ण परिगहुपमाणु किज्जइ रवण्णु।
दंडिजइ[3] लोह वि सल्ल दुट्ठु[4] पंचमउ अणुव्वउ ऐहु[5] सिट्ठु।
दिगवउ–दिसवउ वि अणत्थदंड परिपालहु तिण्णिवि गुणपयंड[6]।
सामायउ किज्जइ तिण्णिकाल दिणि–दिणि रिउ–रिउ घडियहि णियाल।
समया अवलंवणु सो सभाउ[7] रुद्दट्टझाण वज्जिय[8] अगाउ।
सो सामायउ कय पुण्णरासि दुइ अट्ठमिचउदसि मासि–मासि।
पोसहुउववासु वि वंभचेरु[9] कय पव्वि पव्वि हय पाववेरु।
अहवा पोसह सहु एयभत्तु पालियइ[10] कंख भोयहु विरत्तु।

3. K,वछु A,वच्छु 4. K, अवत्थू 5. K, पुणुवंतुं A, N, पुण्णुवंतु
6. A, कच्छ K, तछ 7. A, वंकहु **16.**1. K, रउ 2. A,जीवहं 3. K,द्दंडिजइ 4. K,सल्लहुट्ठु 5. K, N, एहु 6.K, गुण्णपयंड 7. N, मभाउ 8. K, वजिय 9. N,वभचेरू 10. K,पालियइं

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

है और स्त्री के लिए नर के समान दोष कहे हैं। जो एक-एक व्यसन में चित्त (मन) को प्रवृत्त करते हैं वे काल में कवलित होकर दुःख को प्राप्त करते हैं। फिर जो सातों व्यसनों में रत होते हैं, उसको हजार गुना दुःख कहा है। जिनवाणी में उसे मूलगुण व्रती कहा है जो मद्य, माँस, मधु और पांच उदुम्बर फलों का त्याग करता है और श्रावक के व्रतों को धारण करता है। रात्रि भोजन छोड़ो जो पापराशि रूप है और त्रस-स्थावर जीवों का घर है। जो करुणा रहित होकर रात्रि भोजन करता है, वह दीर्घकाल तक भवसमुद्र में भ्रमण करता है। सभी समय (तीनों समय) जल छानकर पीना चाहिए, उसके पुण्य में अत्यधिक सुख की प्राप्ति होती है। जो भव्य दयावान और पुण्यवान हैं, वे प्रयत्न पूर्वक तुरन्त पानी छानते हैं, विलछानी (जीवानी) का जल वहीं स्थापित करना चाहिए, जहां कुएँ से घड़ा भरा था। आप स्वयं सुकृत कर्म करना चाहते हो तो एक पहर तक पीने योग्य जल रखना चाहिए, गर्म होने पर आठ पहर की मर्यादा होती है, उसके ऊपर असंख्यात जीव उत्पन्न हो जाते हैं, इसके अलावा इससे अधिक समय तक अनंत काय जीव हो जाते हैं। निराग होकर पुष्पभक्षण का भी त्याग करना चाहिए।

घत्ता–अमर्यादित माखन (दही) का त्याग करके पुण्य उपार्जित करना चाहिए, साथ ही अमर्यादित छाछ का त्याग करना चाहिए। व्यक्ति को नीचे गिरे हुए पदार्थ के सेवन का त्याग करना चाहिए एवं पाप को छोड़कर दृढ़ता से परिपालन करना चाहिए।

16. मर्यादित दुग्ध एवं बारह व्रत का वर्णन

गाय के दूध को अग्नि में तपाना चाहिए और दोषों का त्याग करके भोजन करना चाहिए। बारह प्रकार (रिउरिउ) के श्रावक के व्रत हैं, उनका दृढ़ता से श्रावकों को पालन करना चाहिए। प्रथम व्रत है जीवों का अभयदान, जो अनिवृत्ति पूर्वक स्वयं पालन करना चाहिए। यदि जय करने की इच्छा है तो त्रस जीवों की रक्षा करो, साथ ही स्थावर जीवों की भी रक्षा करो। दूसरा व्रत है–असत्य नहीं बोलना चाहिए, हित-मित-प्रिय वचन कहना चाहिए। वसुराजा असत्य के कारण नाश को प्राप्त हुआ। तीसरा व्रत–दूसरों का धन नहीं छीनना चाहिए। दूसरे के द्वारा दी हुई अनुचित पृथ्वी आदि नहीं लेना चाहिए। अपनी पत्नी (स्वस्त्री) से ही मन में संतोष रखना चाहिए। परस्त्री का त्याग तिनके के समान करना चाहिए अथवा ब्रह्मचर्य को धारण करो, अपने आप संसार से पार हो जाओगे। धन-धान्य, दास-दासी एवं रमणीय स्वर्ण आदि का परिग्रह परिमाण करना चाहिए। लोभ भी एक प्रकार की दुष्ट चुभन है, जिससे दंड मिलता है। यह पांच उत्तम अणुव्रत हैं। तीन प्रकार के गुणव्रत–दिग्व्रत, देशव्रत और अनर्थदंडव्रत का परिपालन करो। तीनों कालों में सामायिक करना चाहिए, प्रतिदिन छह घड़ी सामायिक करना चाहिए, वह आत्मा का (समभाव) अवलंबन रूप स्वभाव है, अयोग्य रौद्रध्यान को वर्जित करना चाहिए, सामायिक से

www.vitragvani.com

घत्ता– विणु चायइ मंदिरु, सव्वअसुंदरु, पिउवणसरिसउ मुणहि पहु।
परियणु सुणहुल्लउ, पुरिसुमडुल्लउ, वसु जंगलु खउ होइ लहु।।१६।।

17

दाणु वि दिज्जइ वरतिविहु पत्त मण–वयण–तिसुद्धिए दोसचत्त।
सो दाणु पवट्टइ वप्प केम णग्गोह विज्जु हुइ गरुय जेम।
जो दिज्जइ दाणु अपत्तएहि अहवा अप्पियए कुपत्तएहि[1]।
सो णिप्फलु गच्छइ सयलु[2] केम उरवरि वइयउ वरवीउ जेम।
भोगोपभोग–संखाइ करहु तुरियो सिखाव्वउ एम धरहु।
किज्जइ सल्लेहण[3] अंतयालि[4] पाविज्जइ सुहु आयामकालि।
अवरु वि वयाइ वहुभेय सुणिवि णिउ धम्मसेणु[5] वरधम्मु मुणिवि[6]।
सायारु धम्मु संगहिउ तेण परिभावि वउ णिम्मलमणेण।
तहि कुमरवरंगु[7] वि लयउ धम्मु रिसिणा दिण्णउ विणिहय कुकम्मु।
केणवि संगहिय जिणिंद दिक्ख[8] केणवि मुणिणाहहो लइय सिक्ख[9]।
केणवि संगहिय अणुवयाइं[10] केणवि सिखावयगुण वयाइं[11]।
इय गहिवि धम्मु णियणयरि पत्तु मुणिवरु विहरिउ तव खीण गत्तु।
इत्तहि वरंगु[12] अच्छइ सुहेण जिणपूय–दाण–वय उच्छवेण।

घत्ता– णंदणगुण पिक्खिवि, मंति समक्खिवि, जुवरायत्तणु दिण्णउ।
कलसइ ण्हावेप्पिणु[13],तूरह णेप्पिणु[14], आसि जम्मि तउ चिण्णउ[15]।।१७।।

18

तायँ[1] जुवपउ दिण्णउ जावहि कुमरवरंगहो उप्परि तावहि।
सयल सुसेणयाइ सुय कुप्पिय माणभंग हुय णियमणि तप्पिय।
भणहि सुसेण एहु गुरुयारउ[2] जुवरायत्तणु पउ जिह मारउ।
अहवा किण्णउ पक्ख[3] समुज्जल अहवा किं अम्हहं वलदुव्वल।
तहि अवसरि मंतीयण घोसहि वरमंतत्तणु वयणु जि पोसहि।
लहु गरुयत्तणु कोप भणिज्जइ पुव्वजिय तव फलु पाविज्जइ।
किं पंचाणणु भंजइ गय घडु गयवरु किं भंजइ[4] भूरुहवडु।
पर दिण्णउ णवि होइ पहुत्तणु[5] पुण्णहं[6] लब्भइ पहुगुण कित्तणु।
इय वयणहि गय णियमंदिर[7] णिय जणणिहि कय णयणाणंदिर[8]।
गुणदेविहि उच्छाहु वि जायउ मयसेणइ सोउ संपायउ।
सयलं ते उराइ मिल्लेविणु गुणदेविहि मंदिरे[9] आवेविणु।

17 1.K,^{0}एहिं 2.A,सय N,सयल 3. A,सल्लेंहण 4. A,अंतपालि 5. A, धमसेणु 6. K, N, सुणिवि 7. A, K,N, वरंगि 8. A, K, N, दिख 9. A,K,N, सिख 10. A, K, N, ^{0}वयाइ 11. A,N, वयाइ 12. K, वरगु 13.A,K,N ण्हावेपिणु 14. A,K,N, हणेपिणु 15. A, चिण्णउ **18** 1. A, K, N, तायइ 2. A, N,गरुयारउ 3. K,पक्खं

www.vitragvani.com

पुण्यराशि अर्जित होती है। अष्टमी और चतुर्दशी प्रत्येक माह में दो-दो होती हैं। उनमें प्रोषधोपवास व्रत एवं ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए। पापरूप दरवाजा का नाश करने वाले ये पर्व करना चाहिए अथवा प्रोषधोपवास करने से जिनदेव का भक्त होता है। व्रतों का पालन करते हुए इच्छा और भोगों से विरक्ति होना चाहिए।

घत्ता–व्रतों के बिना मंदिर आते हैं तो सब कुछ असुन्दर है। प्रियवन के सदृश प्रभु को जानो, व्रतों का महत्त्व परिजन और नगर में सुनाओ, क्योंकि यह सम्पत्ति जंगल में शीघ्र ही नष्ट होती है।

17. दान का स्वरूप एवं सल्लेखना

दान भी श्रेष्ठ दोषों का त्याग करके, तीन पात्रों को मन, वचन और काय की शुद्धि पूर्वक देना चाहिए। बाप रे! वह दान किस प्रकार प्रवृत्त होता है, जिस प्रकार वटवृक्ष का बीज बड़ा होता है। जो अपात्र को दान किया करता है अथवा कुपात्र को अर्पित करता है, वह सब कुछ ऐसे निष्फल होता है जैसे श्रेष्ठ बीज भी अनुपजाऊ जमीन पर पैदा नहीं होता है, भोग और उपभोग की वस्तुओं की संख्या (परिमाण) करना चाहिए। शीघ्र ही शिक्षाव्रतों को धारण करो, अंत काल में सल्लेखना कीजिए तो आने वाले समय में सुख को प्राप्त करोगे। अन्य व्रतादि के बहुत से भेदों को सुनकर, नृप धर्मसेन श्रेष्ठ धर्म को जानकर, उसके द्वारा आचार को धारण किया जाता है एवं निर्मल मन से व्रतों का परिपालन करता है। किसी के द्वारा देवदर्शन का व्रत धारण किया गया, किसी ने मुनिराज से शिक्षा ली, किसी के द्वारा अणुव्रत धारण किये जाते हैं, किसी के द्वारा शिक्षाव्रत एवं गुणव्रत धारण किये गये। इस प्रकार वे सभी धर्म ग्रहण करके अपने नगर में पहुंचते हैं और मुनिराज तप से शरीर को क्षीण करते हुए विहार करते हैं। इस प्रकार वरांग सुखपूर्वक जिन पूजा, दान, व्रतादि के उत्सव करता है।

घत्ता–कुमार वरांग के गुणों को देखकर, मंत्रियों की उपस्थिति में उसे युवराज पद दिया गया। उसका कलशों से स्नान किया गया और वाद्ययंत्र बजवाये जाते हैं और कुमार को आचरित किया जाता है।

18. सुषेण की ईर्ष्या

ज्योंही पिता ने युवराज पद दिया, वैसे ही कुमार वरांग के ऊपर सुषेणादि सभी पुत्र कुपित हो जाते हैं और मान–भंग होने पर अपने मन में संताप करते हैं। सुषेण कहता है–मुझसे युवराज पद छीना गया है अथवा यह पक्ष उज्ज्वल नहीं है, क्या हमारा बल दुर्बल है। इस अवसर पर जो कुमार वरांग के लिए मंत्रीजन द्वारा घोषणा की गई एवं श्रेष्ठ मंत्रियों के वचनों का पोषण मिला

किं पंचाणणु भंजइ गय घडु	गयवरु किं भंजइ[4] भूरुहवडु।
पर दिण्णउ णवि होइ पहुत्तणु[5]	पुण्णहं[6] लब्भइ पहुगुण कित्तणु।
इय वयणहि गय णियमंदिर[7]	णिय जणणिहि कय णयणाणंदिर[8]।
गुणदेविहि उच्छाहु वि जायउ	मयसेणइ सोउ संपायउ।
सयलं ते उराइ मिल्लेविणु	गुणदेविहि मंदिरे[9] आवेविणु।
सव्वहं गुणदेविहि किउ वच्छलु	मयसेणइ किउ मायावच्छलु।
करिवि पसंसण गय णियभवणहो	णं विहि णिम्मिय मग्गण मयणहो।
मयसेणइ जाइवि किं किद्धउ	णिय आवासि सोउ पारद्धउ।
अक्खइ णिसुणि पुत्तरइ धुत्तिय	हउं गरुयारिय णरवइ[10] पत्तिय।
माणभंगु महु केरउ जायउ	जं तुह णउ दिण्णउ[11] जुयराउ।
इय वयणइ सुसेणु पज्जलियउ	कोह–हुयासणु माणसु जलियउ।
माइ माइ णयणंसुय पुच्छहि[12]	सोयवसेण तुज्झ मा अच्छहि।
संगरु करि वरंगु संहारमि	जुवरायत्तु वि पउ हउं धारमि।
भणइ मंतियउ कज्जु ण किज्जइ	तायइ दिण्णउ किं पउ लिज्जइ।

घत्ता– मा मसिकुंयउ देहि हरिवंसुज्जलु आसि हुउ।
कुमरुवरंगु अजेउ सुरकरि करसमपयड भुउ।।१८।।

19

अहवा जइ संगरु तुहु करइ	को जाणइ जयसिरि को वरइ।
कम्मह विवाउ णवि को मुणइ	अप्पाणउ सुहडत्तणु गणइ।
मंतिय वयणहि संवोहियउ	उप्पण्णउ कोहु णिरोहियउ।
भो! मंतिय पइं चंगउ भणिउ	एवहि एहु[1] मंतत्तणु किं गणिउ।
पुणु मंति[2] सुबुद्धें अक्खियउ	अप्पाणउ गुज्झ ण रक्खियउ।
एवहि वंचणु किं करि हवइ	विणु अवसरि किं पावसु सवइ।
अवसरु पाविवि करि किं पिच्छलु	हउं वंचमि कुमरुवरंगवलु।
वयणइ आसासिवि रायसुउ	सो मंति दुट्ठ णियगेहि गउ।
इत्तहि वरंगु सुहु अणुसरइ	णियमणि जिणपयकमलइ धरइ[3]।
जो विहिणा पयडिउ पुण्णफलु	सो फेडिवि सक्कइ कवणु खलु।
इत्तहि मिच्छत्त केर करइ	सो दुट्ठ मंति मणि छलु धरइ।

4. K,भंज्जइ 5. K,पहू 5. K,N, प्पुण्णह 6. K,मंदिरे 7. K, मंदिरे 8. K,णणाणंदिरे N, णणाणंदिर 9. A, मंदिर 10.. A, नरवइ K, N,ण्णरवइ 11. A, दिण्णउं 12. N, पुंच्छइ।
19. 1. A, K, N, में इस पद का अभाव है। 2. K, मंतिं 3. K, घरइ।

www.vitragvani.com

है। छोटे और बड़े पुत्र क्रोध से कहते हैं– यह तो कुमारवरांग ने पूर्वार्जित तप का फल पाया है। क्या सिंह गज को नष्ट नहीं करता है? क्या हाथी वटवृक्ष को नहीं तोड़ता है? अर्थात् यह कार्य होते हैं। परन्तु पद देने में प्रभुता नहीं होती है। पुण्य के प्रताप से ही प्रभु के गुणों का गुणगान प्राप्त होता है। इस प्रकार वचन कहकर वे मंदिर जाते हैं। कुमार वरांग की माता के लिए आंखों में आनंद झलकता है, लेकिन मृगसेना को शोक होता है। पुरवासी मिलकर गुणदेवी के साथ मंदिर में आते हैं। गुणदेवी में उत्साह उत्पन्न होता है।

गुणदेवी सभी के लिए वात्सल्य प्रदान करती है, लेकिन मृगसेना छलकपट युक्त वात्सल्य करती है, मानो विधाता ने कामदेव का पुत्र निर्मित किया हो। इस प्रकार नगरवासी प्रशंसा करके अपने घर को चले जाते हैं, मृगसेना वहां से जाती है, अपने निवास स्थान पर सोचना प्रारम्भ करती है कि अब क्या किया जाए? पुत्र-राग में धुत्त होकर कहती है–सुनो मैं राजा की श्रेष्ठ पत्नी हूँ, मेरा मान भंग हुआ है, जो तुम्हें युवराज पद नहीं दिया गया। इन बातों से सुषेण प्रज्वलित हो जाता है और क्रोध की अग्नि में जलता है, हे माता! मेरे आँखों के आंसू पोंछिए, शोक के वश कहता है यह अच्छा नहीं हुआ, मैं संग्राम (युद्ध) करके वरांग का संहार करूंगा, युवराज पद भी मैं ही धारण करूंगा। तब मंत्री कहता है यह कार्य नहीं कीजिए, तात (पिता) के द्वारा दिया हुआ तुम पद छीनोगे।

घत्ता–जिसकी देह से हरिवंश उज्ज्वल हुआ था, ऐरावत हाथी के सूंड के समान जिसकी भुजाएं हैं, ऐसा कुमार वरांग अजेय है।

19. सुबुद्धि मंत्री का कथन

सुबुद्धि मंत्री कहता है–यदि तुम संग्राम (युद्ध) करते हो तो कौन जानता है कि विजय कौन प्राप्त करेगा, कर्मविपाक (कर्मफल) को कोई नहीं जानता है, अपने आपको सभी योद्धा मानते हैं। मंत्री वचनों से संबोधित करता है किन्तु मना करने पर सुषेण को क्रोध उत्पन्न हुआ। हे मंत्री! तुमने सुन्दर कहा है। इस प्रकार मंत्रणा का क्या औचित्य है? पुनः मंत्री सुबुद्धि के द्वारा कहा जाता है– अपने आपको गुप्त नहीं रख सकते हो, इस प्रकार वंचना (ठगना) करके क्या होता है, बिना अवसर के क्या सब कुछ प्राप्त करोगे। सुषेण कहता है–अवसर पाकर पीछे क्या करें, मंत्री कहता है– मैं कुमार वरांग की शक्ति को ठगूंगा। राजपुत्र (सुषेण) को वचनों से आश्वासन देकर, वह दुष्ट मंत्री अपने घर को गया।

इस प्रकार से कुमार वरांग सुख का अनुसरण करता है, अपने मन में जिनेन्द्रदेव के चरण कमल को धारण करता है। वह जो विधाता के द्वारा पुण्यफल प्रगट हुआ है, उसे हटाने की समर्थ किसकी है। वह दुष्ट मंत्री मन में छल धारण करके मिथ्यात्व करता है। राजा भी अपने मन में

www.vitragvani.com

राउ वि ण वियाणइ णियमणम्मि गय अच्छंतहं कइवइ दिणम्मि।
तत्थागय[4] हरिवर वे रवण्ण परपुण्ण अंगु णवि चारु[5] कण्ण।
इक्कहि णरवइ णेहेणवद्ध[6] जुवरायहु दिण्णिय तणु सणिद्ध।
ते हयवर अवलोए वि राउ ण वियाणहि चलवलगयहि भाउ।
को हयवर सिक्खा मुणइ चारु तहु अप्पिज्जहि वररुवधारु[7]।
तो मंति सुबुद्धें भणिउ एउ हउं जाणमि हरि सिक्खा विवेउ।
पुणु कुमरें तहो जि समप्पियाइ लइ आणहि सिक्खा कप्पियाइ[8] ।
हयवर गहेवि मणि कूरमंतु णियगेहि परायउ सो तुरंतु।

घत्ता– इक्कहि दरसाविय कुडिलगइ[9] अवरुवि किद्धउ सरलउ।
कुडिलु पेरंतहं वाहुडइ अकुडिलु गच्छइ तरलउ।।१६।।

20

कुडिलु वि रक्खंतहं णउ रहइ अकुडिलु णियगइ सरलउ वहइ।
इम सिक्खइ दाविय वरतुरंग जुवरायहु दरसाविय सुरंग।
फेरिउ तुरंगु गइ सरल मंति उप्परि आरुहिवि वि तहि तुरंति।
मंतिय पवंचु अमुणंतु राउ तुरयहि आरुढउ कुडिलभाउ।
फेरइ इच्छत्थु वरंगु जाम हरिवरु चल्लिउ उम्मग्गि[1] ताम।
जिम जिम हरिमुह कडियलु धरेइ तिम तिम अग्गइ–अग्गइ सरेइ।
रक्खिउ–रक्खिउ णवि रहइ केम कम्में पेरिज्जइ जीव जेम।
सामंत सुहड कुटि लग्ग[2] सव्व ण वियाणहि कहि गउ कुमरु भव्व।
ते सयल पलट्टिवि णयरि पत्त तुरएण णियउ सुकुमाल सगत्त।
चिंतवइ वरंगु ण तुरिउ होइ अम्हहं चिर जम्मह सत्तु कोइ।
एवहि महु सरणु ण अत्थि कोइ जिणु मुइवि भडारउ तिरिय लोइ।
भउ किं किज्जइ जइ मरणु पत्तु णियमणि चिंतिज्जइ भावियत्तु।
गामइ खेडइ सरिसर मुयंतु णिज्जणि वरंगु हरि सहु सरंतु।
इक्कहि कूवंतरि पडियवेवि हरि मुयउ कुमरि तरु धरिय तेवि।
कम्महं वसेण णीसरिउ सोवि माणसु णवि पिक्खइ तित्थु कोवि।
तण्हाइ[3] भुक्ख सोसियउ अंगु कहि पावइ तहि सज्जणह संगु।
कहि पंचाणणहं रुउद्द[4]–सद्दु कहि कीलहि वरसारंग सद्दु[5]।
कहि मयगल जूह करंति जुद्ध कहि भिडहि कोल अइसमरि कुद्ध।

4. K,तछागय 5. A, K,चीरू 6. A, वद 7. A,K,N, धार 8.A,K,N,कप्पियाई 9. K, °गई
20. 1. A, N,उमग्गि 2. K, N, कुढिल 3. A, K,तन्हाइ N, तम्हाइ 4. A, K,रदुद्द 5. K,सद्द A,भद्द

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

नहीं जान पाता है। भली-भांति कुछ दिन शीघ्र ही व्यतीत हो जाते हैं। यथानुसार एक नरपति स्नेह में बद्ध होकर युवराज के लिए दो घोड़े देता है। वे दोनों घोड़ा रमणीय परिपूर्ण अंग हैं, किन्तु कर्ण सुन्दर नहीं है। उन दोनों घोड़ों का कुमार अवलोकन करता है किन्तु चल, बल एवं गज के भाव को नहीं जानता है। कुमार कहता है—कौन घोड़ा की शिक्षा अच्छे तरीके से जानता है, उस श्रेष्ठ रूपधारी को ही अर्पित करते हैं, तो मंत्री सुबुद्धि यह कहता है कि मैं घोड़ा की शिक्षा एवं भले-बुरे को जानता हूँ। फिर कुमार उसको ही समर्पित करते हैं। मंत्री आज्ञा लेता है और शिक्षा कल्पित करता है। घोड़ों को ग्रहण कर मन में क्रूर गुप्त परामर्श करता है। वह तुरन्त अपने घर पर लौटा।

घत्ता—एक के लिए कुटिलगति दिखाता है और दूसरे को सरल क्रिया करवाता है। कुटिल को भेजते हुए चलाया जाता है और अकुटिल चंचलता से चलता है।

20. कुटिल घोड़ा के द्वारा कुमार वरांग को जंगल में छोड़ना

कुटिल घोड़े को रथ पर नहीं रखते हैं और अकुटिल घोड़ा अपनी गति सरलता से वहन करता है। इस प्रकार घोड़ों को सिखाकर मंत्री युवराज को दिखाते हुए देता है। तुरंग (घोड़े) के मुड़ने की गति गुप्त रहती है, उसके ऊपर शीघ्र ही कुमार सवार होता है। राजा मंत्री की ढग विद्या एवं कुटिल भाव को नहीं जानता है और मंत्री कुमार को घोड़े पर सवार करता है। जैसे ही कुमार घोड़े को लौटाने की इच्छा करता है, वैसे ही घोड़ा उन्मार्ग पर चला करता है। जैसे-जैसे कुमार घोड़े को खींचता है, वैसे-वैसे वह आगे की ओर जाता है। इस प्रकार कोई रक्षक नहीं रहता है जिस प्रकार कर्मों के कारण जीव परिणमन करता है। सामंत और सुभट (योद्धा) सभी उसकी खोज में लग जाते हैं परन्तु नहीं जान पाते हैं कि भव्य कुमार कहां गया होगा? घोड़ा द्वारा अपना सुकुमाल शरीर सहित वे सभी लौटकर नगरी में पहुंचते हैं।

वरांग चिंतन करता है कि यह तुरंत नहीं हुआ है, हमारे पूर्वजन्म का कोई शत्रु है, इस प्रकार मेरा यहां कोई सहारा नहीं है, जिनेन्द्र को छोड़कर वीरभट, तिर्यंच आदि लोक में कोई नहीं है। यदि मरण को प्राप्त हुआ तो क्या करना चाहिए। कुमारवरांग अपने मन में भविष्य का विचार करता है। गांव, खेड़ा (छोटे गांव), नदी एवं तालाब आदि छोड़ते हुए, घोड़े के साथ निर्जन स्थान पर पहुंचता है। एक कुएं के अंदर गिर पड़ता है, वहां पर घोड़ा को छोड़कर कुमार वृक्ष को पकड़ लेता है। कर्म के वश से वहां से बचकर निकलता है। वहां पर कोई मनुष्य नहीं दिखाई देता है। भूख और प्यास से उसके अंग सूखे (दुबले-पतले) हो जाते हैं। कैसे प्राप्त करूं? जहां सज्जनों

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

कहि हरिउल णिय कीलाइ रत्त कहि संवर रोज्झइ णियर पत्त।
कहि वरहिण सद्दु करंति महुरु तहि काणणि भुल्लउ भमइ कुमरु।
वरमग्गु ण पावइ वप्प केम[6] भववणि अण्णाणिउ जीउ जेम।
बंधव पियजणणि विउयखीणु हिंडंतउ चरणहिं[7] मग्गि रीणु।
मुच्छाविउ धाहावंतु केम णिद्दइं भुत्तउ मोहंधु जेम।
पुणु उट्ठिउ[8] णयण धरंतु[9] वारि[10] जिणु जिणु सुमरंतउ पावहारि।
अमुणंतु मग्गु [11]वणि सरइ जाम अत्थायलि पत्तउ भाणु ताम।

घत्ता– चउ पहरहि भिण्णउ, अंगु विछिण्णउ, णं रणिसूरू[12] वरत्तउ।
जो तेउ चिराणउ, मंद पराणउ, पुणु अत्थ वणहि पत्तउ।।२०।।

21

मारणु वि भयावणु रउ कुणंतु पुणु पंचाणणु पत्तउ तुरंतु।
लल–ललइ जीहदाढाकरालु लंगूल दीह णिरु हिंसयालु।
कूरउ वि दुट्ठ णं पलयकालु सो पिक्खिवि[1] संकिउ रायबालु।
तणु थरहरंतु जीविय भएण वसुमइरुह मरुयइ [2]चडिउ तेण।
हाहा विहि कवण अवत्थ दिण्ण कह णयरु महारउ वर रवण्ण।
पिक्खहु पिक्खहु[3] कम्महं विवाउ को ण मुणइ भाविय तणउ भाउ।
चिंतवइ अण्णु[4] संभवइ अण्णु मोहंधु ण याणइ पावपुण्णु।
आयरइ पाउ महु होउ सुक्खु[5] णरु ण मुणइ भावि–भविस्सु[6] दुक्खु।
विहि मुक्क भवित्ती[7] जणण दूरि कहं[8] जुवरायत्तउ लच्छिभूरि।
कह वरकोमलतणु सुललियाउ[9] मायंग गमणि महु अवलियाउ।
कह वंधव सुय ण विउउ पत्तु कह छुह कवलिय सउहलय चत्तु[10]।
पल्लंक परमउवहाण मुक्कु कीलंतउ णिसि तहि सुह गुरुक्कु।
एवहि णिज्जणि तरु उवरि वासु णिसिसमउ भयावणु इत्थु आसु।
मयराउ पत्त पुण इह पएसि को करइ महारी वण गएसि।
अहवा सप्पुरिसु ण सोउ करमि अरूहरकराइ णियचित्ति धरमि।

6. K, केम्म 7. A,चरणहि 8. K,ट्ठिउ 9. A,धरमु 10. K,वारिं 7.11. A, प्रति में वणि के पूर्व परि शब्द आया है। 12. K, सूर A,N, सूरु

21. 1. A, K, N, पिखिवि 2. K, प्रति में चडिउ के पूर्व य अतिरिक्त है। 3. K,पक्खहु 4. N, अणु 5. K, N, मुक्खु 6. K, भाविस्स 7. A,सवित्ति 8. A, N, कहं 9. K,सुलंलियाउ 10. A, K, N, चत्त

www.vitragvani.com

का संग हो। कहीं सिंह की रौद्र गर्जना होती है, कहीं पर हिरण क्रीड़ा करते हैं, कहीं पर हाथियों का समूह युद्ध कर रहा है, कहीं पर वराह (जंगली सुअर) भिड़ते हैं और वे क्रोध पूर्वक अत्यन्त लड़ते हैं, कहीं सिंह का समूह अपनी क्रीड़ा में लवलीन है, कहीं पर सांभर और नील गायों का समूह प्राप्त करता है, कहीं पर मोर मधुर शब्द एवं नाच कर रहा है। वहां जंगल में कुमार भूला हुआ भ्रमण करता है। वह बेचारा ऐसा श्रेष्ठ-मार्ग नहीं पाता है, जैसे अन्य-अन्य भववन में जीव भूला हुआ भ्रमण करता है। बंधुजन (परिवार) और प्रिय-जननी से वियोग हो गया, मार्ग में भ्रमण करते हुए पैर श्रान्त हो (थकान) गये। दौड़ने वाला (धावक) ऐसे मूर्च्छित हो जाता है, जिस प्रकार मोह में अंधा व्यक्ति निद्रादि का भोग करता है। फिर उठकर जल पर दृष्टि डालता है, पाप को हरण करने वाले जिनेन्द्र देव का स्मरण करता है, वन में मार्ग नहीं जानते हुए चलता जाता है और वहां सूर्य अस्ताचल को प्राप्त करता है।

घत्ता—कुमार रात्रि के चारों पहर को बिताने के लिए अंगों को फैलाता है, मानो रात्रि में सूर्य पतित हुआ हो। जो तेज चिर रहता है, वह भी मंदता को प्राप्त करता है, पुनः यहां वन को पाता है।

21. भयानक जंगल का वर्णन

मारने के लिए भयानक आवाज हो रही है। फिर कुमार तुरन्त ही सिंह को पाता है, वह विकराल दांतों वाला (भक्षण करने के लिए) अपनी जिह्वा को लपलपा रहा था, जिसकी पूंछ बड़ी और निरन्तर हिंसक थी, क्रूरता से युक्त वह दुष्ट मानो प्रलयकाल हो। वह देखकर राजपुत्र (वरांग) शंकित होता है, जीवन के भय से शरीर कांपने लगता है और वह शीघ्र वृक्ष पर चढ़ जाता है। हाय-हाय! विधाता यह कौन-सी अवस्था दी है, किस तरह हमारा नगर रमणीय था। देखो-देखो कर्म का विपाक फल, कोई होने वाले भाव को नहीं जानता है, विचार अन्य का करते हैं और अन्य हो जाता है। मोह में अंधा प्राणी पाप-पुण्य को नहीं जानता है, पाप का आचरण करता है जिससे मुझे सुख हो, मनुष्य भविष्य में होने वाले दुःख को नहीं जानता है। विधि की भवितव्यता ने मुझे पिता से दूर कर दिया, कैसे युवराज पद पर विपुल लक्ष्मी से युक्त था, कैसे सुकुमार शरीर अति मनोहर था, मेरा हाथी पर गमन होता था, यह झूठ नहीं है। कैसे परिजनों ने पुत्र का वियोग प्राप्त किया, कैसे क्षुधा आने पर भोजन करते थे। पलंग एवं श्रेष्ठ उपधान (बिस्तर) पर विश्राम करते थे, रात्रि में श्रेष्ठ-सुख के लिए क्रीड़ा करते थे। परन्तु यहां निर्जन वृक्ष के ऊपर निवास करता हूँ और भयानक रात्रि काल में विश्राम करता हूँ। पुनः इस प्रदेश में मृगराज (सिंह) प्राप्त होता है। मेरी वन में कौन रक्षा करता है अथवा सत्पुरुष शोक नहीं करते हैं एवं अरहंत देव को अपने चित्त में धारण करते हैं। यद्यपि विधि के द्वारा जो रचित है, वही होगा तो भी वह कुमार जिन चरणों

www.vitragvani.com

जिणपय वि ण रक्खइ अवरु[11] कोवि, विहि रइयउ होसइ पुणु वि तोवि।
इय[12] चिंतिवि अणसणु[13] दुविह[14] किद्ध, लिय पंचणमोयारइ पसिद्ध।
पुणु कह व कह व[15] तमुगलिभाणु उवयायलि ठिउ णं परमणाणु।
सरसर वियसिय पयरुह समूह णहयलि धाविय णहयरइ जूह।

घत्ता– वरपालि रवण्णउ[16], तरुयहं छण्णउ[17], सरवरु इक्कु विसालउ।
तहि पत्तउ वारणु, णं गिरिदारणु, रयणुज्जल सामालउ[18]।।२१।।

22

पयंडु वि तुंग भयावणु सद्दु वरंगहो पुण्णु सुणावइ भद्दु[1]।
सुपिक्खिवि सिंधु[2] मयंदउ कुद्धु सुतिक्खणहग्ग[3] पलासण लुद्धु[4]।
पुणो विज्झडप्पय मिल्लइ जाम मयारिउ चूरिउ दंतहि ताम[5]।
सुपिक्खहु–पिक्खहु धम्मपयाउ गयंदि वियारिउ सावयराउ।
जु धम्महो अग्गलु माणउ होइ वियारि ण सक्कइ सत्तु वि कोइ।
वरंगु वि चिंतइ हउं सकयत्थु करेंदइ फेडिय एह अवत्थु।
अरण्णि वसंत[6] अयंभउ दिट्ठु गइंदि णिवारिउ सिंघ अणिट्ठु।
पमण्णमि एहु करेंदु ण होइ परायउ णिज्जरु पुण्णहं[7] जोइ।
जयम्मि जु दीसइ वत्थरवण्ण सुणंदण णारि विचित्त सुवण्ण।
सुजोव्वणु रुवसुवण्ण सुअंगु सुवंधव गेहु मुणिंदह संगु।
सुचीरु सुभोयणु देसु णरेंदु दिणिंदु धणिंदु सुइंदु पडिंदु।
इयाइ वि सव्व पयत्थह[8] लद्धि सुकित्तहो पावइ अण्णु वि सिद्धि।
वियारिवि एम विहिज्जइ धम्मु जिणिंदहो[9] केरउ अप्पइ सम्मु।

घत्ता– एवहि वय रक्खणु करमि सुलक्खणु वरसमत्तभारु वहमि।
सिवउरि पाविज्जइ कम्म डहिज्जइ अप्प तेययालउ लहमि।।२२।।

इयवरंगचरिय[1] पंडियसिरितेयपालविरइए।मुणिसुविसालकित्ति–सुपसाए[2] वरंगपएसगमणोणामपढमोसंधीसमत्तो।।१।।

–:–

11. K, अवर 12. A, इयं 13. A, K, N, अणुसणु 14. A, दुविहं 15. K, कहव–हव 16. K, N, खणउ 17. K, N, छणउ18. K,सामलउ

22. 1. A,भद्दु 2. K,सिंघु 3. A, K, N,सुतिखणहग्ग 4. A, K, N,लुद्ध 5. K,तम 6. K,वंसत 7. K, पुंणहं 8. K, पयछह A,पयत्थहं 9. A, K, N, जिणिदहो प्रशस्ति–1. K,चरिये 2. K,सुपासाए

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

को अपनाए रखता है।

इस प्रकार चिंतन कर दो बार अनशन किया, प्रसिद्ध णमोकार मंत्र का स्मरण करता है। पुनः किसी तरह अंधकार का नाश होता है और उदयाचल में स्थित सूर्य उदित होता है मानो श्रेष्ठज्ञान (केवलज्ञान) उदित हुआ हो। तालाबों में कमल-समूह विकसित होता है, आकाश में पक्षियों का समूह दौड़ा (उड़ा) करता है।

घत्ता–श्रेष्ठ दिशाएँ रमणीक हैं, वृक्षों से आच्छादित हैं, एक विशाल सरोवर है। वहां एक हाथी प्राप्त किया, मानो वह पर्वत का विदारण करने वाला हो। वह रतन की तरह उज्ज्वल सांवला था।

22. भविष्यवाणी

प्रचंड और ऊँचे भयानक भद्र-शब्द से वरांग के पुण्य को सुनाया जाता है। सिंध प्रदेश में जहां सिंह क्रोध पूर्वक स्वयं के तीक्ष्ण नखों का अग्रभाग मांस के भोजन से लिप्त था। पुनः जहां अपने आप मिले हुए मृगों को सिंह दांतों से चूर कर देता है। धर्म का प्रताप अच्छे से देखो-देखो, गजेन्द्र (श्रेष्ठी हाथी) के द्वारा श्रावकराज कुमार वरांग के बारे में विचार किया जाता है। वह श्रेष्ठ हाथी धर्म के कारण आगे मनुष्य होता है, जिसके विचारों में कोई-न-कोई शत्रु हो सकता है। वरांग भी विचार करता है कि मैं कृतार्थ हूँ, श्रेष्ठ हाथी ने मेरी यह दशा बदल दी। जंगल में रहते हुए आश्चर्य से देखा कि गजेन्द्र ने अनिष्ट सिंह का निवारण कर दिया। वरांग विचार करता है–यह हाथी नहीं हो सकता, यह तो मेरे पुण्य का योग लौटा है।

आगे शब्द गुंजायमान होते हैं–विजयश्री होने पर राजा रमणीय वस्त्र देगा, सुनंदा स्त्री और स्वर्ण की प्राप्ति होगी, सम्यक् यौवनरूप, स्वर्ण, सम्यक् अंग, मुनिराज के साथ सुबंधव मिलेंगे, अच्छे वस्त्र, अच्छा भोजन, देश, राजा, सूर्य, धनवान, धनपति, पवित्रता इत्यादि सभी पदार्थ की प्राप्ति होगी, अन्य भी सुकीर्ति की सिद्धि होगी। इस प्रकार विचार करके धर्म रीति पूर्वक करना चाहिए और जिनेन्द्र देव के लिए सद्बुद्धि पूर्वक अर्पित होना चाहिए।

घत्ता–इस प्रकार व्रतों का पालन करता हूँ, सम्यक् लक्षण से युक्त श्रेष्ठ सम्यक्त्व का पद वहन करता हूँ। कर्म को जलाकर (नष्ट कर) शिवपुरी (मोक्ष) प्राप्त करूंगा, स्वयं तेजपाल भी मोक्ष प्राप्त करेगा।

मुनि विशालकीर्ति (गुरु) की कृपा से पण्डित तेजपाल विरचित इस वरांग चरित में वरांगप्रवेश–नाम की प्रथम संधि समाप्त हुई।।संधि–1।।

www.vitragvani.com

द्वितीय सन्धि

1

सुमइ जिणंदहो णविवि पय सम्मइ विहिय[1] पयासहो।
हरिसुय मग्गणइ णिरत्थकय वलमोहारि विणासहो।।दुवई।।
सो जिण विमलबुद्धि महु अप्पउ, केवलणाणलोयणो।
कव्वसमिद्धि होउ परिपुण्णउ, भव्वणि सवण भोयणो।।छ।।

इत्तहि सुंदरु भू विहरंतउ सहसा सरवरिक्क संपत्तउ।
तहि दिट्ठउ जलु पविमलु केहउ हयमलु णाणवंत मणु जेहउ।
अंगु वि लग्गु रेणु मलु दिट्ठउ सरवर अंतरि झत्ति पइट्ठउ।
कुमरु[2] जाम णिय इच्छइ[3] कीलइ ताम पाउ गहियउ दुह सीलइ।
इक्कहि जलयरेण पावासए मंसासण णिमित्त तणु तासए।
मिल्लावियउ ण मिल्लइ केवहि णरु वंधिउ तिय खुंटइ[4] जेवहि।
तहि कुमारु णियमणि गंजोलिउ हा चिरभवि मइं को जलिवोलिउ।
कम्म विवाउ लोयबलवंतउ सो किं गच्छइ विणु हिअ भुत्तउ।
कम्में दहमुह लक्खणि घायउ पज्जुण्ण होउ व सग्गु परायउ।
कम्में[5] भरहराउ जिणवरसुउ वलवंतउ सुरकरिकरसमभुउ।
सो समरंगणि भुववलि जित्तउ माणभंगु गरुयउ संपत्तउ।
कम्में राउ जसोहर णडियउ[6] तिय मोहें[7] सो दुग्गइ पडियउ।
अण्णु[8] वि सयललोय किय कम्महो फलु अणुहुंजहि धम्माहम्महो[9]।
पढम तुरंगि भमाडिउ काणणि विच्छोयउ वंधव घर माणिणि।
पुणु कूवंध पडिवि णीसरियउ तो पंचाणणि रुंधिवि धरियउ।
पुण्णु इत्थायउ[10] हरि पंचत्तए एवहि होसमि जीविय चत्तए।

घत्ता—बारहं अणुविक्खइं मणि धरिवि जुय विहि णसण पयज्ज किय।
मण—वयण—काय तियसुद्ध विहि पंचणमोयारइ गहिय।।
दुवई—अवलोयवि वरंगु सरअंतरि इक्कहि तिय सपत्तिया।
चिंतिउ णियय चित्ति इहु रक्खमि मरणहो णिय य सत्तिया।।१।।

2

इउ चिंतिवि धम्म पयावएहि उवसग्ग णिवारिउ देविएहि।
चरणुल्लउ जलयरि मुक्कु जाम सरतीरि परायउ कुमरु ताम।

1. 1. K, चिहि A, चिहिय 2. K,कुमारु 3. A, K,इंछइ 4. K, चुंटइ 5. K, कम्मे 6. A,N, णडियऊ 7.K,मोंहें 8. A 8. K, अंण्ण 9. A, धम्महम्महो 10. K, इछायउ

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

द्वितीय सन्धि

1. कुमार का जंगल में भ्रमण

शुभ बुद्धि से युक्त वरांग कुमार सम्यक्त्व पद से निर्मित जिनका प्रकाश है, जिन्होंने अपने बल से मोह रूपी शत्रु का विनाश किया है, ऐसे जिनेन्द्र देव को नमस्कार करके।।दुवई।।

वह केवलज्ञान लोचन जिनदेव मुझे निर्मल बुद्धि अर्पित करे, जिससे काव्य की परिपूर्ण समृद्धि होवे और भव्य उसका श्रवण कर आहारदान करें।।छप्पय।।

इस प्रकार से वरांग पृथ्वी पर विहार करते हुए अचानक एक तालाब पर पहुंचता है। वहां जल इस तरह स्वच्छ (निर्मल) दिखता है, जैसे ज्ञानवान (ज्ञानी) का मन दोषों से रहित होता है। कुमार के अंगों में मैल और धूल लगी हुई दिखती है। जैसे ही कुमार की जल क्रीड़ा करने की इच्छा होती है, वैसे ही सरोवर के अंदर शीघ्र ही प्रविष्ट होता है। उसमें कुमार शील के दुःख को पाता है। एक वर्षा ऋतु का कीड़ा मांस के निमित्त उसके शरीर को त्रासित करता है। खोजने पर भी वह नहीं मिलता है। जैसे मनुष्य स्त्री के बंधन (खूंटा) से बंधा हुआ है। वहां कुमार अपने मन में व्याकुल होता है। हाय मेरा चिरकाल व्यतीत हुआ, ऐसा कोई जल में बोलता है। कर्मविपाक (फल) संसार में बलवान है, उसको भोगे बिना क्या कोई जाता है?

कर्म के कारण दशानन (रावण) लक्ष्मण के द्वारा मारा गया, प्रद्युम्न कुमार स्वर्ग से लौटा। कर्म के कारण चक्रवर्ती भरत जिनेन्द्रदेव (आदिनाथ) के पुत्र हुए, ऐरावत हाथी की सूंड के समान भुजाओं के बल से युद्ध भूमि में भुजबलियों (बलवान) को जीता और उन श्रेष्ठ का मानभंग भी हुआ। कर्म के कारण राजा यशोधर व्याकुल हुए और स्त्री के मोह से वह दुर्गति में पड़े। अन्यत्र भी लोक में धर्म-अधर्म कर्म को किया और उनके फल का भोग किया।

प्रथम मित्र, परिजन, घर एवं मानयुक्त स्त्री से वियोग होते हुए, घोड़ा जंगल में भ्रमण करते हुए, फिर एक कुएं में गिर पड़ता है और (जैसे-तैसे) बाहर निकलता है। तब सिंह मिलता है, फिर यहां सिंह मृत्यु के रूप में आया है, यहीं पर जीवन का त्याग होगा।

घत्ता–कुमार वरांग ने बारह अनुप्रेक्षाओं को मन में धारण करके भाग्य के योग अनुसार मरण के लिए प्रतिज्ञा की। मन, वचन, काय की शुद्धिपूर्वक, रीतिपूर्वक पंच नमस्कार मंत्र का स्मरण करता है।

दुवई–कुमार वरांग तालाब के अंदर धनुष–बाण सहित एक स्त्री को देखकर अपने मन में विचार करता है कि मैं अपनी शक्ति से (स्वयं की) रक्षा करूंगा।

www.vitragvani.com

पुणु तियसपत्ति तहि विहिउ रम्मु वरतियहि रूउ किउ चक्ख[1] गम्मु।
तहो धम्मपरिक्ख वियार णत्थि मयणुक्को वणि णं णाय इत्थि।
अइ णिविड पयोहरकठिणतुंग णं मणसिय कीडण गिरिउयंग।
विंवाहर सण्णिह[2] दीहणयण मुणिवर मणमोहणि चारुवयण।
वरकीरणास पयणेउराइ[3] रणकण कुणंति पुणु घुग्घुराइ।
सालंकारी णं सुकय गाह विरहीयण हियइ देहदाह[4]।
सा पिक्खिय कुमरें चारुगत्तु बुज्झिय[5] किं सुंदरि इत्थु पत्तु।
को णयरु तुहारउ कवणु ताउ भणु-भणु वयंसि महु साणु राउ।
ता वुल्लिय कवडें हरिस जुत्ति हउं खयर णराहिव तणिय पुत्ति।
अवराहें विणु ताएण चत्त वणि णिवसमि संपइ इत्थ पत्त।
एवहि सुंदरु महु ताहि-ताहि हउं खज्जमि गरुयइ मयण वाहि।
हउं तुह कामिणी तुह[6] मज्झु कंतु रइसुहु लहु विलसहि मुत्तिसंतु।
जं तुह मंगहि तं हउं वि देमि वरगाढालिंगणु मज्झु लेमि।
तुह पिक्खिवि हउं णेहेण बद्ध जिह आसिसु लोयण जय सणिद्ध।
म चिरावहि लहु णियभज्ज करहि संखेवहि मंडउ रइवि वरहि।

घत्ता-तं णिसुणिवि जंपइ पवर भडुं[7] पइं जंपियउ अजुत्तउ।
सप्पुरिसह[8] एहु ण कज्ज वरु रिसिणा एउ पउत्तउ।।दुवई।।
दुवई- मइ सावय[9]वयाइ, वरगहियइ,चिरू पणवेवि गणहरो।
वरदत्तहो पसिद्धु मुणिसामिउ हय पज्जु ण दुद्धरो।।२।।

3

ते वयणउ मुक्कमि पाणअंति वयभंगें णरु दुग्गइ पडंति।
इह भवि पररमणी रमणराउ णउ करमि वप्प[1] मण-वयण-काउ।
जे जड परवणिया अहिलसंति ते पाविय णरयावणि वसंति।
परमुद्ध पउक्खंडू समाणु अहवा किं पावह लइ पमाणु।
जो रसइ तासु पाणहरु होइ तो पुणु कामंधु ण मुणइ कोइ।
जइ अंगु डहिज्जइ वरहुयासु अहवा गलि धरियइ णाइ पासु।
तो वर खलु इह भवि होइ दुक्खु लंपडु भवि-भवि णउ लहइ सुक्खु।
अहवा पइ[2] उत्तउ एहु वयणु जणु ण मुणइ किज्जइ पाणिगहणु।
तो तक्कर दोसु वि मुज्झु[3] होइ धिक्कारउ पावमि सयललोइ।

2. 1. A,K,N, चख 2. N, सणिह 3. K, राई 4. K,देइदाह 5. A, वुज्झिय 6. K, तुहं 7. K, भडु 8.A,K, साप्पुरिसह-यह शब्द व्याकरण की दृष्ठि से गलत है 9. K, सावद्य

3. 1. A,K, चप्प 2.A,N, पइं 3. A,K, मुब्भु

www.vitragvani.com

2. वनस्त्री की कामेच्छा

यह चिंतन कर धर्म के प्रताप से देवी के द्वारा उपसर्ग (विपत्ति) का निवारण किया जाता है। वहां तालाब के किनारे कुमार पहुंचता है, जो जल-जन्तु विशेष से युक्त था। फिर वह स्त्री पत्नीरूप में रमण की इच्छा करती है। उसने स्त्रीरूप में आस्वादन करने के लिए गमन किया। वहां धर्म परीक्षा का विचार नहीं है। वन में काम क्रीड़ा के लिए मानो वह नाग स्त्री हो, उसके उन्नत स्तन अत्यधिक प्रिय और कठिन थे मानो काम क्रीड़ा के लिए पर्वत की तरह उतंग हो, बिम्ब के समान अधर (ओष्ठ) एवं दीर्घ नयनों वाली (दीर्घनेत्रा), उसका सुन्दर शरीर तो श्रेष्ठ मुनिराज का भी मन मोह सकता है। पैरों की पायल से भू-भाग का अभाव किया है और फिर वह खन-खन की आवाज कर रही है। वह अलंकार सहित ऐसी प्रतीत होती है मानो उसके पुण्य की गाथा हो। वह विरहीजन के हृदय एवं शरीर में दाह (ताप) उत्पन्न करती है। कुमार के द्वारा उसके सुन्दर शरीर को देखा गया। वह पूछता है–हे सुन्दरी! यहां पर कैसे पहुंची? तुम्हारा कौन-सा नगर है? तुम्हारे कौन पिता हैं? हे सखी! मुझे अनुराग सहित कहो। वह कपट और हर्ष से बोलती है–मैं गगनचर नराधिपति की पुत्री हूँ, मुझे अपराध के बिना पिता के द्वारा त्याग किया गया है, वन में रहती हूँ और अभी यहां पहुंची हूँ। हे सुन्दर! मुझे तारो। मैं श्रेष्ठ काम व्याधि (काम पीड़ा) से खीझ गई हूँ। मैं तुम्हारी कामिनी (पत्नी) हूँ और तुम मेरे कंत (पति) हो। रति-सुख में प्रमोद करने से शीघ्र मुक्ति होती है, जो तुम मांगोगे वह मैं दूंगी, अतिप्रिय आलिंगन में मुझे ले लो। तुम्हें देखकर मैं प्रेम में बंध गई हूँ। जैसे आशा में मेरे नेत्रों को स्नेहपूर्ण जय प्राप्त हो गई हो। देर मत करो, शीघ्र ही अपनी पत्नी रूप में स्वीकृत करो और थोड़ा रति क्रीड़ा में रत हो जाओ।

घुत्तई–उसको सुनकर श्रेष्ठ-वीर कुमार कहता है–तुम अनुचित कहा करती हो। सज्जन पुरुष यह कार्य नहीं करते हैं क्योंकि श्रेष्ठ मुनि ने पूर्व में कहा है।

घत्ता–मेरे द्वारा प्रसिद्ध श्रेष्ठ मुनिराज गणधर वरदत्त से श्रावक के व्रतों को ग्रहण किया गया है, दुर्धर-सुभट प्रद्युम्न की तरह कर्मों का नाश करूंगा।

3. वरांग कुमार के द्वारा स्वदार संतोष व्रत की रक्षा

उनके वचन अनुसार मैंने प्राणों के अंत होने तक परस्त्री गमन का त्याग किया है। व्रत भंग करने से मनुष्य दुर्गति में पड़ता है, इस प्रकार मैं परस्त्री के प्रति रमण मन, वचन और काय से नहीं करता हूँ। जो मूर्ख परस्त्री में आसक्त होते हैं वे नरकगति के निवास को प्राप्त करते हैं।

www.vitragvani.com

अह जंपिउ इय महु रक्खि–रक्खि संतोस अमिउ मणि भक्खि–भक्खि।
इय सुणिवि पवुल्लिय साहु–साहु सावय वयउ वरि णिवद्धग्गहु[4]।
जारिसु हुंतउ णियअंगरूव तारिसु पयडिवियउ वि सुखहूव।
हउं णिज्जर तिय वररुवधारि उवसग्ग णिवारिउ तुज्झ वारि।
पुणु पइं सुपरिक्खहो कारणेण मणुय णियरुव किउ तक्खणेण।
जो तुज्झ वि गुरु वरदत्तदेव सो मज्झु वि गुरु कय तियससेव।
मइ[5] पुणु तहो वयणइ[6] गहिउ धम्मु पइ[7] सुयण कयत्थउ कियउ जम्मु।

घत्ता–परिगलियइ कइवय[8] वासरइ मणवंछिउ सुहु होसइ।
पुणु वंधव सुयण समागमणु तहो पुण्णे पावेंसइ।।

दुवई– इय पभणेवि देवि अद्दंसण जाइय धम्मरत्तउ[9]।
सुंदरु विहि वसेण पुणु चल्लिउ जिणपयकमल भत्तउ।।३।।[10]

4

पुणु काणणि विहरिउ कुमरु जाम अग्गइ संपत्त किराय ताम।
तह गहिउ कुमरु अइकूरबुद्धि कक्कस वयणहि ताडिउ सुबुद्धि।
ता चिंतिउ तेण वरंगएण हउं णिवसुउ हीण किरायएण।
ण करिज्जइ मित्तिय वइरभाउ ण चविज्जइ करुणा वयण राउ।
अण्णा णियणिद्दय भावजुत्त ण मुणहि बल[1]पोरिस महु पहुत्त।
संगरु ण करिज्जइ इत्थु वाइ वहु वणयर अह कुलहीण जाइ।
जहि धरिउ कूवअंतरि[2] पडंतु अहवा रक्खिउ काणणि सरंतु।
अह रक्खिउ हरि हिउ वद्धएण जिणु सुमरंतउ तरु–उवरि जेण।
पुणु जलि वुट्टंतउ जेहि धरिउ सो पुणु रक्खेसइ पुव्वच्चरिउ।
वणयरगण वेढिउ कुमर केम कम्महं संसारिउ जीव जेम।
अह दुग्घरघर चारइ गिहत्थु सुय–तिय–वंधव मोहणिय वत्थु।
पुणु मुट्ठि पहारहि[3] हणिउ तेहि बंधेवि णिउ कारागारि एहि।
विहि कवण अवच्छहि मज्झि घित्तु णिवधम्मसेण धत्तिवइ पुत्तु।
कहि रायलच्छि किह इह अवत्थ कुच्छिय धरत्ति कुच्छियइ वत्थ।
अइपूयदुयंध कलेवराइ सवरेहि वियारिय मयउ लाइ।
दुक्कियउ कम्मु जित्तउ णिवद्धु भुंजिज्जइ तित्तउ अइसणिद्धु।

4. K, N, वद्धग्गाहु 5. A, K, N, मइं 6. A, K, N, वयणइं 7. A, K, N, पइ 8. N, कय⁰
9. A, K, N, रतउ 10. A, K, कडवक संख्या नही है।

4. 1. K, चल 2. K, N, कूवं⁰ 3. K, पहरहि

www.vitragvani.com

परस्त्री शहद में लपेटी तलवार के समान है अथवा जो पापों के परिमाण को लाती है एवं जो चखता है उसके प्राणों का हनन होता है तो भी कामांध पुरुष नहीं मानता है। यदि अंगों को अग्नि में जला दिया जाये अथवा अपनी गर्दन में स्वयं ही बंधन धारण किया करता है और तब निश्चित ही इस भव में दुःख को प्राप्त करता है। लंपट (व्यभिचारी) भव-भव में सुख प्राप्त नहीं करता है अथवा उक्त वचन जो मैंने कहे, व्यक्ति नहीं जानता है। अतः पाणिग्रहण कीजिए तो तस्कर कर्म (चौरकर्म) से भी मूर्च्छित होता हूँ। सकल लोक में धिक्कारा जाऊँगा। इस प्रकार कहते हुए मेरी रक्षा करो, रक्षा करो और संतोष अमृत मन में धारण करो। यह सुनकर वह स्त्री उत्तम-उत्तम कहती है। श्रावक के व्रत को निबद्ध होकर ग्रहण करना श्रेयस्कर है। जो अपने अंगरूप व्रत करता है, उसे सुख भी प्रगट होता है। मैं देव स्त्री-रूप धारण करके तुम्हारे उपसर्ग निवारण के लिए प्रगट हुआ हूँ और तुम्हारी सम्यक् परीक्षा हेतु अपने रूप को तत्क्षण ही मनुष्य रूप धारण किया। जैसे तुम्हारे गुरु वरदत्तदेव हैं, वैसे ही मेरे भी गुरु–त्रिदश देव है, मैंने उनके धर्म वचनों को ग्रहण किया है। हे सुजन! तुमने अपने जन्म को कृतार्थ किया है।

घत्ता–वह (देव) कहता है–अनेक दिन मनवांछित सुखपूर्वक व्यतीत होंगे। फिर मित्रगण एवं स्वजन (परिजन) का समागम पुण्य से प्राप्त करोगे।

दुवई–इस प्रकार कहकर देवी धर्म में रत अदृश्य हो जाती है। वरांग (सुन्दर) विधि (भाग्य) के वश पुनः जिनेन्द्र देव के चरणकमल की भक्ति करता है।

4. भीलों द्वारा कुमार को प्रताड़ना

फिर (पश्चात्) जंगल में जहां कुमार विचरण करता है वहां पर भील मिलते हैं। वे अति निर्दयतापूर्वक कुमार को पकड़ लेते हैं, वे वरांग को कर्कश वचनों से ताड़ित करते है। तब वरांगकुमार के द्वारा विचार किया गया कि मैं नृपपुत्र हूँ और मुझे हीन भील जाति से मित्रता एवं वैरभाव नहीं करना चाहिए, न ही करुणापूर्ण राग-वचन को कहना चाहिए। अन्य वे निर्दयता के भाव से युक्त है। क्या मेरे बल, पौरुष और प्रभुत्व को नहीं जानते हो, यह बोलकर संग्राम नहीं करना चाहिए। वनचर बहुत हैं अथवा हीनकुल में उत्पन्न हुए हैं। जैसे ही कुमार ने उक्त बात मन में धारण की और कुएँ के अंदर गिर पड़ा अथवा वन में रक्षा के लिए निकल जाता है।

हे भगवान्! मेरे हितस्वरूप इन दुखरूप बंधियों से रक्षा कीजिए। वृक्ष के ऊपर बैठा हुआ, वह (वरांग) जिनदेव को स्मरण करता है। जैसे जल में प्रगट होकर देव ने रक्षा की थी है वैसे

www.vitragvani.com

जो अक्खइ सुहु दुहु अण्णु देइ सो मूढउ भाविय णउ मुणेइ।
सुहु दुहु दिण्णउ भण्णियइ[4] चारु सो अक्खिज्जइ सहु[5] लोययारु।

घत्ता–इक्कहि दिणि भिल्लणराहिवइ, जणि कुसुंभ अहिहाणउ।
णियदेवय पुज्ज पसण्णमणु, चल्लिउ वरहं राणउ।
दुवई–बंधिवि लयउ तेण सो सुंदरु, अमुणिय धम्मदयवरो।
देविहि पुरइ[6] एहु घाएसमि, इयं[7] भणिऊण[8] वणयरो।।४।।

5

इय मरण वयण णिसुणिवि कुमारु मणि चिंतिउ भवकाणणु अपारु।
हउं भमिउ आसि बहुजीव जोणि जिणधम्म विहीणउ पावखोणी।
जरमरणइं जम्म अवत्थ दिट्ठ गहि–गहि मुक्किय मइ तणु गरिट्ठ।
एवहि पुणु पत्तउ अंतयालु[1] मणि धरमि णाणि जिणवरदयालु।
मइ चिरभवि किय दाणंतराय कहु तणिय अवर भोयंतराय।
सो चिर दुक्किउ इह उवइआउ तं सहमि वप्पकोमलसहाउ।
इउ[2] चेतंतह ते सवर सव्व देविहि मंदिर आविवि सगव्व[3]।
बलि अप्पहि कुमरवरंगु जाम वरअण्णु अयंभउ हुयउ ताम।
जो सवर[4]णरेंदहु तणउ पुत्तु आरण्णि भमंतह कय अजुत्तु।
सो खद्धउ उरयइ विह वसेण महि णिवडिवि मुत्था गयउ।
सो आणिवि तायइ पासि मुक्क तुह सुय संपत्तउ दुह गुरुक्क।
विसहरि खद्धउ इहु वणि भमंतु जीवइ जइ दिज्जइ गरुडमंतु।
इय वयणइ दरसिवि तणयचिण्ह मुत्थाविउ वणयरु[5] लेसकिण्ह।
हा हायारउ किउ वणयरेहि सीयल जलि सित्तउ सामि[6] तेहि।
पुणु उट्ठिउ सवराहिउ रुयंत हा पुत्त पुत्त आयउ कयंत[7]।

घत्ता– इय करुणायरसर मुणिवि, भणइ हरमि गरलुल्लउ।
हउं मुणमि मंतु सुहु संभवइ, कय उवयार अमुल्लउ।
दुवई– इय वयणइ सुणेवि सवराहिउ, झत्ति पयेहि लग्गउ।
रक्खहि पुत्तु कालि कवलंतउ महु सो रणि अब्भग्गउ।।5।।

4. K, भणियइ 5. K, सहू 6. A, पुरइं 7. K,N, इय 8. N,⁰कण

5. 1. K,अंतयलु 2. K,वउ 3. A,सगघ 4. N,सविर 5. A, वणंयरू 6. K,सामे 7. N, कयंतु

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

वह पूर्ववत् रक्षा करेगा। वनवासी भीलसमूह कुमार को इस प्रकार घेर लेता है, जिस प्रकार संसारी-जीव कर्मों से घिरा रहता है, दोषयुक्त घर में आचरित होता है, पुत्र, पत्नी और परिवारजन मोहनीय कर्म की वस्तु है। फिर वे मुष्टी प्रहार से कुमार के लिए मारते हैं एवं बांधकर अपने कारागार (जेल) में डाल देते हैं। कुमार विचार करता है–विधाता ने मुझे कौन-सी अवस्था के मध्य में डाला है। नृप धर्मसेन और गुणदेवी का पुत्र, कहां राजलक्ष्मी, कहां यह अवस्था, निंदित (कुत्सित) धरती है एवं कुत्सित (खराब) पदार्थ है। अत्यन्त बदबूदार एवं दुर्गंध युक्त मृत शरीर (कलेवर) पड़े हुए हैं। सवर (भील) के द्वारा फाड़ा (विदीर्ण) हुआ मृग लाया गया है, वे दुष्कृत पाप कर्म में निबद्ध होकर जीते हैं, अत्यन्त आसक्ति (स्नेहपूर्ण) से उनका भोग किया जाता है। जो स्वयं को सुख चाहता है और दूसरों को दुःख देता है, वह मूर्ख भविष्य में होने वाले दुःखों को नहीं जानता है। यह सुन्दर एवं लोक का सार कहा गया है।

घत्ता–एक दिन भीलों का राजा जिसका नाम कुशुंभ है। अपने देव की पूजा करने के लिए वह श्रेष्ठ राजा प्रसन्न मन से चलता है।

दुवई–वे (भील) वरांग को बाँधकर लाये और वे श्रेष्ठ दया धर्म से अनजान हैं। देवी के सम्मुख इसकी बलि चढ़ायेंगे एवं देवी को तृप्त करेंगे, इस प्रकार वनचर कहते हैं।

5. कुमार वरांग का बलि चढ़ने के सम्मुख उपस्थित होना

यह मरण के वचन सुनकर कुमार मन में भववन कि अनंतता का चिंतन करता है। मैं पूर्वकाल में अनेक पर्यायों में जिनधर्म से विहीन पापयुक्त होकर पृथ्वी पर भ्रमण करता रहा। मैंने बुढ़ापा, मरण और जन्म की अवस्था देखी, मैंने श्रेष्ठ तन को ग्रहण किया और पुनः मुक्त हुआ। इस प्रकार मैं पुनः अंतकाल प्राप्त कर रहा हूँ, (अतः) मन में दयालु जिनेन्द्रदेव के ज्ञान को धारण करता हूँ। मैंने पूर्वभव में दानांतराय कर्म किया और कहीं भोगांतराय कर्म किया है। उसका चिर-दुष्कृत उदय आया है, उसको कोमल स्वभाव से सहन करूंगा, कुमार इस प्रकार चिंतन करता है। वहां वे सभी भील देवी के मंदिर में अभिमान सहित आते हैं, जैसे ही वे वहां कहते हैं–कुमार वरांग की बलि अर्पित करो, तभी वहां कुमार वरांग को अचम्भा होता है। जो भिल्लराज का पुत्र, जंगल में भ्रमण करते हुए अनुपयुक्त हो जाता है, उसे विधि के वश सर्प द्वारा भक्षित किया जाता है, भूमि पर पड़ते हुए मूर्च्छित हो जाता है। उसने (पिता) आज्ञा दी, कुमार को बंधन से मुक्त करो। तुम्हारे पुत्र ने अत्यंत दुःख को प्राप्त किया है, इसे विषधर ने वन में भ्रमण करते हुए खाया है। कोई इसे विद्याविशेष या मंत्र से जीवन दो। इस प्रकार मूर्च्छित एवं पुत्र की

www.vitragvani.com

6

सिरीसुवण्णु जं जं तुहु मग्गमि तं तं तुज्झु सयलु हउं अप्पमि।
इय गिराइ अइकरुणइ भरियउ दुहु अप्पणउ[1] सव्वु वीसरियउ।
पावण जलहि सणाणु[2] करेप्पिणु धोयं[3] वरइ अंगि धारेप्पिणु[4]।
पंचणमोयारइ[5] जलि सित्तउ[6] णं अहिगरलु हुयासणि घित्तउ।
लहि विसचेयणु सवर समुट्ठिउ वंधवपियजणणिहि कय तुट्ठिउ।
तहि अवसरि किरायगणु जंपइ पइं सरिसउ अवरु वि को संपइ।
पुणु वि कुसुंभुराउ पयलग्गउ अवियाणिय दयधम्मह मग्गउ।
मणि–सुवण्ण–कुंदुज्जल–वत्थइ मिल्लिवि कुमरहो पुरइ पयत्थइ।
लइ लइ सुंदर जं तुह रुच्चइ तं णिसुणिवि णिवणंदणु वुच्चइ।
धनदाणु वि धण लुद्धउ इंछइ पयणिहि किं घणयागमु वंछइ।
अहवा धणु लेप्पिणु[7] कहि रक्खमि वणिहं ठमि सुमहुरफल भक्खमि।
दव्वु ण गिण्हवि दव्वह[8] वहु रिउ इय भणेवि सुंदरु पुणु विहरिउ।
पहि जं तह दिणयरु अत्थमियउ भूरुह चडिवि रयणि तहि गमियउ।
सुह दुहु चिंतिउ तेण चिराणउ उयए सूरि संचल्लिउ राणउ।
जंतु जंतु संपत्तउ[9] तित्तहि वणिवरगणु आवासिउ जित्तहि।
वणि वरेहि दरसिवि सो गहियउ को तुहु[10] कवण देस आगइयउ।
अह केणवि महिवइ पेसिउ चरु सुणिवि एम सो णउ अप्पइ सरु।
तो कडुयक्खरेहि पुणु ताडिउ खलवणिवर चरेहि पुणु पीडिउ।
पुणु मिलेवि करमुट्ठीहि घायउ तो विण वुल्लइ पहुतणु जायउ।
सुंदरु संतु भणिवि पुणु रक्खिउ परसुप्पर सयलहि पुणु अक्खिउ।
गहिवि लेहु वणिवइ दरसावमि इहु महंतु को णउ आयावमि।

घत्ता– कुमरवरंगु लएवि, सायर विद्धि[11] पहाणउ।
सयलहि अप्पिउ तासु पिक्खहि सुंदरमाणउ।।

दुवई– अवलोएवि सेठि पुणु चिंतइ महु याणंदयारउ।
रक्खमि इत्थु देमि वरभोयणु, वरतणु पुरिससारउ।।६।।

6. 1. K, अप्पणउं 2. K, सण्णाण्णु 3. A, K, घोयं 4. A, N, धारेपिणु 5. K, पंचणमोयारइं 6. N, सितउ 7. A, K, N, लेपिणु 8. A, K, इव्वह 9. K, N, संपत्तउं 10. K, तुहुं 11. K, विद्धिं, A, N, विहि

काली काया रूप चिह्न देखकर वनचर हाहाकार किया करता है। स्वामी (भिल्लराज) शीतल जल उसके ऊपर सींचता है। फिर भिल्लराज विलाप करते हुए उठता है और हाय पुत्र, पुत्र, वीर योद्धा आ जाओ।

घत्ता—इस प्रकार करुणा के सरोवर को जानकर, विष को हरने के लिए कहता है। कुमार कहता है—मैं मंत्र जानता हूँ, जिससे सुख संभव होता है, अमूल्य उपकार किया करता हूँ।

दुवई—यह वचन सुनकर भिल्लराज शीघ्र ही कुमार के पैरों में पड़ता है। मैं रण में अभागा हूँ। मेरे पुत्र की काल के ग्रास से रक्षा कीजिए।

6. भिल्लराज की पीड़ा प्रशमन

श्री (लक्ष्मी) एवं सुवर्ण जो-जो तुम मांगते हो वह-वह सब कुछ मैं अर्पित करूंगा। इस प्रकार अति करुणा से उसकी वाणी भर जाती है। जब व्यक्ति को अपना दुःख होता है तो सब कुछ भूल जाता है। पवित्र जल से स्नान करके, श्रेष्ठ अंगों की पवित्रता को धारण करके, पंचणमोकार मंत्र पूर्वक जल का सिंचन करता है, मानो सर्प का विष अग्नि में फेंक दिया गया। भील कुमार विषरहित होकर उठता है और अपने बंधुजन एवं प्रियजननी (माता) को संतुष्ट किया करता है। उस अवसर पर भीलसमूह कहता है कि तुम्हारे समान अन्य कोई इस समय नहीं है। फिर भिल्लराज-कुशुंभ कुमार के चरणों में पड़ता है एवं क्षमाधर्म को मांगता है। वे मणि, स्वर्ण, कुंद के पुष्प और वस्त्रादि पदार्थ कुमार के सामने रखते हैं और कहते हैं—हे सुन्दर! जो तुम्हें रुचता हो वह ले लो। उसको सुनकर नृपनंदन (वरांग) कहता है—धन एवं दान की लोभी इच्छा करता है। क्या आकाश बादल आगमन की वांछा करता है अथवा धन लेकर कहाँ रखूँगा, वन में निवास करता हूँ एवं सुमधुर फल खाता हूँ। द्रव्य (धन) ग्रहण नहीं करता हूँ, क्योंकि द्रव्य के बहुत शत्रु होते हैं। इस प्रकार कह करके फिर सुन्दर (कुमार) विहार करता है। जब वहां रास्ते में सूर्य अस्त हो जाता है तो वृक्ष पर चढ़कर रात्रि व्यतीत करता है। कुमार पुराने सुख-दुःख का चिन्तन करता है। सूर्य के उदय होने पर वह पुनः चलता है। चलते-चलते वहां पर पहुंचता है, जहां पर वणिक समूह रहता था। वणिक श्रेष्ठी ने देखकर उसे ग्रहण किया और पूछता है, तुम कौन हो? कौनसे देश से आये हो अथवा किसी महीपति ने दूत रूप में भेजा है। इस तरह सुनकर उसने कुछ नहीं कहा। तो फिर उन्होंने कटुक वचनों से ताड़ित किया। दुष्ट-वणिक फिर पीड़ित करते हुए हाथ-मुष्टि से प्रहार करते हैं, तो भी बिना बोले ही प्रभुत्व को ज्ञात कराता है। सुन्दर (वरांग) शान्त होकर रक्षा के लिए कहता है। फिर वे सभी परस्पर बात करते हैं और उसे लेकर वणिपति को दिखाते हैं। इस महापुरुष को कोई भी आतापित नहीं करेगा।

www.vitragvani.com

7

इम[1] चेंतिऊण[2] पुणो रायउत्तो सुवायाइ आसासिउ धम्मसत्तो ।
तुमं रुवदेउव्व मुत्ती पसण्णो तुमं सव्वलोयाण दिट्ठी रवण्णो।
तुमं विण्हु पुत्तुव्व सोहावहारो तुमं देवणरपियहं चित्तावहारो।
इमं करिवि सुपसंस तहि वार–वारं पुणो दिण्णु आहारखिरसपयारं।
समाणेवि सो उवहिविद्धी पउत्तो तुमं एहि महु सत्थि आणंदयत्तो।
सुतत्थाउ संचलिउ वक्खह कहंतो जिणाचक्क बलवासुदेवा महंतो ।
पुणो जाव मग्गेण गीयाण रत्तो सकूरो किरायागणो ताव पत्तो।
सुसंखाए छद्दु ण सहस्साइ[3] कुद्धा[4] सुणाणाउ हा हत्थि धारेवि मुद्धा।
हणु–हणु करंतावि सुणिइट्ठ गीया तहो सिट्ठिवर दूव मणि भयहु भीया[5]।
आएवि वज्जरिउ सुणि सत्थराया तुमं उवरि वणयर समाया–समाया।
सुणेऊण तह वयणु सज्जियउ वरसत्थु लहु हणहु ते दुट्ठ मा देहु णियअत्थु।
मुणिऊण वणिविंदु भडु चल्लिउ जाम पहुत्ता किरायासमीव वस्स तहो ताम।
सकोहा सलोहा मणे जुद्ध कामा पपिच्छंत भइया वणाअंग सामा।
वलावेवि लग्गा रणे जे वि धीरा पपिच्छेवि सत्थाइ लग्गा अधीरा।
पुणो वणिवरहं सत्थु कलिउसि जुद्धे किरायास सत्थेहिं किं किद्धु लुद्धे।
पमुत्तूण वाणावली भिण्णयंगा वणीसावणा मुणिवि ते सव्व भग्गा।
सुहाहारउ जायउ सव्व सत्थे किराट्टायणा कंपिया जीव अत्थे।

घत्ता–णिय भडभग्गं तयहं रणे, उवहिविद्धि कंपियउ किहं।
अइ पवणहि पेरिउ पत्तगणु फग्गुणि कंपइ वप्प जिहं।।
दुवई– तामा लोइ सिट्ठि णिवणंदणु वुच्चइ गिरिव धीरउ।
मा भीहहि वणीसम इत्थंतइ तुह वरधम्म धीरउ।। ७ ।।

8

इय पयंपि रणसम्मुह चल्लिउ दिस गयंदुणावइ उ हल्लिउ।
कडियलि वंधिउ तोणा जुयालउ[1] असिवरु गिण्हिवि करि जलविमलउ।
गहिउ सरासणु णंदावत्तउ लयउ कुंत कय जीविय चत्तउ।
जिम पंचाणणु उवरि कुरंगहो तिम सम्मुह धायउ वि वरंगहो।
वणयरगण दव्वीयर खगवइ कम्मवलइ भंजण णं जिणवइ।
सरधोरणि सम्मुह अगणंतउ जाइवि कुमरु रणंगणि पत्तउ।

6. 1. K, ज्जुयालउ **7.** 1. A,N, इमं 2. A, K, N, चेंतुऊणं 3. K, सहस्साई 4. N, कुद्ध 5. N,सीया

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

घत्ता–कुमार वरांग को लेकर सभी ने प्रधान वणिकपति सागरबुद्धि को अर्पित किया और उन्होंने कहा–इस सुन्दर मानव को देखो।

दुवई–श्रेष्ठी अवलोकन कर चिंतन करता है, मेरे आनंद का अवसर आया है। मैं श्रेष्ठ को यहां रखूंगा और भोजन दूंगा एवं वरांग को साथ में एक स्थान से दूसरे में ले जाऊँगा।

7. कुमार वरांग की प्रशंसा

इस प्रकार राजपुत्र (कुमार) शुभ की आशा से धर्म में आसक्त होता है। सागरबुद्धि कहता है–तुम रूपदेव एवं प्रसन्न मूर्ति हो, तुम्हारी सम्पूर्ण लोक में रमणीय दृष्टि है, तुम विष्णु-पुत्र की तरह शोभित हो, तुम देव और मनुष्यों के चित्त को हरने वाले हो। इस प्रकार सागरबुद्धि सार्थवाह ने उसकी बार-बार प्रशंसा की, पश्चात् षट्रसयुक्त भोजन दिया। पुनः सार्थपति कहता है–तुम मेरे साथ आनंदपूर्वक रहो। पुनः मार्ग में जाते हुए जब सभी गीतों में मस्त थे तब वहां क्रूर भील समूह को प्राप्त किया। वे (वणिक) अपनी पत्नियों के साथ हाथों में हाथ लेकर अच्छे-अच्छे गीतों को सुन रहे थे तभी श्रेष्ठी का दूत मन में भय से भयभीत कहता है–सार्थपति सुनो! हमारे ऊपर वनचरों का समूह वज्रशत्रु के रूप में आया है। उसके वचन सुनकर सार्थपति कहता है–मैं शीघ्र ही उन दुष्टों का नाश करूंगा और अपने धन को नहीं दूंगा। फिर वणिपति योद्धा वहां पहुंचते हैं, जहां भीलों का समूह था। वे क्रोध सहित और लोभ सहित युद्ध करते हैं और पीछे उनके अंगों को घायल कर देते हैं।

पुनः-पुनः भील (चोर) बाणों से वणिकों को घायल कर देते हैं। सभी वणिक यह जानकर, पश्चात् वे सभी वहां से भाग जाते हैं।

घत्ता–वहां रण में अपने योद्धाओं को घायल देखकर सागरबुद्धि ऐसे कांपता है, जैसे फागुन माह में हवा से वृक्ष के पत्ते कांपते हुए गिर जाते हैं।

दुवई–नृपकुमार श्रेष्ठी को देखकर कहता है–पर्वत तुल्य धैर्य रखो। तुम श्रेष्ठ धर्मी और धैर्यवान हो, इस तरह भयभीत मत हो।

8. किरायगण से कुमार वरांग का युद्ध

इस प्रकार कहते हुए कुमार रण सम्मुख जाता है। दिशाएँ हाथी के चलने से मानो हिलती है। कमर पर तरकश को बांधता है, तलवार को हाथ में ग्रहण करता है। रथ पर

www.vitragvani.com

हणु–हणु[2] सद्दइ दिग्गइ तासिय   णिव[3]कुमारि वणिगण आसासिय।
लेहु लेहु सवरेसु वियारमि   महाकालु जममुहि पइसारमि।
तासु पुत्तु कालु वि रणि भंजमि   जय पाविवि वणिवइ मणु रंजमि।
इय वयणहि भडसम्मुह धाइय   जे भय भग्ग ते पुणु आइय।
वरतणु सद्दु सुणिवि वलदुद्धरु   इहु गोहाण गोहु कय संगरु।
वाणावलि पाडिउ रिउ वसुमइ   वणियरगण ताडिय पहु वसुमइ।
भिडिय सरोसइ विण्णिवि सेणइ   विण्णिवि बल मिल्लहि सर सेणइ।
समरु महंतु तित्थु संजायउ   वरतणु उप्परि समरु परायउ।
कालु णामु महकालहो णंदणु   भिडइ सरोसउ पियमणणंदणु।
अगणिय[4] साययेहि मिल्लंतउ   अइरोसारुण[5] णयण फुरंतउ।

घत्ता– सो पिक्खिवि दुद्धरु, समरु तहि कोह हुयासणि पजलिउ।
पभणइ रे दुठ्ठ काल णिसुणि मरहि म तुह पोरिसु कलिउ।।

दुवई– मा वुड्ढुहि अयालि रे पाविय महु असि उवहि दुग्गमे।
गच्छहि सिग्घु–सिग्घु णियभवणइ समुह मएहि पयगमे।।८।।

9

मा भिडहि[1] समरि लइ अभयदाणु   मइं पइं दिण्णउ कय जीवत्ताणु।
णियपिय रंडत्तणु णउ करेहि   गच्छंतउ णियजीविउ धरेहि।
कय दिण सीयलजलु साउ लेहि   णियपिय जणणिहि जाइ वि मिलेहि।
मा मरहि मरहि रे दुठ्ठ पाउ   हउं मुणमि पत्तु पइं[2] धम्मराउ।
पइ उद्दालिय वहुपत्थ[3] आसि   एवहि तुह तणु घल्लमि हुयासि।
जइ गच्छहि वम्मह[4] लोइ सरणु   अह करहि धिठ्ठ पायालि गमणु।
सुरणरविज्जाहर सरणि जाहि   पत्थोयणिहिहि[5] पइसहि अगाहि[6]।
तो विण छुट्टहि रे समरकालु   तुह इत्थ पहुत्तउ पलयकालु।
इय वयण सुणिवि कोहेण जलिउ   णं[7] उग्घय सित्तिउ जलणु जलिउ।
जं पइ अजुत्त वयणइ किराउ   णउ मुणइ पत्तु महु अज्जु आउ।
रे रे किं झंखहि अहलवाय[8]   किं ण मुणिउ दुद्धरु मज्झु ताय।

2. A, K, हण्णु 3. A, णिवं 4. K, आगणिय 5. A, अइरों॰ 9. 1. N, भिडहिं 2. N, पइ 3. A, पंत्थ K,पंथ
4. A, K, N, वम्महं 5. A, K, N, पात्थोय॰ 6. K, अगहि 7. N, ण 8. K, ॰वाया

www.vitragvani.com

धनुष बाण को ग्रहण करके आरूढ़ होता है, जीवन का अंत करने वाला भाला (कुंत) लेता है। जिस प्रकार सिंह मृग के ऊपर छलांग लगता है उसी प्रकार कुमार वरांग वनचर समूह के सामने पहुंचता है। कुमार वनचर-समूह, नागपति, खगपति का वैसे ही नाश करता है, जिस तरह जिनदेव कर्मबलादि का नाश करते हैं। जब कुमार रणभूमि में पहुंचा तब अनगिनत बाणों का सामना करता है, दिग्गज (योद्धा) मारो-मारो के शब्दों से उसे त्रासित करते हैं। नृपकुमार वरांग वणिक् समूह को आश्वासन देता है। लो-लो के शब्द सुनकर भील विचार करते हैं तब महाकाल यमराज के मुख में प्रवेश करेगा। उसका पुत्र काल भी रण में घायल हो जाता है। वणिपति विजय प्राप्त कर मन में प्रसन्न होता है।

इस प्रकार पुनः योद्धाओं का समूह दौड़ता है अथवा जो भय से भाग गये, वे पुनः आ जाते हैं। कुमार वरांग बलवान योद्धाओं के शब्दों को सुनता है। यहां रणभूमि में योद्धाओं का योद्धाओं के साथ संग्राम होता है। बाणों का समूह शत्रु की पृथ्वी पर गिरता है। वणिक-समूह ने स्वामी को ताड़ित किया। रोष युक्त होकर दोनों सेनाएँ भिड़ती हैं, दोनों सेना बलपूर्वक बाणों से युद्ध करती हैं। युद्धभूमि में महान् योद्धा प्रगट (उत्पन्न) होते हैं और वरांग के ऊपर टूट पड़ते हैं। महाकाल का पुत्र जो मन को प्रिय लगने वाला है, जिसका नाम काल है। वह रोष पूर्वक भिड़ता है, अनगिनत बाण छोड़ता है। अत्यंत क्रोध से उसके नेत्र रक्तमय हो जाते हैं।

घत्ता—उस कुमार योद्धा (दुर्धर) को देखकर उसकी क्रोध अग्नि प्रज्ज्वलित हो जाती है और कहता है—रे दुष्ट! काल की सुनो, तुम मरोगे, तुम पौरुष (बल) से गर्व युक्त मत हो।

दुवई—रे! अकाल में विनाश को मत प्राप्त करो, मेरा पार पाना समुद्र के तुल्य दुर्गम है। अपने घर को शीघ्र जाओ, जैसे मृगों का समूह सिंह को देखकर चला जाता है।

9. कुमार वरांग के लिए भील कुमार के द्वारा धमकी देना

भील कुमार कहता है मुझसे युद्ध में मत भिड़ो, अभयदान लो, मेरे द्वारा तुमको जीवनदान दिया जाता है। अपनी प्रिया को वैधव्य (विधवा) नहीं करो, यहां से जाते हुए अपना सुखमय जीवन यापन करो, अभी कुछ दिन जल का स्वाद लीजिए। अपनी प्रिय मां से जाकर मिलो, रे! दुष्ट पापी मत मरो, मत मरो। मैं जानता हूं तुम यमराज को प्राप्त करोगे, मेरा अत्यन्त हितकर आहार तुमने छीन लिया, इस तरह तुम्हारे तन को मैं अग्नि में डालता हूँ। ब्रह्मलोक की शरण में जाओ अथवा पाताल में गमन करो, देव, मनुष्य और विद्याधर की शरण में जाओ, गहरे समुद्र में प्रवेश करो। अरे! तो भी नहीं छोडूंगा। अभी तुम्हारी समर्थ को प्रलयकाल में पहुंचाता हूँ। यह

www.vitragvani.com

हउं पुणु वि तुज्झ मारण समत्थु लुट्टिवि लेसहं वणिवरह सत्थु।
मुद्ध वि किराट्ट वयणेहि हणहि मइं पुरइ रहंतह पुरिसु गणहि।
हउं किं ण कलिउ पच्चक्खकालु चिरु कवलिय वहुमइ भूमिपालु।

घत्ता–जमसहुं जुज्झं तहं को जिणइ एहु वयणु सुपसिद्धउ।
सो पइं अवगण्णिवि[9] रणु विहिउ तुहु समाणु को मुद्धउ।
दुवई– कालें कवण–कवण णवि कवलिय कीडय सरि समाणउ।
इत्थु ण थाहि[10]–थाहि महु अग्गइ जीवहि तो पलाणउ।। ६।।

10

हउं जि कालु पुणु ताउ महारउ महाकालु अवरु वि कलयारउ।
विण्णिवि जम तुहु कें जीवेसहि गच्छु जमाणणि जिउ म पवेसहि।
पइ मारिवि पुणु सत्थ तुहारउ मारिवि दव्वु लेमि महि सारउ।
अहवा जइ महु सरणागच्छहि तो जीवंतउ दहदिहि गच्छहि।
इय कडुयक्खराइ जंपेविणु[1] वाणइ मुक्क सरासणु लेप्पिणु[2]।
अगणिय सरधोरणि वरसंतउ णं[3] अयालि वरसागमु पत्तउ।
इय वाणहिं[4] अगणंतउ घायउ णियपोरिस बलेण णिव जायउ।
काल–वाण–गण हुयउ णिरत्थउ अत्थु ण फूरइ जह[5] किवि णत्थउ[6]।
कुमरि किरायह[7] बलु जज्जरियउ मग्गण मुक्क सरासणु[8] धरियउ।
थरहरंतु किवि महियलि णिवडिय किवि सरभिण्णंगइ जमि कवडिय।
वणरुहिरारुण धर किं सीसइ संज्झाघणु णहयलि जिम दीसइ।
भिडिवि–भिडिवि सुहडह गयजीविउ कायर भग्ग लेवि णियजीविउ।
सवर संघु जुज्झं तह मारिउ णं मुणि कम्मवूहु[9] संघारिउ।
णियबलु पिक्खिवि पुणु सवरेसें पुणु साहारिउ वाणविसेसें।
पुणु वहु सत्थहि णियसुउ घायउ तो विण जीविय चत्तु ण जायउ।
मुच्छ लहिवि सुंदरु पुणु उट्ठइ भिल्लवूहु संहारइ रुट्ठइ।

घत्ता– कायरहं भयावणु असुहरणु कुमरकाल रणु जायउ।
दोहिमि जुज्झं तहि परबलहि कालु समरु वि णिवायउ।। १० ।।

9. N, अवगणिवि 10. A, थाहिं **10.** 1. K, जपेविणु 2. A, K, N, लेपिणु 3. K, ण्णं 4. N, वाणाहि 5. A, K, N, जहं 6. K, N, णिरच्छउ 7. A, किरायहं 8. K, सरसण्णु 9. K, वूह

www.vitragvani.com

वचन सुनकर क्रोध से जलने लगता है, मानो अग्नि में घी डालने से और अधिक प्रज्वलित हो गई हो। हे भील! जो तुमने अनुचित वचन (किरात) कहे हैं, मैं नहीं जानता कि मुझे आज आयु प्राप्त होगी। रे रे! क्या निष्फलता को झांकते हो। क्या मेरे महान योद्धा पिता को नहीं जानते हो। फिर भी मैं थोड़े से वणिक के शस्त्रों को लूटकर तुम्हें मारने में समर्थ हूँ। भील कुमार मुग्ध होकर वचनों से मारो-मारो कहता है, मेरे साथ खड़े हुए पुरुषों को गिनो, मैं क्या प्रत्यक्ष काल नहीं हूँ। पूर्वकाल में मेरे द्वारा अनेक भूमिपालकों को नष्ट किया गया है।

घत्ता—यमराज के साथ युद्ध करके वहां कौन जीतता है, यह वचन प्रसिद्ध है। उसने तुम्हारे तिरस्कार के लिए युद्ध निर्मित कराया है, तुम्हारे समान कौन भोला है।

दुवई—काल में कौन-कौन कवलित नहीं होता है। यह जीवन नदी की क्रीड़ा के समान है, जहां कोई ठहरता नहीं है अर्थात् नदी निरन्तर प्रवाहित रहती है। मुझसे आगे का जीवन चाहते हो तो यहां से भाग जाओ।

10. कुमार वरांग का भील कुमार के साथ युद्ध

मैं काल हूँ और फिर मेरे पिता महाराज महाकाल हैं, तुम यह भी जान लो, हम दोनों यमराज हैं। तुम कैसे जीवित रहोगे। यमराज की आज्ञा से जीव प्रवेश करता है फिर तुम्हारी सामर्थ्य के अनुसार तुम्हें मारकर तुम्हारी भूमि और धन छीन लूंगा अथवा यदि मेरी शरण में आते हो तो जीवित ही दस दिशाओं में भ्रमण करो। इस प्रकार कटुक वचन कहकर, धनुष-बाण लेकर बाण छोड़ता है, अनगिनत बाणों की कतार बरसती है मानो अकाल में ही वर्षा का आगमन हो गया हो। इन बाणों से अनेक लोग घायल होते हैं। अपनी शक्ति और बल से ही राजा उत्पन्न होता है। काल, बाण और समूह निरर्थक हुए।

कुमार के द्वारा भीलों का बल जर्जरित कर दिया गया। कुमार ने धनुष को धारण कर बाण छोड़े, कोई कांपते हुए पृथ्वी पर गिर गया, किसी का सिर एवं अन्य अंग भग्न हो गये। जिस प्रकार सायंकाल आकाश में लालिमा दिखाई देती है, वैसे ही वह युद्ध भूमि जिस पर धड़, सिर और अन्य अंग पड़े हुए थे, रक्त लालिमा से युक्त हो गई। परस्पर भिड़-भिड़कर योद्धाओं का जीवन नष्ट हुआ, कायर (डरपोक) अपने जीवन को लेकर भाग गये। कुमार के द्वारा सवर-समूह जूझते हुए वैसे मारा जाता है जैसे मुनिराज कर्मसमूह का नाश करते हैं। अपने बल को देखकर सवर विशेष बाणों की सहायता लेते हैं। पश्चात् अनेक शस्त्रों से नृपपुत्र वरांग घायल होता है। मैं अपने जीवन का त्याग किये बिना नहीं जाऊँगा। मूर्च्छता को प्राप्त करने पर भी सुन्दर (वरांग) पुनः उठता है और रुष्ट होकर भीलों के व्यूह (चक्रव्यूह) को नष्ट करता है।

11

दुवई– ता णिसुणेवि कुमरियम घायउ परधणं हरणलुद्धउ।
णिउसुउ वणिवरेहि सुपसंसिउ जयसिरि वरणउद्धउ।। छ ।।

णियणंदणु मारिउ णिसुणेविणु महकालु वि पत्तउ असिलेविणु।
तोणा[1] जुयलु[2] सरासणु धारिउ आय वि तेण कुवरु पच्चारिउ।
रे रे दुट्ठधिष्ट वणिणंदण पुत्तु महारउ वि णयणाणंदणु।
घाय वि कत्थ जासि रे पाविय इय भणेवि[3] मग्गण वरसाविय।
तिक्ख[4] पुंख परजीविय लुद्धा[5] असरिस विसमइ लोह णिवद्धा[6]।
वरतणिअंगहि आइ वि लग्गा पिक्खिवि[7] वणिवर सयल वि भग्गा।
सुंदरु केम रहिउ समरंगणि गय घड अग्गइ पंचाणणु वणि।
दोहिमि रणु रउद्दु संजायउ दोहिमि वाणहि भिण्णिय कायउ।
पुणु रूसिवि कुमारि कें किद्धउ महकालु वि जम्माणणि दिद्धउ।
जय–जय सद्दु समुट्ठिउ णहयलि सुहिय पसंसिउ पइ जित्तउ वलि।
णिय णरेंदु पंचत्तउ मण्णिवि सवर पलाणारणु अवगण्णिवि[8]।
जहि वरंगु वसु पउ संपत्तउ किं वणयरगणु रहइ तुरंतउ।
जहि जिणवर वरणाणु परायउ तहि किं कम्मसमूहु[9] ण[10] घायउ।
तहि अवसरि वणिवरह पहाणउ भणइ वयणु को पइं समुमाणउ।
गोहु रयणु महि तुहु एकल्लउ पइं किउ सवरह[11] बलु वेयल्लउ।
पइ[12] मिल्लिवि वसुमइ को चंग तुज्झ सरिसु को अवरु अणंगउ।
पइं घोसिउ जयम्मि जस पडहउ णहि णिवद्ध कित्तिय धयवडउ।
वणिवर संघु मरंतउ रक्खिउ धम्मरसायणु[13] सुंदर सिक्खिउ।

घत्ता– णियवंसुज्जलु पइं कियउ अम्हहं जीविउ दिण्णउ।
सुरगिरि समु धीरत्तणु विहिउ तुहु[14] जि एकु जगि धण्णउ।।११।।

11. 1. N, तोण 2. A,जुयंलु 3. K, भणवि 4. A, K, N, तिख 5. K, लुद्ध 6. A, णिवइ N, णिवद्ध 7. A, K, N, पिखिवि 8. A, K, N, अवगण्णेवि 9. N, समूह 10. A, ण्ण 11. A, K, N, सवरहं 12. K, N,पइ 13. A, N, °रस्सायणु 14. N, तुहुं

www.vitragvani.com

घत्ता–कुमार रण में जाता है तो कायरों का भयानक नाश होता है। दोनों युद्ध करते हैं, वहां पर कुमार शत्रुपक्ष का युद्ध काल में पसीना बहा देता है।

11. सवर राजा से कुमार का युद्ध

दुवई–कुमार के द्वारा दूसरे के धन का हरण करने वाले लोभी का नाश किया गया है और विजयश्री का वरण किया गया है। वणिकवर के द्वारा नृप कुमार वरांग की प्रशंसा की जाती है।

अपने पुत्र के मरण को सुनकर महाकाल भी तलवार लेकर पहुंचता है। धनुष और तरकश को धारण करता है, वहां आकर, वह कुमार को ललकारता है। रे रे! धृष्ट-दुष्ट वणिक पुत्र–मेरा पुत्र नयनों का तारा था। रे! पापी उसको मारकर कहां जायेगा, यह कहकर राजा महाकाल बाणों की वर्षा करता है, वह पुत्र मोह से बंधकर, दूसरों के प्राण हरण के लिए असदृश, विषयुक्त, तीक्ष्ण बाण छोड़ता है। वे बाण वरांग कुमार के अंग में आकर लगते हैं। यह देखकर सभी वणिक भाग जाते हैं। सुंदर (वरांग) युद्धप्रांगण में ऐसे हैं, जैसे वन में सिंह हाथी आदि के आगे रहता है। दोनों का रण में रौद्र रूप उत्पन्न होता है, दोनों ही बाणों से शरीर भग्न किया करते हैं। फिर कुमार रुष्ट होकर महाकाल को भी यमराज के सम्मुख पहुंचा देता है। आकाश में जय-जय के शब्द गूंजते हैं, बलवान योद्धा जीतकर मित्रों से प्रशंसित होता है।

अपने राजा की तिरस्कार पूर्वक मृत्यु मानकर, सवर की सेना युद्धभूमि से पलायन करती है। जहां कुमार वरांग धन-सम्पत्ति को पाता है, क्या वनचर शीघ्र ही वह स्थान छोड़ते हैं अर्थात् वे स्थान छोड़ते हैं। जिस प्रकार जिनवर को श्रेष्ठज्ञान (केवलज्ञान) प्राप्त होता है, वैसे ही क्या कर्मसमूह का नाश नहीं होता है। अर्थात् कर्म-समूह का नाश होता है। उस अवसर पर वणिकपति कहता है–तुम्हारे समान कोई दूसरा नहीं है।

इस पृथ्वी पर योद्धा रत्न एक मात्र तुम हो। तुमने सवर के बल को पछाड़ दिया, तुमसे मिलकर पृथ्वी पर कौन प्रसन्न नहीं होगा, तुम्हारे समान अन्य कोई कामदेव नहीं है। मैं यशपताका की जयश्री तुमको घोषित करता हूँ और तुम्हारी कीर्ति की ध्वजपताका आकाश को छुए। तुम्हें वणिक संघ की मरते दम तक रक्षा करना है और हे वरांग! (सुन्दर) धर्म रसायन भी सीखना है।

घत्ता–अपने वंश को तुमने उज्ज्वल किया है, हमको जीवन दिया है। तुम सुरगिरि (सुमेरु पर्वत) के समान धैर्यता से निर्मित हो, तुम एक जग में धन्य हो।

www.vitragvani.com

12

दुवई– ण मुणमि कवणु ताउ तुह केरउ मायरि कवण जायउ।
को वरणयरु वप्प कमलाण ण कहि कारणि[1] परायउ।। छ।।

मुणमि इक्क वरवंसु तुहारउ पइं पोरिसु दरसिउ जगि सारउ।
इय वयणहि वणिवइ सुपसंसिउ सुंदरतणु समरंगणि णिरसिउ।
रुहिरारुण वरंगु संजायउ वणदुहेण सो मुच्छ परायउ।
पिच्छिवि उवहिविद्धि मणि सोयउ णयणंसुयइ मुयंतउ रोयउ।
हा विहि किं पर एसिउ मारिउ जहि वणिवरगणु समरि सहारिउ।
हा हा पुत्त–पुत्त किं तप्पहि इक्कवार मइ गिर तुह अप्पहि।
सुय उट्ठुट्ठ देहि महु सायउ धरणि म सोवहि महु दुह आयउ।
इय जंपंतह वयणइ वणिवइ[2] मलयागिर सित्तउ सुउ महिवइ[3]।
सीयलु चमराणिलु पुणु ढोयउ भेसह दिण्णिय तिवडुय[4] जोयउ।
लहिवि सचेयभाउ णिवणंदण उट्ठिउ जण–मण णयणाणंदणु।
तो पुणु हरसिउ वणिवर सारउ गाढालिंगणु कियउ कुमारउ।
वरतणु अंगइ[5] भेसहो[6] दिण्णउ लहु दिवसहि हुय सार रवण्णउ।
पुणु धण–धण्ण–सुवण्ण समग्गलु भणइ सेट्ठि[8] इहु लेहि महाबलु।
अवरु वि मणि रयणइ अइसारा मइ अप्पिउ तुह गिन्हि कुमारा।
इय मुणेवि पुणु वरतणु वुत्तउ कुसलु–कुसलु पइं[9] वयणु पउत्तउ।
धण दाणइ अहम्मु तोसिज्जइ[10] मज्झिमु धण समाण पोसिज्जइ।

घत्ता– जो उत्तमु परउवयारहिउ सज्जणचरिय वि लीणउ।
सो हियमियवयणिहि तोसियइ वसु ण लेमि तुह दीणउ।

दुवई– पभणइ सेट्ठि[11] मज्झु तडि अच्छहि परउवयार भायणो।
लच्छि ण गहइ सइ जि अप्पंतह इहु को सच्चरायणो।। १२।।

---

12. 1. A, कारणिं 2. N, विणिवइ 3. K, महिवई 4. A, वड्डुया K, वडूया 5. A, K, N,अंगइं 6. N, भेसेहो 7. K, दिंण्णउ 8. K, सेठि 9. N,पइ 10. N, तेसिज्जइ 11. N,सेठि

www.vitragvani.com

12. वणिपति का वरांग के प्रति स्नेह

दुवई–मैं नहीं जानता हूँ कि तुम्हारे कौन माता-पिता हैं? कहां उत्पन्न हुए हो? कौन-सा श्रेष्ठ नगर है? यहां पहुंचने का क्या कारण है?

तुम्हारा एक श्रेष्ठ वंश जानता हूँ, तुम्हारा पौरुष (बल) जग में सभी ने देखा है, वणिक्पति कुमार की प्रशंसा करता है। सुन्दर शरीरयुक्त तुमने युद्ध–प्रांगण में शत्रु को परास्त किया है। वरांग के लाल रक्त निकलता दिख रहा है, वह घाव के दुःख से मूर्च्छित लौटा है। उसे देखकर सागरबुद्धि को मन में शोक-संताप होता है, वह आंसू छोड़ते हुए रोता है, हाय विधाता! कुमार को ऐसा क्या मारा गया है, जहां वणिक्-समूह युद्ध में सहकारी बना था। हाय-हाय पुत्र क्यों संतप्त होते हो?

एक बार मुझे तुम अपने वचन अर्पित करो, पुत्र उठो, मुझे अपनी वेदना दो। पृथ्वी पर मत विश्राम करो, मुझे दुःख होता है।

इस प्रकार वणिपति कहते हुए, राज-पुत्र पर मलयागिर का जल डाला, फिर शीतल चमर की वायु ढुलाई, दवा दी जाती है एवं देखरेख की जाती है। वह नृपनंदन जो सभी के लिए मन और आंखों का तारा है, सचेत भाव को प्राप्त कर उठता है तो फिर वणिक्–समूह हर्षित होता है एवं सभी कुमार को घनिष्ठतापूर्वक आलिंगन करते हैं।

वरांग के अंगों में औषधि का लेप दिया जाता है, कुमार कुछ ही दिनों में ठीक हो जाता है। श्रेष्ठी सागरबुद्धि कहता है– हे महाबली! धन-धान्य, स्वर्ण आदि यह सब कुछ ग्रहण करो एवं मणि रत्नादि सभी पदार्थ मैं तुमको अर्पित करता हूँ, कुमार (यह सब) ग्रहण करो।

यह जानकर फिर कुमार वरांग कहता है–आपके कहे हुए वचन बहुत अच्छे हैं, धनदानादि अधर्म को संतुष्ट करते हैं। मध्यम धन समान रूप से पोषित किया जाना चाहिए।

घत्ता–जो दूसरों के उपकार और हित के लिए होता है एवं सज्जन का चरित्र जिसमें लीन होता है, वह उत्तम है। वह हितमित वचनों से संतुष्ट करता है और उनके द्वारा प्रदत्त सम्पत्ति को नहीं लेता है।

दुवई–श्रेष्ठी कहता है परोपकार करने वाले पात्र मेरे समीप बैठो। हे सच्चरित्र! तुमने लक्ष्मी को ग्रहण नहीं किया तो भी मैं सदा अर्पित करता रहूंगा।

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

13

एहु पयंपिवि दिण्णु[1] पयाणउ सुहमहुत्ति वरअंग समाणउ।
चलिउ सेट्ठि णियणयरहो सम्मुह[2] उज्जल छुह पंकिय जहि हम्मह[3]।
उवहिविद्धि णियणयरि पहुत्तउ सोहालंकिय वर[4]तण जुत्तउ।
णयरलोउ अहिमुह संपायउ सयल संघु णिय णिय गिहि आयउ।
वरतणु सेट्ठि भवणि संपत्तउ जाणिवि वणिवरु विणय पसत्तउ[5]।
तहि अवसरि वणि कियउ महुच्छउ जं किज्जइ णियपुत्त सरिच्छउ।
दहि दुव्वर कय दीवय लेप्पिणु[6] कंचणमय थालइ घल्लेप्पिणु[7]।
वरतण अग्गइ अग्घुत्तारिउ वणितिय मंगलु सदुच्चारिउ।
वार–वार सुपसंसेवि दिण्णउ भोयणु रिउरससरसु[8] रवण्णउ।
इम अच्छंतह वणिवरु[9] वुत्तउ वयणु महारउ सुणहि णिरुत्तउ।
हउं पिउ एहु[10] मायए वंधव एहु दव्वु गिण्हहि गुणसिंधव।
एहु हरि एहु गेहु सहु तेरउ इह सुय अच्छहि सुहय जणेरउ।
तुव समाणु णउ पुत्तु महारउ हउं वंछमि सुयसंगु तुहारउ।

घत्ता– इय वयणु सुणेविणु रायसुउ धम्मु पुत्तु वणिवरहो हुउ।
पुज्जाविहाणु णिय णय[11] सहिउ अच्छंतह सुहयालु गउ।।१३।।

14

दुवई– इत्तहि जणि पहाणु हुउ सुंदरु वरगुण लखणा लउ।
घरि–घरि सो जि णित्तु गाइज्जइ वरतणु सिट्ठि वालउ।। छ।।

दिवसिक्कहि वणिवरह पहाणउ वणि गउ सायरविद्धि सयाणउ।
तिहि दिट्ठउ[1] णंदणुवणु केहउ महु भासय इत्थीयणु जेहउ।
पुप्फसहिउ तिल–अंजणु रुक्खइ जहि दिट्ठइ णासंति सुदुक्खइ।
जत्थ पयोहरु मण संतोसइ विंवाहर[2] णर[3] पंखिसु पोसइ।
छप्पइ चिहुरइ भूरुह सिहरइ पत्तइ परियणु सालंकारइ।
कामुक्कोवइ विणु वि पियंगइ पिच्छंतह[4] वंछइ सुपियंगइ[5]।

13. 1. N, दिणु 2. K, सम्महं 3. A, K, हम्महं 4. A, वरं 5. N, पसंत्तउ 6. A, K, N, लेपिणु 7. A, K, N, घल्लेपिणु 8. K, रसु 9. K, वणिवर 10. A, K, N, एह 11. A, नय
14.1. A, K, N, दिठउ 2. A, N,विवाहर 3. A, नर 4. A, K, पिंछतह N, पिंच्छतह 5. A, K, N, पियंगइं

www.vitragvani.com

13. सागरबुद्धि का नगर की ओर प्रस्थान

इस प्रकार कहकर दिन में कुमार वरांग सहित सभी ने शुभ मुहूर्त्त में प्रस्थान किया। श्रेष्ठी अपने नगर की ओर चलते हैं, जहाँ पर घर एवं महल उज्ज्वल सफेदी से सज्जित थे। श्रेष्ठी सागरबुद्धि अपनी नगरी में पहुंचता है, वरांग शोभा से अलंकृत था। नगर के अभिमुख पहुंचते हैं, सम्पूर्ण संघ अपने-अपने घर में आते हैं, वरांग कुमार श्रेष्ठी के भवन (महल) में पहुंचता है। वणिक जानकर नम्रता से आसक्त हुए, उस अवसर पर वणिक वर्ग के द्वारा कुमार वरांग के नगर आगमन पर अपने पुत्र के सदृश महोत्सव किया गया। दीपक लेकर दरवाजे पर कुमार की आरती की गई, थालियों में कंचन भरकर फेंका गया, वणिक की स्त्रियों ने मंगल शब्द उच्चारित किये, अनेक बार कुमार की सम्यक् प्रशंसा की गई, षट-रस युक्त, सरस और रमणीय भोजन दिया गया। इस प्रकार विश्राम करते हुए वणिक कहता है—मेरे वचनों को निश्चित होकर सुनो। यह मेरी प्रिय माता और बंधुजन (परिजन) हैं।

हे गुणसागर! यह द्रव्य (धन) ग्रहण करो, यह घोड़ा, यह घर सब कुछ तुम्हारा है। तुम सौभाग्यवान पिता के पुत्र हो, तुम्हारे समान मेरा पुत्र नहीं है, मैं पुत्र के रूप में तुम्हारी संगति चाहता हूँ।

घत्ता—यह वचन सुनकर राजपुत्र वणिपति (वणिक) का धर्मपुत्र होता है। न्याय-नीति सहित पूजा विधान होता है और अच्छी तरह से सुख का समय व्यतीत होता है।

14. सागरबुद्धि के लिए वन में एक स्त्री मिलना

दुवई—इस प्रकार वरांग लोगों में प्रधान होता है जो श्रेष्ठ गुणों एवं लक्षणों का घर है। वहां पर घर-घर में निरन्तर श्रेष्ठी बालक वरांग के गीत गाये जाते हैं।

एक दिन सज्जन सागरबुद्धि वन में गया, वहां पर नंदन वन (उद्यान) में किसी स्त्री के द्वारा उसको कहा गया। जिसे देखकर सम्पूर्ण दुःखों का नाश हो जाता है, ऐसी स्त्री बिन्दी और काजल लगाये हुए पुष्पसहित थी, उसके पयोधर मन को संतोष देते हैं, उसके अधरबिम्ब मनुष्य की इच्छाओं को पूरा करते हैं, उसके काले बाल भूमि पर उत्पन्न वृक्ष के शिखर पर स्थित काले भौरे के समान थे। वह स्त्री अलंकारसहित परिजनों के पास पहुंचती है। काम और क्रोध के बिना सुन्दर अंगों वाली देखी जाती हुई वह ठग रही थी, जैसे वहां आम्र वृक्ष पर बैठे हुए तोते को सुन्दर शब्दों वाली वह कोयल कहती है।

www.vitragvani.com

जहि सुमहुर सद्दय कलयंठिय वुल्लहि कीर चूय तरु संविय।
वहु सावय संकुलु णं जिणहरु एहउ वणु सीसइ अइमणहरु।
पिच्छिवि वणिवर सयल णिविट्ठा णिय णियवंसह[6] मज्झि गरिट्ठा।
पिच्छिवि वरतणु रूउ रवण्णउ वणिवरगणु भासइ इहु धण्णउ।
इह वरपाणिग्गहणु करिज्जइ उवयारहु उवयारु धरिज्जइ।
णियरूवें णिज्जिय सुरअच्छर णिविड पयोहराय अइकुच्छर।
एही कण्ण कुमारहो दिज्जइ वरआहरणइ तणु पोसिज्जइ[7]।

घत्ता– पुणु वणिवइ उत्तउ णिसुणि सुय वणियह धीय पसण्णमणु।
लइ–लइ करगहणुल्लउ करहि जइ इच्छहि तो भणिवयणु।।

दुवई– इय वयणइ कुमारि अवगण्णिवि[8] पुणु तुण्हीय गिण्हिया।
सयलह मुणिउ एहु णवि इच्छइ वरतिय अइ रवण्णिया[9]।।१४।।

15

पुणु कहइ वणीसरु वयणु कज्जु महु भणिउ करिज्जइ वप्प अज्जु।
एयहु दिज्जइ[1] पउ वणि पहाणु वरसिद्धि करिज्जइ णरु पमाणु।
इहु सयलकलागमु पारिपत्तु दुधरु समरंगणु जिणण धुत्तु।
किं वण्णमि इह गुण अप्पमाण उवयारु वयहं रक्खिय पराण।
पुणु सयलहं वुत्तउ चारु चारु लहु दिज्जइ ण करिज्जइ वियारु।
एउ[2] मंतु करेप्पिणु[3] सिद्धि गेहि वरतण सहु पत्तउ वणु चएहि।
सुहिवासर सुमहुत्तइ गणेवि ललिताहणयरजणु सयलु लेवि।
णियपउ दिण्णउ किउ वणिवरेंदु हुउ वणिपहाणु गयणयलि इंदु।
धम्में संपज्जइ पवरलच्छि धम्में तियगणु लब्भइ मयच्छि[4]।
अइ कढिण पयोहर कणयकुंभ सरिसइ कोमल तणुणाइरंभ।
छणइंदु व सरिसउ वयणु भाइ वालक्क तेयविहि दिण्ण णाइ।
विद्दुम सरिसाहर सद्दुवीण सीलुज्जल णियपिय पायलीण।
एही कामिणी[5] पुण्णेण हुंति णिच्चु वि पिय पडिवण्णउ वहंति।

6. K, णियं[0] 7. A, K, पोसिजइ 8. N, अवगणिवि 9. N, खणिया **15.** 1. N, दिजइ 2. A, K, N, यउ 3.A, K, N, करेपिणु 3. A, K, N, यउ 4. A, K, N, मयच्छिं 5. A, K, N, कामिणि

www.vitragvani.com

वहां पर श्रावकों का समूह मानो अत्यन्त मनोहर मंदिर में एकत्रित हुआ हो। वह श्रेष्ठ वणिक् अपने-अपने कुलों में जो महान् थे, उन समस्त स्थित लोगों को देखकर तथा रूप और शरीर में सुन्दर ऐसा वणिक् समूह कहता है—यह समय बड़ा धन्य है। जो इसके साथ विवाह करेगा, उसका बहुत बड़ा उपकार होगा। अपने रूप से देवों की अप्सराओं को जीतने वाली यह स्त्री झुके हुए और उन्नत पयोधर वाली है, सुन्दर आभूषणों से सुशोभित शरीर वाली यह कन्या कुमार को दे दी जाए।

घत्ता—पुनः वणिपति कहता है—धैर्य और प्रसन्न मन वाले हे वणिक पुत्र! सुनो, यदि तुम्हारी इच्छा हो तो उसके साथ विवाह करने के वचन कहो।

दुवई—इस प्रकार के वचनों से कुमारी को तिरस्कृत करके पुनः मौन धारण कर लेता है। सभी लोग यही समझते हैं कि अत्यन्त सुन्दर और रमणीय स्त्री के लिए उसकी इच्छा नहीं है।

15. वरांग के लिए श्रेष्ठी पद

पुनः वणिपति (सागरबुद्धि) कहता है—आज एक कार्य करना चाहिए। कुमार के लिए सभी के समक्ष वणिकों में प्रधान श्रेष्ठी-पद दिया जाए। यह सम्पूर्ण कलाओं में पारंगत है एवं इसने दुष्कर संग्राम को जीता है। इसके गुणों का क्या वर्णन करूं, यह उपकार व्रत को रखता है, जो अपने प्रमाणभूत है। पुनः सभी उत्तम-उत्तम (चारु-चारु) कहते हैं। इसमें विचार न कीजिए, शीघ्र ही श्रेष्ठी-पद दीजिए।

यह मंत्रणा सागरबुद्धि के घर पर करके साथ ही कुमार को प्राप्त किया। उन्होंने शुभ दिन और शुभ मुहूर्त्त देखकर, ललितपुर नगर के सभी लोगों की उपस्थिति में अपना इन्द्रतुल्य पद कुमारवरांग के लिए दिया। कुमार आकाश में चन्द्रमा की तरह वणिक-प्रधान हुआ।

धर्म से श्रेष्ठ लक्ष्मी की प्राप्ति होती है, धर्म से मृगनयनी स्त्रियों का समूह प्राप्त होता है। जिसके अत्यधिक कठिन पयोधर (स्तन) स्वर्ण-घट के समान हैं और रंभा के समान कोमल शरीर है, जिसकी पूर्ण चन्द्रमा के सदृश मुख की प्रभा है, मानो बालसूर्य ने उसे तेज दिया हो, जिसके ओंठ विद्रुम के सदृश मधुर शब्द करते हैं, उन्हें सुनकर ऐसा प्रतीत होता है मानो शीतल जल पिया हो। इस प्रकार ऐसी स्त्री पुण्य से होती है जो नित्य ही अपने पति को वहन करती है। धर्म से पुत्र विनयवान होता है, धर्म से नरपति महान् होता है, धर्म से दुर्लभ भी सुलभ हो जाता है, धर्म से ही लोक में कीर्ति और यश होता है, धर्म से ही विविध प्रासाद (महल) आदि प्राप्त होते

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

धम्मेण हुंति सुय विणयवंत धम्मेण हुंति णरवइ महंत।
धम्में दुल्लहु तं सुलहु होइ धम्में कित्तीजसु भमइ लोय।
धम्में विविहइ हम्मइ हवंति धम्में जणवउ आणइ वहंति।
धम्मेण हुंति हरि–करि–रहाइ जाणइ जंपाणइ पंडुराइ।
वरआइवत्त धम्मेण हुंति वरसुर–खेयर पायइ णवंति।

घत्ता– रिउखंडराउ धम्में हवइ, विहि घणइ वरिद्धि सवई[7]।
पुणु लब्भइ सिवपउ अतुल सुहु णाण तेययालउ लहइ।।१५।।

इय वर–वरंगचरिए पंडियसिरितेयपालविरइए। मुणिविउलकित्ति–सुपसाए। वरंग ललितणयरिसिद्धिपउपत्तोणामवीउसंधीपरिच्छेउसमत्तो।। द्वितीय संधि ।।

—:—

6. A, K, N, हंमइ 7. A, K, सवइ

www.vitragvani.com

हैं। धर्म से ही जनपद (प्रजा) राज-आज्ञा का पालन करती है, धर्म से ही हाथी, घोड़ा, रथ, हाथी-पालकी आदि की प्राप्ति होती है, धर्म के प्रभाव से श्रेष्ठ देव, खेचर आदि चरणों में नमस्कार करते हैं।

घत्ता–धर्म से ही षट्खण्ड का अधिपति (चक्रवर्ती) होता है एवं विधि के अनुसार ऋद्धि की प्राप्ति होती है, पश्चात् धर्म से ही शिवपद (मोक्ष) की प्राप्ति होती है।

इस अतुलनीय सुख एवं ज्ञान की प्राप्ति तेजपाल प्राप्त करता है।

मुनि विपुलकीर्ति की कृपा से पण्डित तेजपाल विरचित इस वरांगचरित में ललितपुर नगरी में वरांगकुमार को श्रेष्ठीपदप्राप्त नाम का द्वितीय संधि परिच्छेद समाप्त हुआ।। द्वितीय संधि।।

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

1

इत्तहि धम्मसेणु णिवइ हरिउ वरंगु मुणेप्पिणु[1]।
तहो पुट्ठिहि पेसिय रायसुया आणहु हरि गिण्हेविणु।।
खंडयं– इय णिसुणेविणु वयणयं, णाणा हरि–करि जाणयं।
चडिवि चडिवि पहि सत्थयं, तो विण पिक्खिउ कत्थयं[2]।। छ।।

केवि[3] वाहुडिय केवि पुणु चल्लिय णिवसुयहरणें जह मणसल्लिय।
जंत जंत ते अडविहि पत्ता दहदिहि[4] पिक्खहि अवलोयंता।
जाम ताम ततहि दिट्ठउ हयवरु अडविहि मज्झि मुयउ अइदुहयरु।
तहि णवि दिट्ठउ वरतणसारउ कत्थ[5] गयउ वररायकुमारउ।
हरि उवयरणइ लेविणु आयइ[6] जहि णिउ अच्छइ तहि जि परायइ।
देव देव णंदणु णवि दिट्ठउ सयलह लोयह मज्झि गरिट्ठउ।
इय उवयरणइक्क कूवंतरि हरिवरु मुयउ दिट्ठु अब्भंतरि।
अम्हइ गिण्हिवि पुणु जोयंता यंत यंत तुह पुरसंपत्ता।
इय वयणइं सुणेवि णरसामिउ सोय विलीणउ मुच्छायामिउ[7]।
कह व–कह व पुणु लद्धी चेयण तो विण णट्ठी वरतणु वेयण।
हा हा पुत्त–पुत्त पभणंतउ सोयाउरु कारुण्ण कुणंतउ।
हा विहि किं अवत्थ महु पाडिय पइं भंजिय पुत्तह परिवाडिय।
हा हा पुत्त–पुत्त गुणसुंदर जिणवरमहिमा रयणपुरंदर।
हा हा तोय–तोय गुणसायर कहिगउ–कहिगउ तेय दिवायर।
घत्ता– हा तणयरुव सोहग्ग णिहि, महु कुलितिलय समाणउ।
अरि–करि–हरिभंजण पइं सरिसु को होसइ जुयराणउ।
खंडयं– हा हा विहिणा किं कयं, तोय महारउ जं हयं।
हरियउ कलगुणसुंदरो, महु मणणयणाणंदिरो।।१।।

2

पइं विणु को हियवउ साहारइ सोय समुद्द पडंतउ धारइ।
पइं विणु सुण्हइ को रंजावइ पइं विणु को भंजइ महु आवइ।
पइ[1] विणु सुण्णउ महु घरपंगणु पइं विणु सहु सुण्णउ णंदणगणु।

---

1. 1. A, K, N, मुणेपिणु 2. A, K, N, क्कत्थयं 3. A, K, N, किवि 4. N, दिह[0]
5. K, कथ्थ A, कथ 6. A, K, N, आइय 7. A, सुच्छायामिउ 8. A, K, N, यउ **2.** 1. N, पइ

www.vitragvani.com

तृतीय सन्धि

इस प्रकार नृपति धर्मसेन अश्व और वरांग के बारे में जानकर, अन्य घोड़े को लेकर पीछे राजपुत्रों को भेजता है। राजपुत्र अनेक घोड़ों और हाथी पर सवार होकर जाते हैं।।खंडक।।

वे नृप के वचनों को सुनकर जाते हैं। वे सवार होकर के पथ में प्राप्त प्राणी–समूह से कुमार के बारे में पूछ-पूछकर जाते हैं, किन्तु कुमार का कहीं भी पता नहीं चलता है।।छप्पय।।

1. वरांग की खोज

राज्य का संचालन कुछ ही चला पाया और पुनः कौन इसे चलायेगा। राजपुत्र के हरण से वहां मन में शल्य हो गई। चलते-चलते वे भयानक जंगल में पहुंचे, दसों दिशाओं में अवलोकन करते हुए प्रेक्षण किया, यहां-वहां सर्वत्र श्रेष्ठ घोड़ा और कुमार को देखा एवं अतिदुष्कर जंगल के बीच को भी नहीं छोड़ा अर्थात् वहां भी देखा, वहां भी कुमार वरांग नहीं दिखाई दिया। वे घोड़ा के उपकरणों को लेकर आये, जहाँ नृप बैठे हुए थे, वहां वे पहुंचे (लौटे)।

इस प्रकार एक उपकरण कुएं के अंदर प्राप्त किया एवं अंदर ही मृत अश्व को छोड़ा हुआ देखा। हम लोगों ने जहाँ-जहाँ जो देखा, उसको ग्रहण करके पुनः देखा, वह आपके समक्ष है। इन वचनों को सुनकर नरपति धर्मसेन शोक में लीन होते हैं एवं मूर्च्छित हो जाते हैं। पुनः किसी तरह से चेतन वरांग तुम प्राप्त हो, तुम्हारे बिना मेरी वेदना नष्ट नहीं होती है। बार-बार हाय पुत्र! हाय पुत्र! कहते हैं और शोक सहित करुण शब्द करते हैं।

हाय! इस भाग्य विधाता ने मुझको किस अवस्था में डाल दिया है। तुम भग्न हुए, यह पुत्र की क्या पद्धति (परम्परा) है। हाय पुत्र-पुत्र हे! गुण सुन्दर एवं जिनवर महिमा के रतन रूप इन्द्र हो। तुम तो पीड़ा को (शान्त करने के लिए) जलरूप गुणसागर हो। हे ओजस्वी सूर्य! तुम कहां गये, कहां गये।

घत्ता–तुम पुत्र रूप में मेरे सौभाग्य के खजाना एवं कुल के तिलक के समान हो। शत्रु रूपी हाथी के मद को नष्ट करने के लिए सिंह के समान तुम्हारे जैसा अन्य कौन युवराज होगा।

खंडक–हाय विधाता ने क्या किया? कलाओं से युक्त, गुण सुन्दर एवं मन और नयनों को आनंदित करने वाले मेरे पुत्र को छीन लिया।

www.vitragvani.com

हा हा भोयरायकुलमंडणु पइं विणु को परचक्किय भंडणु।
दुद्धरु जिणि जयसिरि को पावइ पइं विणु दुज्जण को आयावइ।
एहि–एहि सुय–सुय तुहं पिक्खहि णियपरियणु रोवंतउ रक्खहि।
पइं[2] विणु पुरवरु गहण समाणउ को अवलोवमि पय समु माणउ।
हा हा सुय पइं विणु किं किज्जइ तो वर जीविय पाणिउ दिज्जइ।
णयणंसुय जलेहि तणु सित्तउ णं विहिणा णिज्झरणु विहित्तउ।
हा हा पइं विणु खडरसभोयणु विसरिव भासइ जीविय मोयणु।
पइं[3] विणु जल तंबोल वि लेवणु दाहुप्पज्जइ कय अइवेयणु।
इय विलवंतउ हुयउ अयाणउ वार–वार मुच्छिज्जइ राणउ।
सोयाउर मुणेवि पुरराणउ लोउ सयलु णिवगेहि पराणउ।
पुणु अवलोयवि सोयइ[4] भिण्णउ पुरयणु कवणु–कवणु णवि रुण्णउ।
भड–सामंति–मंतगणु पत्तउ जहि भूवइ अइसोयारत्तउ।
भणहि मंति भो भो परमेसर सुणि–सुणि णियपयकमल दिणेसर।

घत्ता– मा करहि सोउ महिराउ तुहु जणवय सयल गरिट्ठउ।
पइं सोउ करंतह[5] जणु सयलु वहु दुहु लहइ अणिट्ठउ।।

खंडयं– **जं जं किं पिउ वण्णयं, धण–जोवण–सुय वंधयं।**
तं तं सयलु वि भंगुरं, अण्णु वि पिक्खहि मंदिरं।।२।।

3

सोउ ण किज्जइ गुरु[1] दुहदायणु सोयं लब्भइ दुग्गइ भायणु।
सोयइ[2] जइ वरंगु घरि आवइ तो जणु सव्वु मिलिवि धाहावइ।
सोयइ लीणउ तिरिय समाणउ अइसोएण हवइ गय पाणउ।
सोयउ मग्गामग्गु ण पिक्खइ सोयउ णउ गिण्णइ वर सिक्खइ।
सोयवंतु आयावइ अप्पउ सोयवंतु ण मुणइ परमप्पउ।
सोयउ हेयाहेउ ण याणइ सोयउ लहइ लोय अवमाणइ।
सोयं जसकित्ती मइलिज्जइ सोयं अप्पइ अप्पउ खिज्जइ।
जिणसासणि सोउ वि अवगण्णिउ किं किज्जइ णिव अम्हह[3] भण्णिउ।

---

2. N, पइ 3. A, K, पइ 4. N, सोयइं 5. N, करंतहं

3. 1. A, K, N, गुर 2. K, सोयइं 3. A, K, N, अम्हंहं

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

2. धर्मसेन का पुत्र वियोग

तुम्हारे बिना कौन हृदय को सहारा देगा, शोक को धारण करके राजा धर्मसेन उठते एवं गिर पड़ते हैं, तुम्हारे बिना बहुओं को कौन मुग्ध करेगा? तुम्हारे बिना मेरे जीवनकाल के अंत में कौन मुखाग्नि देगा? तुम्हारे बिना मेरा घर-आंगन सूना हो गया है, तुम्हारे बिना पुत्र समूह आदि सब कुछ सूना हो गया है। हे भोजराज! कुल मंडन तुम्हारे बिना कौन शत्रु सेना एवं शत्रु राजा से युद्ध करेगा, दुरूह जयसिरि को कौन जीतकर पायेगा? तुम्हारे बिना कौन दुष्टों को आतापित करेगा? इस प्रकार से हे पुत्र! तुमको देखूं। स्वपरिजन रक्षा के लिए रोते हैं, तुम्हारे बिना नगर गहन के समान हो गया है। प्रजा का समान दृष्टि से कौन अवलोकन करेगा। हाय पुत्र तुम्हारे बिना क्या किया जाये? हे श्रेष्ठ! (मैंने तो) जीवित ही प्राण दे दिये हैं। नेत्रों के आंसुओं के जल से मेरा शरीर सींचा गया है, मानो विधाता ने झरना का निर्माण किया हो। हाय! हे पुत्र!! तुम्हारे बिना षट्रस भोजन विषतुल्य भासित होता है। तुम्हारे बिना पान के जल का लेपन भी अतिवेदना एवं दाह को उत्पन्न करता है। इस प्रकार अज्ञान से विलाप होता है, राजा बार-बार मूर्च्छित हो जाता है। राजा को शोकातुर जानकर के प्रजा के सभी जन राजा के घर पर पहुँचे। पुनः राजा को शोक से टूटा हुआ (विदीर्ण) अवलोकन करके, नगर जन कौन-कौन नहीं रोता है? जहाँ भूपति अतिशोक में रत हैं, वहां वीर, सामंत, मंत्री सभी पहुंचते हैं और मंत्री ने कहा—हे परमेश्वर! हे निज पादकमल रूप सूर्य!

घत्ता—हे महाराज! तुम सम्पूर्ण जनपद के श्रेष्ठ, शोक मत करो। तुम्हारे शोक करते हुए सम्पूर्ण जन (प्रजा) बहुत अधिक (अप्रीतिकर) दुःख को प्राप्त करते हैं।

खंडक—क्या जो प्रिय वर्णित है—धन, यौवन, पुत्र और बंधुजन (परिवारजन) वह सभी क्षणभंगुर हैं। अन्य मंदिर (आत्मा या जिनालय) को देखो।

3. शोक सहित राजा को समझाना

हे राजन! भारी दुःख को देने वाले शोक को नहीं करना चाहिए (क्योंकि) शोक को प्राप्त हुआ दुर्गति का पात्र होता है। यदि शोक करने से कुमार वरांग घर में आते हैं तो सभी जन मिलकर हाहाकार मचाते हैं। शोक में लीन होना तिर्यंच के समान है। अतिशोक होने से प्राण भी जाया करते हैं, शोकसहित व्यक्ति मार्ग-उन्मार्ग नहीं देखता है, शोक में रत व्यक्ति श्रेष्ठ शिक्षा (सीख) नहीं गिनता है, शोकवाला अपने आपको आतापित करता है, शोकवाला परमपद (श्रेष्ठ

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

सोउ करंतह[4] किंपि ण लब्भइ भवियव्वु चिंतिज्जइ सब्भइ।
विहि विवाउ जणवइ बलयारउ सो जि सहिज्जइ अइगरुयारउ।
सयलु लोउ जमपुरि जाएसइ रहइ ण मंत कुणंतह भेसइ।
वद्धउ आवसुकम्म वि जेतउ भुंजंतह जीविज्जइ तेतउ।
अइ आकंदइ जो मणि मूढउ उर–सिर ताडइ सोयारूढउ।
केवि सोउ मुंचहि वरपंडिय अरुहागम अप्पाणउ[5] मंडिय।
धम्मविवेउ णाणु मणि झावहि जिणवर वयणइ णियमणि लावहि।
तत्तुइ सद्दाहाणु करंतह[6] पंचणमोयारइ सुमरंतह[7]।
जो जीवह[8] जीविय दिणु अच्छइ सो जमणयरि पयाणउ गच्छइ।

धत्ता–वरसद्धहि कंधि चडावियउ मुयउ जणद्दणु भायरेण।
सो किं बलहद्दहि[9] पावियउ विहियइ अइ सोयाउरेण।
खंडयं–अहवा मुयउ ण सुंदरो वणि गउ जहि गिरिकंदरो।
पज्जुण्णु व आवेसए जइ जीवंतउ होसइ।।3।।

4

पुव्वज्जिय कम्मविवाउ एहु सुहु–दुहु पाविज्जइ णियइ देहु।
किं किज्जइ हरिस–विसाउ अप्प विहिअ–सरिस–गइ–संसारि वप्प।
अहवा किर को अम्हाण रक्ख करिसइ[1] तणु होसइ कालि रक्ख।
महि केण ण भुत्ती पुव्वयालि वहु महिवइ कवलिय णिययकालि।
कहि पडिहरि दहमुह अइपयंडु जहि अरिवरबल किय खंडु–खंडु।
सो धम्मराइ णिउ आउ अंति जो सेविज्जंतउ वि वुह पंति।
णिहणिउ लक्खणि पुणु मुयउ सोवि किं अवरु पुरिसु उब्बरइ कोवि।
चउदह कुलयर[2] पुणु चक्कणाह महि भुंजिवि भुंजिवि गय अणाह।
हरि–पडिहरि–बल णव–णव पयार कहि[3] कामदेव कहि[4] दहदसार।
कहि[5] पंडुपुत्त अइवल महंत ते पुण णरहिय जममुहि पडंत।

4. A, K, N, करंतहं 5. A, अप्पाणउं 6. A, K, N, करंतहं 7. A, K, N, सुमरंतहं 8. A, K, N, जीवहं 9. K, वलाद्दहि

4. 1. K, करिसइं 2. A, K, N, कुवलयर 3. A, K, कहिं 4. A, K, कहिं 5. A, K, N, कहिं *ण रहिय पाठ को संयुक्त पद मानते हुए णरधिप का अपभ्रंश णरहिय बनता है। णरहिय पाठ लेने से पाठ के अर्थ की संगति बैठ जाती है।

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

पद) को नहीं जानता है, शोक में हिताहित को नहीं जानता है, शोकवाला व्यक्ति लोक में तिरस्कृत होता है, शोक से यशकीर्ति मैली हो जाती है, शोक से व्यक्ति अपने आपको क्षीण करता है, जिनशासन में शोक भी तिरस्कृत किया गया है।

राजा ने कहा – हम सबके लिए क्या करना चाहिए? शोक करते हुए कुछ भी लाभ नहीं है, भव्यजन की तरह स्वभाव का चिन्तन करना चाहिए। विधि के विवाद को उत्कृष्ट आदेश देता है। सभी लोग यमपुरी जायेंगे, क्योंकि मंत्र औषधि आदि कोई भी नहीं बचा सकता है। जब तक बंधा हुआ आयुष्यकर्म है, तब ही भोग करते हुए जीवन है। मूर्ख मन में अत्यधिक आकुल-व्याकुल होता है और शोक में रत होकर हृदय और सिर को ताड़ित करता है। श्रेष्ठ ज्ञानी के लिए शोक छोड़ना चाहिए और पुनः इसकी उत्पत्ति न हो ऐसा अपने आपको मंडित करना चाहिए। अपने मन में धर्म, विवेक और ज्ञान का ध्यान करो, जिनेन्द्र की वाणी को अपने मन में लाओ, तत्त्वों पर श्रद्धान करते हुए, पंच नमस्कार मंत्र का स्मरण करते हुए जो प्राणी जितने दिन जीवित रहता है फिर वह यमपुरी शुभभाव पूर्वक प्रस्थान करता है।

घत्ता–अर्द्धवर्ष (छह मास) तक अपने मृतक भाई श्रीकृष्ण को कंधे पर चढ़ाकर भ्रमण करते रहे, उन बलभद्र (बलदेव) ने क्या पाया, अतिशोकातुर हुए जो सभी को ज्ञात है।

खंडक–अथवा मृत्यु सुन्दर नहीं है और यदि जीवित हुआ, तो वन में प्रद्युम्न की तरह भूताविष्ठ होता हुआ गुफाओं की ओर प्रस्थान करता है।

4. संसार की असारता

पूर्वार्जित कर्मविपाक के अनुसार प्राणी (देहु) सुख-दुःख को प्राप्त किया करता है। क्यों? स्वयं हर्ष विषाद किया करते हैं। विधि के सदृश ही जीव को संसार में गति होती है। हम सबकी रक्षा कौन करे? समय आने पर शरीर कृश और राख होगा।

पूर्वकाल में यह पृथ्वी किसने नहीं भोगी अर्थात् बहुत से राजा हुए और अपने समय आने पर काल कवलित हुए। कहीं-कहीं प्रतिनारायण रावण जो अतिप्रचंड था, जहाँ उसने श्रेष्ठ शत्रुबल को खंड-खंड किया। जो विद्वान् की पंक्ति में था, वह भी धर्मराज के द्वारा आयु के अंत में सेवित किया गया, जो लाखों का घात करता है पुनः स्वयं मृत्यु को प्राप्त करता है। क्या कोई भी अन्य पुरुष बचता है।

चौदह कुलकर, पुनः चक्रवर्ती, पृथ्वी का भोग करके अनाथ हुए। नौ नारायण, नौ प्रतिनारायण और नौ बलभद्र, चौबीस कामदेव, समुद्रविजय आदि दस यादववंशी राजा एवं

www.vitragvani.com

जइ भुंज्जिज्जइ महि एयच्छत्त तो पुण जमु भक्खइ एहु गत्त।
णिय–णिय सुहु वंछइ सव्वु कोवि विणु धम्में णउ पाविय सोवि।
मरणहो वीहइ संसारि जीउ तोवि ण छुट्टइ जगि परमजीउ।
अह किज्जइ णिव पायालि भवणु किं जीविउ रक्खइ तोवि कवणु।
जाइज्जइ जइ सुरणाह सरणु तो णवि को रक्खइ जीवमरणु।
जइ वज्जहो पंजरि पइसरेहि तो विण छुट्टिज्जइ कालएहि।
जइ किज्जइ दुग्गमि जलहि[6] वासु तो तित्थु जि आवइ काल पासु।
अह भोयराउ हुंतउ पयंडु[7] किं णवि रक्खिउ जम आउ दंडु।

घत्ता– इय जाणिवि धम्मसेण णिवइ वरतणु सोउ ण किज्जइ।
मणि झाइज्जइ दंसणरयणु जहि संसारु तरिज्जइ।।

खंडयं– इय वयणहि मणि मण्णियं सोउ वि तहि[8] अवगण्णिय।
जाम राउ पुणु अच्छइ अरुहक्खरइ पयच्छइ।। ४।।

5

णंदणु हरिवरु वणि गउ लेप्पिणु[1] गुणदेविहि यउ वयण सुणेप्पिणु[2]।
सुय विउय अइसोयइं[3] भिण्णी हा हा हा पभणइ मणि दुण्णी[4]।
हा विहि किं जीवंतु मरंतउ[5] कोवि ण याणइ सुय गुणवंतउ।
हा हा मइ[6] मिल्लिवि कहि पत्तउ[7] पइं विउय सिहि महु मणु तत्तउ।
हा पइं विणु घरु–पिउ वण सरिसउ महु परिहासइ जइ तुहु वणि गउ।
णित्तंसुयजलु किम परियलियउ णं अयालि गुरु पावसु सरियउ।
हा पइं पिणु हउं वंझ समाणिय हा पइं विणु हउं णउ महिराणिय।
खाणु–पाणु–तंबोल वि लेवणु अंग ण्हाणु पुणु रइसुहु सेवणु।
पइं विणु भासहि जलण समाणा तणु जालिज्जइ विणु गय पाणा।
पइं विणु रयण वीठुकें भासइ कंटयाइ रोहणु मणु[8] तासइ।
पइं विणु चमरवाउ किं सीसइ णं जुय असिवराइव तणु भीसइ।

---

6. K, जलहिं 7. N, पयंडुं 8. A, कुवलतहिं।

5. 1. A, K, N, लेपिणु 2. A, K, N, सुणेपिणु 3. A, N, °सोयइ 4. N, दुण्णीं 5. A, मरंतंउ
6. K, मइं 7. A, K, पत्तउं 8. A, K, N, भणु।

पाण्डुपुत्र (पाण्डव) जो अतिबलवान थे, फिर वे सभी यमराज के मुँह में गये। यद्यपि जो एक छत्र (शासन) पृथ्वी पर भोग किया करता है तो भी यमराज उसके शरीर को नष्ट करता है। अपने-अपने सुख की सभी इच्छा करते हैं, वह सब कुछ बिना धर्म के नहीं पाया जा सकता है। जब तक इस संसार में जीव को मरण का भय रहता है, तब तक श्रेष्ठ जीव भी बंधन मुक्त नहीं हो पाता है। अथवा हे नृप! पाताल लोक में भवन का निर्माण किया जाये तो भी क्या कोई जीव की रक्षा कर सकता है? यदि देवराज इन्द्र (सुरनाथ) के पास शरण के लिए जाया जाये तो भी जीव की मरण से रक्षा नहीं कर सकता है। यदि कठोर पिंजड़े में प्रवेश करते हो तो काल (मृत्यु) के बिना मुक्ति नहीं हो सकती है। यदि ऐसे स्थान पर जहाँ जाना कठिन हो, दुर्गम समुद्र में निवास करो तो वहां भी मृत्यु का पासु (बंधन) आता है अथवा प्रचण्ड भोजराज हुए लेकिन क्या आयु के दंड से रक्षा कर पाये अर्थात् नहीं कर पाये।

घत्ता—इस प्रकार नृपति धर्मसेन जानकर कुमार वरांग का शोक मत करो। मन में सम्यक्‌दर्शन रूप रत्नत्रय का ध्यान करो, जो संसार से तारने वाला है।

खंडक—इस प्रकार के वचन मन में मानकर, शोक की भी अवमानना करता है। पुनः राजा भलीभांति विद्यमान होता है और पूजा के योग्य पूज्य को अर्पण करता है।

5. माता—गुणदेवी का पुत्र विरह

श्रेष्ठ घोड़ा पुत्र (वरांग) को लेकर जंगल में गया, गुणदेवी के द्वारा इस प्रकार के वचनों को सुनकर पुत्र—वियोग के अतिशोक से टूट गई। मन में हाय-हाय करके दूनी टूट गई। हाय! कोई विधि है? जो मरे हुए गुणवान पुत्र को जीवित कर दे, कोई भी नहीं जानता है।

हाय! मैं मिलन के लिए तुम्हें कहां प्राप्त करूं? तुम्हारे वियोग से मेरा मन अग्नि जैसा तप्त होता है। हाय! तुम्हारे बिना प्रिय घर भी वन के सदृश दिखाई देता है, यदि तुम जंगल में गये तो मेरा परिहास होता है। नेत्रों से आंसुओं का जल निकल पड़ा है मानो अकाल में ही मूसलाधार वर्षा से नदी बह रही है। हाय! तुम्हारे बिना मैं बांझ के समान हूँ। हाय! तुम्हारे बिना मैं महारानी नहीं हूँ। खाना, पीना एवं पान का सेवन तथा अंग स्नान का लेपन, फिर रतिसुख का सेवन आदि तुम्हारे बिना जलन के समान भासित होते हैं। तुम्हारे बिना रतन भी बेढुक जैसा भासित होता है। कांटे आदि से जैसे अटकाव होकर मन त्रसित होता है। तुम्हारे बिना चमर की वायु वध जैसा करती है मानो एक साथ अनेक श्रेष्ठ तलवार से शरीर को भयभीत किया गया हो। तुम्हारे बिना घर सूना है एवं नगर की नौका को चलाने वाले उपकरण विशेष के अभाव में

www.vitragvani.com

पइं विणु सुण्णउ घरु पुरुरावलु पइं विणु माणसु हूयउ वावलु।
पइं विरहाणल सुण्ह जलेसहि अहवा वर जि ण दिक्ख लएसहि।
महु घरु होसइ गहण सरिच्छउ पइं विणु महु जीविउ मा अच्छउ।

घत्ता– हा कुंदुज्जल कित्ति जसु हा मण सियसमसुंदर।
हा हा वरंग तुह कहि गयउ पइ विणु सव्वुअसुंदर।।५।

6

खंडयं–इय करुणा य चवंतिया, धम्मसेण णिव पत्तिया।
सुयमोहें विद्दाणिया, पडिय दडत्ति वराणिया।।

महि णिवडिवि गय मुच्छा पवण्ण कर–कंकण–केउरहि रवण्ण।
पासट्ठि एहि पुणु धरिय देवि हा हा पभणंतिय सहिय केवि।
पुणु सिंचिय पय चमराणिलेण अण्णु वि मलयाइर परिमलेण।
पुणु उट्ठिय चेयणभाउ पत्त पुणु पुणु रोवइ सोएण रत्त।
तहि सोउ करंतह[1] णयर–णारि सयल वि आविय गुणदेवि वारि।
आयउ अंतेउर रणकणंतु पायइ णेवर सद्दइ कुणंतु।
आयउ पुरलोउ महाणु भाउ सज्जण जण वरसिक्खा सहाउ।
झूरंतिय सा पिक्खिवि मणेण सुय–सुय भणंति कम्महो वसेण।
तिय पुरिस पराइय जेवि जेवि धाहाविय सयल वि तेवि तेवि।
जो णरु सकयत्थउ लोय होइ तहो कारणि सोउ ण करइ कोइ।
पुणु सा संबोहिय पंडिएहि वरभाविय तत्तु वियाणएहि।
पुणु मालइ माला सरिस वाहु णियकंतहि णेह णिवद्ध गाहु।
णं सुर अच्छरगणु इत्थ पत्ति वरतणु राणिय पिय पायभत्ति।
णिसुणिउ णियकंत विउउ जाउ हा विहि किं हउं सोहग्ग भाउ।
हा णाह–णाह पभणंतियाइ सोयाउर धाहावंतियाइ।
हा अम्हह[2] जोवणु गउ णिरत्थु[3] जं लद्धिय कुरयइ[4] इह अवत्थु[5]।
हा विहि किं पाडिउ पवि णिहाउ अम्हह[6] सिरउवरहि हरिउ राउ।

6. 1. A, K, N, करंतहं 2. N, अंम्हहं A, K, अंम्म्हहं 3. A, K, N, ण्णिरत्थु
4. A, K, N, गुरयइ 5. A, अवंत्थु 6. A, K, N, अंम्हह

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

नगर सूना है। तुम्हारे बिना मनुष्य पागल हो गये हैं, तुम्हारे विरह की अग्नि में वधुएँ जलती हैं। अथवा वर (पति) के न दिखाई देने पर लवलीन नहीं होती है, मेरा घर ग्रहण सदृश हो गया है, तुम्हारे बिना मेरा जीना अच्छा नहीं है।

घत्ता–हाय! कुन्द के पुष्प के समान उज्ज्वल कीर्ति और यश, हाय! तुम्हारा सीता के समान सुन्दर मन है। हाय! हाय! हे वरांग तुम कहाँ गये, तुम्हारे बिना सब कुछ असुन्दर लगता है।

6. पुत्र विरह से पीड़ित गुणदेवी को समझाना

खंडक–इस प्रकार अपने पति धर्मसेन से करुणा से कहते हुए पुत्र-मोह से जो विदीर्ण हो गई है, वह श्रेष्ठ रानी शीघ्र ही गिर पड़ी।

जिसके हाथों में कंगन और केयूर नामक आभूषण रमणीक थे, पृथ्वी पर गिर करके मूर्च्छा को प्राप्त हो गई। इस प्रकार पुनः पार्श्व में देवी को रखा गया, हाय हाय कहते हुए किसी ने सहारा दिया। पुनः दासियों द्वारा चमर की हवा और दूसरा मलयागिरी के पराग से मुँह सिंचित किया गया, फिर उठकर चेतनभाव को प्राप्त किया, पुनः शोक में रत होकर रोती है। वहां शोक करते हुए सभी नगर के नर-नारी गुणदेवी के द्वार पर आये। अंतःपुर में शब्दों की ध्वनि एवं पैरों में पहने हुए नुपुर ध्वनि करती हुई अंतःपुर में आई। नगर के श्रेष्ठ महानुभाव सज्जन आते हैं, जिनका स्वभाव श्रेष्ठ शिक्षा देना है। क्षीण होते हुए हृदय से उसको (गुणदेवी) देखकर जो कर्म के वशीभूत पुत्र-पुत्र कह रही है। जो-जो स्त्री-पुरुष भी वहां आये, उन सभी ने हाहाकार दुःख व्यक्त किया।

जो मनुष्य सकल मनोरथ सहित लोक में रहता है, उसके कारण वह कोई शोक नहीं करता है। पुनः वह (गुणदेवी) पंडितों (विद्वानों) के द्वारा संबोधित की गई कि तत्त्वों के विज्ञान के द्वारा श्रेष्ठ भावों से युक्त हो (धारण करे)। जिसकी मालती के पुष्प की माला की सदृश भुजाएँ हैं और अपने स्वामी की बाहों में स्नेह और प्रेम में निबद्ध है, मानो अप्सराओं के समूह के बीच सुरेन्द्र पति रूप में हो। वरांग की रानियों ने प्रिय की भक्ति प्राप्त की, अपने स्वामी के वियोग को सुनकर–हाय विधाता ने मेरे सौभाग्य का क्या किया? हाय! नाथ-नाथ कहती हुई, शोकातुर होकर, हाहाकार किया करती हैं। हाय! हमारा यौवन निरर्थक हो गया, जो पुष्प जैसी यह अवस्था प्राप्त की। हाय विधाता ने किस प्रकार वज्र का प्रहार किया है, हमारे माथे की छत्र-छाया रूप राजा का हरण

www.vitragvani.com

हा विहिणा हियवउ वज्जु[7] घडिउ सयक्खंडहो वि यहि किण्ण[8] पडिउ।
हा पइ विणु भग्गी छत्त–छाय कहि गउ कहि गउ पियकरणि[9] राय।

घत्ता– अम्हहं[10] तुव विलाससर हंसु व कीडंतउ उवरि।
किण्ण[11] गहि किण्ण[12] गहि भणिवि हियवउ कुट्टहि णियय करि।।६।।

7

खंडयं– कवि उत्तमतणु ताडए, कवि सिररुह महि पाडए।
कवि कंकणवलहारयं महियहि[1] घित्त सुहारयं।।छ।।

कवि महि णिवडिय विहलंघ गत्त वरद्दत्त विउय हुयास तत्त।
चेयण मुच्छा हुय वार–वार तिय वि लवंतिय णाणापयार।
उट्टंत पडंतिय सुण्ह तेवि गुणदेविय[2] गय णिवपुरइ लेवि।
सयलु वि अंतेवरु सयलु लोउ सयलु वि भडमंतिय कय विवेउ।
जहि घायउ तववलि मोहु–मल्लु जहि हणिउ पयंडउ तिक्कसल्लु।
हरिसुउ मारिवि किउ खंडु[3] खंडु जो जम–मयगल–केसरि पयंडु।
जे परमरिसी सरणमहि[4] पाय जहि दुद्धर णिहणिय रोसराय।
जो सुहयरु संभव कय विउंय कम्मारि हणिय णिच्चल पउंय।
जोवरकेवलपउमाणिवासु जहि जणि पयडिउ सम्मइ पयासु।
जहि महियलि विहियउ धम्मतित्थु जहि सेवंतह हुइ णरु कयत्थु।
जो तिण–कंचण कय सरिस भाउ रिउ–मित्त उवरि णिम्मलसहाउ[5]।
जो दोस्सट्ठारह रहिउ वीरु जहि लद्धउ चउगइ जलहि तीरु।
तहो चेइ[6]हरि गउ धम्मसेणु जणपरियरियउ हय वयरिसेणु।
सयलहि वंदिउ जिण पडिमबिंबु णिय तेयइ जियससियक्कबिंबु।
जय जयसद्दहि णाणापयार थुय करिवि हरिवि मलु भवअसार।

7. N, वजु 8. A, K, N, किंण्ण 9. A, K, N, पियकरिणि 10. A, K, N, अंम्हंहं
11. A, K, N, किंण्णा 12. A, K, N, किंण्णा

7. 1. A, मंहियलि 2. N, गुणदेविंय 3. N, खंड 4. A, मूहि 5. A, K, N, णिमल
6. A, K, N, चेई

www.vitragvani.com

किया है। हाय! विधाता हृदय वज्र के जैसा बना हुआ है, यह छह खंडों का दर्द यहीं पर क्यों गिरा दिया है? हाय! स्वामी के बिना हमारी छत्र-छाया ही नष्ट हो गई है। हे प्रिय रानियों के राजा! तुम कहां गये, कहां गये?

घत्ता–हमारे लिए तुम आनंदमय क्रीड़ा के सरोवर हो, जिस पर हम हंस की तरह क्रीड़ा करते हैं। क्यों नहीं ग्रहण करते हो (असक्त होते)? क्यों नहीं ग्रहण करते हो?

7. वधुओं का विरह

खंडक–कभी उत्तम शरीर को ताड़ित करते थे, कभी सिरों के ऊपर के बाल जमीन पर गिराते थे, कंगन, हार आदि पृथ्वी पर फेंककर सुख का उपभोग करते थे।

अभी यह व्याकुल शरीर भूमि पर पड़ा रहता है, युवराज वरांग का वियोग अग्नि के ताप जैसा है। स्त्रियां नाना प्रकार से बड़ा-बड़ाकर बार-बार चेतन और मूर्च्छित होती हैं, वहां पर बधुएँ उठती और गिरती हैं। गुणदेवी उनको लेकर अपने नगर (राज्य में) पहुंचती हैं। अंतःपुर में सभी प्रजा विद्यमान है, सभी योद्धा (वीर) मंत्री भले-बुरे या सत्-असत् का ज्ञान कराते हैं। जैसे मुनिराज तप रूप बल से मोह रूपी मल को नष्ट करते हैं अथवा जैसे प्रखर तीन प्रकार की शल्य (माया, मिथ्या एवं निदान) को हनन करते हैं, जैसे मदोन्मत्त हाथी को प्रचण्ड सिंह का पुत्र मारकर खंड-खंड कर देता है। उन परम ऋषि के शरण रूप आधार पाकर के जैसे राजा दुरूह क्रोध को जीतता है, जो वियोग से सुख होने की संभावना करते हैं, जो श्रेष्ठ केवलज्ञान रूप लक्ष्मी का निवास है। जैसे लोगों में सम्यक्त्व रूप प्रकाश प्रगट होता है, जैसे पृथ्वीतल पर धर्मतीर्थ का प्रवर्तन (निर्माण) होता है, जिसको सेवन करते हुए नर कृतार्थ होते हैं, जो तृण और कंचन में समान भाव रखते हैं, रिपु और मित्र के ऊपर निर्मल स्वभाव रखते हैं। जो वीर (महावीर) अट्ठारह दोषों से रहित हैं, जिन्होंने चतुर्गति रूप समुद्र को पार किया है। वहां धर्मसेन भगवान् के चैत्यालय गये। जैसे शत्रु की सेना को लोगों ने घेर कर मार दिया हो। सभी के द्वारा जिनदेव की प्रतिमा के बिम्ब की वंदना की गई। जैसे चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब का अपना तेज हो (चाँदनी हो)। नाना प्रकार से जय-जय के शब्द किये गये, भव रूप असार मल को हरकर स्तुति की।

घत्ता–पुनः शांतिनाथ जिनदेव की स्तुति करके योग्य श्रेष्ठ ऋषि को परिपालित किया। वह श्रेष्ठ ऋषि रानियों, प्रजापालक और प्रजा (जनपद) के मध्य उपदेश करते हैं।

घत्ता– पुणु संति जिणिंदहो थुय करिवि रिसिवर पुरइ णिविट्ठउ।
रिसि भासइ कंत पुराहिवइ जणवइ मज्झि गरिट्ठउ।।
खंडयं– कोवि ण वल्लहु पिक्खयं, णिय–णिय कज्ज वियक्खयं।
णेहु करिसुप्परि वद्धयं, जणु जीविय धण लुद्धयं।।७।।

8

किं हरिस–विसाउ कुणंतएण पाविज्जइ णियकम्मोदएण।
धण जीविय रइकामहो[1] णिराय कोवि ण तिप्पइ जिम अग्गिच्छाय।
जणु सयलु अतिप्पइ गयउ आसि भाविय अमुणंतउ कम्मपासि।
जाएसहि अवर वि धम्महीण संपइ वि अतिप्पहि पावलीण।
जइ किज्जइ गरुय विसाउ णिच्चु तो पुण णावइ मूयउ अणिच्चु।
मा करहि सोउ णिव णियमणम्मि हरिवप्पु व आवेसइ घरम्मि।
सुय पुण्णें लब्भइ परम सोक्खु[2] पुण्णें[3] फेडिज्जइ सव्व दोक्खु।
सुहु–दुहु जीवह जगि देइ कवणु णिय कम्मु उवज्जिउ जम्मु[4] भवणु।
पावें जं जं आवइ अवत्थ तं तं समग्ग सहियइ समत्थ।
पुण्णें घरि दुज्झइ कामधेणु पावें जणु कोवि ण देइ वयणु।
गय–णयर–कप्प सण्णिह हवंति वल्लह संगमु विहडेवि जंति।
धणु जोव्वणु जलवुव्वुय समाणु खणु भंगुरु तडि समु सुहि पमाणु।
फेणु व णिस्सारउ मणुय जम्मु इय जाणिवि किज्जइ णिवइ धम्मु।
रिसि वयणइ मणियाणंदु जाउ लहु णरवइ मण णट्ठउ विसाउ।
पुणु रिसि संबोहइ जिय मयच्छि वरतणु तिय सोयाउरइ पिच्छि।
भो सुणहु पुत्ति णिच्चल मणेण तुह[5] कंतु वि णि उहयवरि वणेण।
सो आवेसइ कइवइ दिणम्मि मा करहु सोउ णिय–णिय मणम्मि।
सोएण ण यावइ तुम्ह कंतु सोयइ पाविज्जइ पाणयंतु।

घत्ता– अण्णु[6] वि बहुयइ वयणइ भणिवि ते संबोहिय जयवरेण।
संबोहिय णिव–णंदण–जणणि गिरिव धीरुधम्मायरेण।।
खंडयं– णिउ णमिऊण मुणीसरं गेहि पत्तु अवणीसरं।
जुय पउ दिण्णु सुखेणयं गरयउ किद्धु सुसेणयं।।८।।

8. 1. A, रइं 2. A, K, N, सोखु 3. N, पुणें 4. A, K, N, जुम्म 5. A, K, N, तुहं
6. A, K, N, अंण्णु

www.vitragvani.com

खंडक–इस संसार में कोई भी प्रिय नहीं दिखता है, सभी अपने-अपने कार्य में निपुण हैं, सभी स्नेह के (गोबर में) आकर्षण से बंधे हुए हैं, व्यक्ति धन के लोलुपता के लिए जीता है।

8. मुनिराज का श्रेष्ठ उपदेश

क्यों? हर्ष और विषाद करते हो क्योंकि यह तो अपने कर्म के उदय से प्राप्त होते हैं। धन, जीवन और रतिकाम आदि विषय सेवन से निराग हो जाओ क्योंकि कोई भी आगे की इच्छाओं को तृप्त नहीं कर पाता है, सभी इच्छाओं से असंतुष्ट रहते हैं। भव्यजन कर्म के बंधन को जानते हैं, अन्यथा वे भी धर्महीन हो जायेंगे। सम्पत्ति की अतृप्ति से पाप में लीन हो जायेगा। यदि उत्कृष्ट विषाद को नित्य किया करता है तो मानो उसने अनित्यता छोड़ दी है।

हे राजन्! अपने मन में शोक (दुःख) मत करना। बेचारे घोड़े के उपकरण की तरह वह भी घर पर आयेगा। पुत्र के पुण्य से परम सुख की प्राप्ति होगी, पुण्य (प्रताप) से सभी दुःख विनाश को प्राप्त हो जाया करते हैं। सुख-दुःख जीव को संसार में कौन देता है, अपने भव में उपार्जित कर्म देते हैं। पाप से जो-जो अवस्था आती है, उसको सभी को सहन करने की समर्थ (शक्ति) होना चाहिए। पुण्य से घर में दुहने योग्य कामधेनु होती है, पाप के उदय से कोई व्यक्ति वचन भी नहीं बोलता है, गगनचर और कल्पवासी भी होते हैं, गज, नगर और युग समान होते हैं।

जैसे वल्लभ (पति) का वियोग होता है, धन-यौवन जल के बुलबुले के समान होता है, सुख का प्रमाण भी बिजली की तरह क्षणभंगुर होता है, झाग की तरह मनुष्य जन्म निरर्थक/निस्सार रूप है। इस प्रकार जान करके हे राजन्! धर्म को करना चाहिए। ऋषि के वचनों को सुनकर राजा का मन आनंदित हुआ, शीघ्र ही नरपति (राजा) ने मन के विषाद को नष्ट किया। पुनः ऋषि ने मृग के समान नेत्रों वाली वरांग की स्त्री जो शोकातुर थी पश्चात् उसे संबोधित किया। हे पुत्री! निश्चल मन से सुनो–अपने मन में शोक मत करो। शोक करने से तुम्हारा पति नहीं आयेगा, शोक से प्राणों का अंत हो जाया करता है।

घत्ता–श्रेष्ठ मुनि के द्वारा अन्य बहुत से वचनों को कहते हुए संबोधित किया गया। राजा, राजा के पुत्र, मां को संबोधित करते हुए मुनिराज ने कहा कि पर्वत की तरह धैर्य रूप होकर धरण करके का आचरण करो।

खंडक–वह राजा (धर्मसेन) श्रेष्ठ मुनि को नमस्कार करके अपने घर को पहुँचा। उसने सुखपूर्वक श्रेष्ठ युवराज पद सुषेण को दिया।

www.vitragvani.com

9

तहि[1] चेयालउ णरवइ करेवि वर सिक्खइ सुय कामिणिहि देवि।
तहि ण्हवण[2] पूयचेई हरम्मि विहि जुत्त करहि ते दिण–दिणम्मि।
पिक्खहु–पिक्खहु भाविय[3] विवाउ जुय पट्टि णिहित्तु वरंगु राउ।
सो विहि उम्मूलिवि णिउ पएसि वणि घल्लिउ सो गउ अण्णदेसि।
जुयरायउ जाउ सुसेण पुत्तु विहि सरिसउ अवरु ण कोवि धुत्तु।
इत्तहि महुराउरि इंदसेणु णिउ अच्छइ पुत्त उवेंदुसेणु।
सहु पालइ णिय सत्तंगु रज्जु[4] अरि–महिहर–सिर सोयामणिज्जु[5]।
अवरहि दिणि हरिआसणि णिसण्णु सहमज्झि[6] परिट्ठिउ णाइ विण्हु।
ता भणइ मंति कुलकमलभाणु णिव वयणु महारउ करि पमाणु।
ललिताहणयरि पहु देवसेणु णियबलि हय परचक्कियहं सेणु।
तहु घरि अच्छइ गिरिवर समाणु गुरुणाउ करइ गंडयलिदाणु।
णियबलि भूरुह भंजण समत्थु तेयइ तासिय करिवरहं सत्थु।
गयवरु रेहइ[7] णं सुरकरेंदु णं करिवर–महिहर–महिहरिंदु।
सो गयवरु लिज्जइ लहु छलेण अह मंगिवि अहवा णियबलेण।
इय वयणु सुणेप्पिणु[8] भणइ राउ मइ अग्गइ थक्कइ को वराउ।
णियबलि लेसमि गयवरु पयंडु अण्णु वि मग्गेसमि लच्छि दंडु।
इय वयण सुणिवि भडसत्थ वुत्तु णवि किज्जइ णरवइ इय अज्जुत्तु[9]।
पढमइ पेसिज्जइ दूव इक्कु मंगिवि लिज्जइ हत्थिउ गुरुक्कु।
जइ अप्पइ तो तहो होइ संति ण तो संगरि णिग्गहु करंति।
तं णिसुणिवि पेसिउ मणि विवेउ[10] वर सिक्खइ दाविवि सामभेउ।
सो गयउ वहूहर[11] सिग्घु तित्थु पहु णिज्जर–सेणु वइट्ठु जित्थु।
जाइ वि णवयारिउ राउ तेण वुच्चइ धरवइ पट्ठविउ केण।
ता कहइ वहूहरु[12] णिसुणि देव जो दुद्धरु कय मंडलिय सेव।
महुरापुरि सुरवइसेणु राउ तहो तणउ दूउ हउं इत्थुयाउ।

9. 1. A, K, N, तहिं 2. K, ण्हवण्ण 3. N, भविय 4. K, रजु 5. A, सोवाम॰ 6. K, मब्भि 7. A, K, N, रेहइ 8. A, K, N, सुणेपिणु 9. A, K, अज्जुत्तु 10. A, K, N, विवेइ 11. A, K, N, वउहर 12. A, K, N, वउहर

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

9. सुषेण को युवराज पद

वहां नरपति चैत्यालय की वंदना करता है। पुत्र, कामिनी एवं देवी भी श्रेष्ठ शिक्षा को धारण करती है। वहां चैत्यालय में जिनेन्द्रदेव का अभिषेक करके जिनेन्द्रदेव की पूजा करते हैं। विधाता के द्वारा विधित (भाग्य) के साथ उपर्युक्त कार्यों को दिन-दिनों तक करते रहना चाहिए, देखते-देखते कर्म फलभाव से युक्त होता है। वरांग कुमार के रखे हुए आसन पर सुषेण आसीन होता है, उसने विधि के विधान को अपने पद से जड़ से फेंक करके, जंगल में डालकर, उसको अन्य देश में भेजा, युवराज पद पर सुषेण पुत्र स्थापित हुआ। विधि के विधान के सदृश कोई दूसरा धूर्त नहीं है।

इस प्रकार मथुरापुरी का राजा इन्द्रसेन था और उसका पुत्र उपेन्द्रसेन भी विद्यमान था। अपने सप्तअंग रूप (राजा, मंत्री, कोश-भण्डार, देश, किला, मित्र तथा सैन्य) राज्य का परिपालन किया करता था। शत्रु एवं महीधरों के सिर जिसके सामने झुकते हैं, वह इन्द्र के प्रीत्यर्थ एक यज्ञ का आयोजन करता है। जब वह राजा सभा के मध्य आसन (सिंहासन) पर बैठता है तो मानो विष्णु के समान प्रतीत होता है। कुल-कमल-सूर्यरूप राजा मैत्री से हाथी के प्रमाण की बात कहता है।

ललितपुर नगरी का राजा देवसेन था, जिसने अपने बल से शत्रुराजा और शत्रु सैन्य को नष्ट किया था, उसका महल (धरि) पर्वत के समान ऊँचा विद्यमान था, जो हाथी के मद (दाणु) के समान गुरुता रखते हैं, अपने बल से वृक्ष को नष्ट करने में समर्थवान् है, श्रेष्ठ हाथियों के तेज से जो शोभित है। उनके पास एक हाथी था, वह श्रेष्ठ हाथी मानो सुरेन्द्र का ऐरावत हो, मानो देवसेन श्रेष्ठ हाथी सहित श्रेष्ठ महीपतियों में इन्द्रतुल्य था। इन्द्रसेन कहता है–वह श्रेष्ठ हाथी शीघ्र ही छल से मांगकर या अपने बल से ग्रहण किया जायेगा। इन्द्रसेन एक दूत देवसेन के पास भेजता है और वह दूत देवसेन के समक्ष अपने राजा के प्रस्ताव को रखता है। इस प्रकार के वचनों को सुनकर राजा देवसेन कहता है–कौन भाग्यहीन इस प्रस्ताव को स्वीकृत करेगा। अतः मेरे द्वारा यह प्रस्ताव किया जाता है कि अपने बल से लेशमात्र भी श्रेष्ठ हाथी को नहीं दिया जायेगा और अन्य भी लक्ष्मी का दंड मागूंगा। इस प्रकार के वचनों को सुनकर समर्थशाली वीर ने कहा–राजन् यह तुमने अच्छा नहीं किया। हाथी को माँगकर लाने के लिए प्रथम तो उसने एक दूत भेजा था। यदि (हाथी) अर्पित करते हो तो दुःखादि से रहित शान्ति होगी, नहीं संग्राम पर नियमन करते हुए उपस्थित हो।

www.vitragvani.com

घत्ता– ता दूवइ दिण्णउ, लेहु तहो वाइवि महियलि मुक्कउ।
सो इंदसेणु माणसु कवणु मग्गइ हत्थि गुरुक्कउ।।

खंडयं– तो हउं देमि गयेंदयं,[13] णियरव तासिय दिग्गयं।
जइ महु केर समिच्छए अवरु विआण पडिच्छए[14]।।६।।

10

इय[1] वयणु सुणिवि पुणु दूव वुत्तु भो भो णिवपइ जंपिउ अजुत्तु।
सो पंचाणणु तहु वारणिंदु सो पविसमु तुहु पुहवी हरेंदु।
पइ[2] जलण जाल सो वारिबाहु तुह पुहवी तुह सो सरिपवाहु।
मा करहि णिरत्थउ कोहु राय पाविज्जइ पोरिस समरत्थाय।
मयगलु अप्पंतह संति होइ ण तो समरंगणु करइ सोइ।
जच्चंतह अप्पिज्जइ सुवत्थ णउ पाविज्जइ मरणहो अवत्थ।
इय वयणु सुणिवि कोहें पलित्तु णं केण हुयासुघएण सित्तु।
जज्जाहि दूय रे रे णिलज्ज णियसामियपोरिसु लवहि अज्ज।
किं मारमि पइ घरि बलविहीणु दूउ वि णउ घायउ कहिमि दीणु।
णउ अप्पमि वारणु तुज्झ राय जइ वट्ढइ बलु ते लेहु आय।
गउ दूव सुणिवि इय वयण भाउ जहि सुरवइ सेणुवइ वु राउ।
जइ वि सिरु लाइवि धरयलेण पणविउ जुय कय करयंजलेण।
भो देव ण मण्णइ आण तुज्झ सो दुग्गाहिउ साहण असज्झ।
णउ अप्पइ मयगलु मय समाणु मय मोहें[3] अप्पंतह समाणु।
जो पइं[4] रुच्चइ[5] सो करि णिराय तुहं[6] खग्गि वसइ जयसिरि सुछाय।
इय गिरणि सुणेप्पिणु[7] भणइ राउ मइ अग्गइ परणिव को वराउ।
अहिमाणें[8] अइ मणि धरिवि कोहु आहूय वि मंतिय पुणु वि जोहु।
संगाम तूर दाविय तुरंतु पुण जायउ कोऊहल महंतु।
सज्जिय हरि करि जंपाण जाण कवय वि सज्जिय कय अंग ताण।
वर रहवर सज्जिय पुणु वयल्ल जे भारु वहहि धरंधुर महल्ल।

13. A, K, N, गयदयं 14. A, K, N, पडिच्छइ

10. 1. A, इयं 2. K, तुहं 3. K, मोहे 4. N, पइ 5. A, K, तुच्चइ 6. A, K, N, तहुं
7. A, K, N, णिसुणेपिणु 8. K, अहियाणें

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

घत्ता–तब दूत शीघ्र ही जाता है और श्रेष्ठ हाथी की सम्पूर्ण वार्ता को नृप इन्द्रसेन को कहता है।

खंडक–राजा इन्द्रसेन कहता है–यदि वह मुझे गजेद्र (हाथी) नहीं देते हैं तो मैं उस दिग्गज को नष्ट करूंगा एवं मेरे समान अन्य कौन जाना जाता है।

10. युद्ध के लिए सेना गमन

इस प्रकार (उक्त वचन) को सुनकर पुनः दूत ने कहा–हे राजन्! उन्होंने (देवसेन) उचित उत्तर नहीं दिया है। वह सिंह और उसका हाथी इन्द्र है। तुम्हारी पृथ्वी के हरण के लिए वह चढ़ाई करेगा।

अग्नि की शिखा की तरह उसकी भुजाएँ निवारण करने के लिए तत्पर हुई। तुम्हारी पृथ्वी और तुम्हारा ही वह नदी का प्रवाह है। हे राजन्! निरर्थक क्रोध मत करो। यदि पौरुष है तो सामर्थ्य से प्राप्त कीजिए। हाथी (मयगल) को अर्पित करने से शांति हो सकती है, नहीं तो संग्राम (युद्ध) करना पड़ेगा। कुलीनता पूर्वक सुवस्तु अर्पित करते हो, अन्यथा मरण की अवस्था प्राप्त करो।

इन वचनों को सुनकर क्रोध प्रज्वलित हो गया, मानो किसी ने अग्नि पर घी डाला हो। रे निर्जज्ज दूत! (यहां से) जाओ। अपने स्वामी का पौरुष आज ही कहो। क्यों स्वामी का घर बल विहीन है। हे दीन! तुम्हारे राजा के लिए हाथी अर्पित नहीं करूंगा। यदि बल और शक्ति वृद्धिंगत हो तो ले करके आये। इन वचनों के भाव को सुनकर दूत गया, जहां राजा इन्द्रसेन और सेनापति थे। सिर को पृथ्वी तल पर झुकाकर एवं हाथों की अंजली को जोड़कर प्रणाम करता है। हे देव! तुम्हारी आज्ञा को उसने (देवसेन) नहीं माना।

वह दुष्कर साधन की तरह है जो आसानी से ग्रहण नहीं किया जा सकता है। अभिमान तुल्य उसने हाथी अर्पित नहीं किया। अभिमान के मोह से अर्पित करना मृत्यु के समान है। जो तुमको रुचता हो वह हाथी के लिए करो। तुम्हारी सुन्दर जयश्री तो तलवार में बसती है। इस वाणी को सुनकर राजा इन्द्रसेन कहता है–मेरे आगे कौन जयश्री का वरण करेगा। अभिमान से मन में अत्यधिक क्रोध को धारण करके, मंत्रियों को बुलाकर पुनः निरीक्षण करवाया और संग्राम की दुन्दुभि तुरन्त बजाओ। पुनः कौतूहल पूर्वक महायुद्ध के लिए जाते हैं, घोड़ा, हाथी, और उनकी सवारी सजती है। अंग की सुरक्षा के लिए कवच भी धारण किये, उन्होंने श्रेष्ठ रथ पर

www.vitragvani.com

घत्ता– इय वरसेणइ सज्जि तहि दिण्णु पयाणउ णरवरेण।
जिम आसि राय जरसिंधवलु तिम चल्लिउ खंधारुएण।।

खंडयं– णं समुद्दउ हल्लिउ, भडयणगणु संचल्लिउ।
णाणाविह धरि आउहं भंडण करणइ साउहं।।10।।

11

तहि अवसरि पुरतिय भणइ कावि णियकंतहो अग्गइ सुहड भावि।
भो भो पिय अक्खिरि णिद्द लेवि लहु आविज्जहि वररयण लेवि।
कवि भणइ[1] फलिहं[2] सम उज्ज लाइ आणिज्जहि पिय गय–मोतियाइ।
जिम करिवि हार भूसामि[3] अंगु तो सहलउ सामिय तुज्झ संगु।
कवि भणइ णाह आणहि सुवण्णु अरिउल[4] लुट्टिवि रेहइ सुवण्णु।
कायर–पिय पभणइ णाह णिसुणि आइज्जहि समरणिणाउ णिसुणि
कइवइ दिणि सीयलु जलु पिएहि दुद्धर भडसंगरि मा मरेहि।
इय णिसुणंतह[5] भडयणह सत्थु चल्लिउ पुराउ वंछहि सुयत्थु।
कइ दिणहि पयाणउ दिंतदिंत। णिय देसहो सरि–सरवर मुयंत।
अरिदेसहो मज्झि पयट्टु कडउ गामुव्वस करहि समूहु भडउ।
ताणि सुणिउ सुरसेणइ महंतु अरिवरु संपत्तउ वलधरंतु।
सो सम्मुह जाइवि रहिउ केम गयवर अग्गइ सारंगु जेम।
पुणु णरवइ चिंतिउ णिय मणम्मि वाहुडि पइसिज्जइ णियपुरम्मि
रिउ दुद्धरू अवरूवि वलु असंख किं किज्जइ समरंगणहो कंख
इउ चिंतिवि गड्ढंतरि पइट्ठु सज्जियउ सालु वयरिय अदिट्ठु।
सज्जियइ णालि गोलाइ जाम सत्तहो खंधारु पहुत्त ताम।
चउपासहि वेढिउ णयरु केम संसारिउ कम्मसमूहि जेम।

घत्ता :–सो तुं धिउ पुरवरु परवलहि जहि अच्छइ गुणदेविसुउ।
पहु देवसेणु संकियउ मणे, सुरकरिकर समदीहभुउ।

9. A, K, N, तुरंत

11. 1. N, भणइ 2. A, K, N, कलिहं 3. A, K, N, भूसेमि 4. A, K, अरिउर 5. A, K, N, णिसुणंतहं

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

सवार होकर गमन किया, योद्धाओं ने रथ हांकना प्रारंभ किया।

घत्ता–इस प्रकार श्रेष्ठ सेना सहित राजा के द्वारा इन्द्रसेन गमन किया गया। जिस प्रकार राजा जरासंध बलवान राजा थे वैसे ही सेना ने प्रस्थान किया।

खंडक–जब योद्धाओं का समूह चलता है तो ऐसा प्रतीत होता है मानो समुद्र हिल रहा हो। अनेक प्रकार के आयुध (अस्त्र-शस्त्र) धारण करके कलह की विधि को करने आयुध सहित सेना चलती है।

11. सेना का गमन

इस अवसर पर नगर की कोई स्त्री अपने पति से आगे (भविष्य में होने वाली वीरता) कहती है–हे प्रिय! आखिरी निद्रा को ले लो, शीघ्र राजा लेने के लिए आते होंगे। कोई कहती है–स्फटिकमणि एवं मोतियों के समान तुम निर्मल चमकीले हो। जिस हार आदि से मैं अंगों को सजाती हूँ–हे स्वामी! उनकी सार्थकता तुम्हारे साथ है। कोई कहती है–हे नाथ! सोना लाना। शत्रुओं के कुल पर विजय प्राप्त करके या लूटकर मुझे सोने से सुशोभित करना।

प्रिय पति से कहती हैं कि हे नाथ! सुनो–संग्राम का निनाद सुनकर आ जाओ। कुछ दिनों शीतल जल को पियो, दुष्कर वीर संग्राम में मत मरना। इस प्रकार यहां पर उनके कथन सुनते हुए वीर पति, सुनने के प्रयोजन की इच्छा से आगे आते हैं और फिर सामने चलते हैं। कई दिनों तक दिन-दिन में गमन करते हैं, अपने देश की नदी, सरोवर को छोड़ते हुए आगे बढ़ते हैं। शत्रु के देश के मध्य में वह कूच/छावनी प्रविष्ट हुई। हे भट समूह! गाँव को बस में करो। महान इन्द्रसेन की आज्ञा सुनकर सेना पालन करती है। श्रेष्ठ शत्रुओं को बल धारण करते हुए प्राप्त करो। वहां रथवान, आगे श्रेष्ठ हाथी, घोड़ा आदि को सामने देखकर पुनः राजा (देवसेन) अपने मन में विचार करता है–चलते हुए वह मेरे नगर में प्रवेश हो गए हैं। शत्रु दुष्कर है और बल भी असंख्यात है, युद्ध भूमि की अभिलाषा के अनुसार क्या किया जाये। इस प्रकार छल से अंदर प्रविष्ट हुए को विचार करके शत्रुओं की वाद्य ध्वनि को सजा हुआ देखा। जहां सेना के घिराव का परिमाण सजा हुआ था, शत्रुओं का कूच वहां पहुंचा। इस प्रकार चारों ओर से नगर को घेर लिया, जिस प्रकार कर्म समूह संसार में घेरे रहता है।

घत्ता–दूसरों के बल से वह राजा धैर्य रखता है। जहां पर गुणदेवि का पुत्र वरांग विद्यमान था, जिसकी भुजाएँ ऐरावत हाथी की तरह थी। प्रभु देवसेन मन में शंकित हुआ।

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

खंडयं–तहि अवसरि मंतीयणं, वुल्लावि वि महिरायणं।
भणइ राउ तं किज्जइ, जहि पुरलोउ णच्छिज्जइ।।११।।

12

भणइ मंति वारणु अपिज्जइ	अवरुवि धणु मग्गइ तं दिज्जइ।[1]
अवरु भणइ एहउ णवि सीसइ	मयगल अवसरु णत्थि ण दीजइ।
चिरु जच्चंतह[2] गयवरु उण्णउ	सो तहि दिणि अम्हइणवि दिण्णउ।
किं दिज्जइ किं अप्पइ[3] वारणु	किज्जइ अवरु किंपि लहु कारणु।
अण्णु लवइ साकेयहो राणउ	देवसेणु णरवरह पहाणउ।
सो आणिज्जइ णियय सहायहो	देस कोसबललच्छिसहायहो।
सो रणि जित्तइ रिउबलदुद्धरु	तहो सरिसउ को समरि धुरंधरु।
भणइ अण्णु जयसिरि रणि पाविवि	सो अम्हह वलु लहुयउ भाविवि।
णियपोरिसवलेण महि लेप्पिणु[4]	करइ रज्जु जयतूर हणेप्पिणु।[5]
तो पच्छइ किं किज्जइ[6] णरवइ	जो बलवंतउ सो णिव महिवइ।
इक्कु वयणु हउं पभणमि चंगउ	पइ वणिवइ घरि णाम वरंगउ।
देव देव सो अच्छइ भल्लउ	अरिगिरि सोयामणि व महल्लउ।
जहि चिरु बारहसह सइ घाइय	वणयरगणु वल्लु जम पहिलाइय।
किण्ण[7] मुणहि सुहडह[8] सिर सारउ	सो सहाय किज्जइ गरुयारउ।

घत्ता– पर सो ण मुणिज्जइ कोवि णरु, किं वणि किं णिवणंदणु।
जाणिज्जइ दुद्धरवलसहिउ, रिउ रणि करइणि कंदणु।

खंडयं–पुरवरि दिज्जइ घोसणं पडह सद्दुरण घोसणं[9]।
सुहड वूहु दरसिज्जइ, सइ[10] समरंगणु किज्जइ।।१२।।

---

12. 1. A, दिज्जइं 2. A, K, N, जच्चंतहं 3. N, तहु एवइ किं अप्पइ के स्थान पर पाठ मिलता है। 4. A, K, N, लेप्पिणु 5. A, N, हणेपिणु 6. A, K, किजइ 7. A, K, किंण्ण 8. K, N, सुहडहं 9. A, K, पोसणं 10. A, प्रति में सइं के स्थान पर 'णाहं' पाठ प्राप्त होता है।

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

खंडयं—इस अवसर पर राजा ने मंत्रियों को बुलाकर कहा—वह कीजिये, जिससे परलोक नष्ट न हो।

12. मंत्रियों की मंत्रणा

मंत्री कहता है कि हाथी को अर्पित कर दिया जाये, और भी धन मांगता है तो उसको भी दिया जाये। दूसरा कहता है—यह नहीं हो सकता है, इस अवसर पर हाथी नहीं दीजिए। श्रेष्ठ हाथी के कारण कुल की उन्नति है। वह उस दिन हमें नहीं देना है, क्या दिया जाये? क्या हाथी को अर्पित किया जाये? कोई भी दूसरा कारण शीघ्र ही कीजिये।

अन्य साकेत का राजा कहता है कि देवसेन मनुष्यों में प्रधान हैं। उसे अपने सहायक (सेवक) सेना को आज्ञा देना चाहिए। देश, कोष (खजाना), शक्ति और लक्ष्मी उसकी सहायता करती है, वह दुरूह शत्रुबल को युद्ध क्षेत्र में जीतेगा, उसके समान कोई दूसरा युद्ध में धुरंधर नहीं है।

कोई अन्य कहता है कि रण में जयश्री पायेगा, वह हमारे बल से शीघ्र ही ऐसा भविष्य होगा। अपने पौरुष बल से पृथ्वी को ग्रहण करके एवं हनन करके जय की दुंदुभि बजाकर राज्य करेंगे तो नरपति (राजन) पीछे क्या करना चाहिए जो बलवान होगा, वही नृप महीपति बनेगा। एक बात मैं सुन्दर (वरांग) के बारे में कहता हूँ, वह वणिपति है और घर में उसका नाम वरांग है।

हे देव! वह भद्र पुरुष है, शत्रु रूपी पर्वत के लिए वह बिजली की तरह योद्धा है। जब वह रास्ते में आ रहा था तब उसने बारह हजार वनचर समूहबल का नाश किया था। सुभट के बारे में क्या नहीं जानते हो, वह श्रेष्ठता पूर्वक तुम्हारी सहायता करेगा।

घत्ता—परन्तु उसे कोई भी नर नहीं जानता है कि वह वन में रहने वाला है अथवा वह किसी राजा का पुत्र है। वह उत्कृष्ट (दुर्द्धर) बल सहित है ऐसा जानना चाहिए, शत्रुओं को रण में रुला देगा।

खंडक—उत्तमपुर नगर में घोषणा कीजिए, पताका और रण की घोषणा कीजिए। सुभट (वीर) के व्यूह को देख लीजिए और एक बार युद्ध भूमि में आने दीजिए।

www.vitragvani.com

13

गय पोरिसह[1] णिवइ[2] किं किज्जइ अवजस भायणु जणि पाविज्जइ।
जसविहीणु खलु सचय[3] समाणउ जीवं तोवि मुयउ चिर माणउ।
जइ पुणु लब्भइ जमयहु सासणु तो पुणु जसु जणु करइ पयासणु।
अह सुरतिय पाविज्जइ सग्गहो जइ सुह मरणु होइ रणमग्गहो।
भो णिव खत्तिय–वित्ति धरिज्जइ कइ मारिज्जइ कइ वि मरिज्जइ।
कायरु होइविकित्तिउ अच्छहि पुणु वि मरिव्वउ जइ सुहि गच्छहि।
महु वयणइ पमाणु जणि किज्जइ कलहु करिवि रिउ रणि घाइज्जइ।
इय णिसुणेविणु जणवइ वुच्चइ मंतिय तुज्झ वयणु महु रुच्चइ।।
तहि अवसरि दाविउ सरु पट्टणु णरवइ चल्लिउ रिउदल वट्टणु।
सुणिवि सद्दु वरतणु आघोसइ किं यहु डिंडिमु कारणु पोसइ।
पभणइ इक्कु णिवइ देवाविउ सुहड समूहु तेहि मणि भाविउ।
देवसेणु संगरु धारेसइ पच्छइ को जाणइ किं होसइ।

घत्ता – **ता वयणु सुणिवि मणि चिंतवइ, इहु[4] माउलउहं[5] मारउ।**
हउं करमि कज्जु एयहो[6] तणउ, होसइ सुसरु महारउ।।१४।।

खंडयं– इय चिंतवि जिणभत्तउ, वणिवर पुरइ पहुत्तउ।
पुणु वणिगउ सुय लेप्पिणु[7] अक्खिउ णिवइ णवेप्पिणु[8]।।१४।।

14

देव देव इहु कोवि पएसिउ मइ जणिधम्मपुत्तु उवएसिउ।
आसियालि वणिवरगणु रक्खिउ सो चिर तुम्हइ णिहिलु समक्खिउ।
भवणि महारइ अच्छइ भल्लउ भंजेसइ अरिबल एकल्लउ।
पिक्खु–पिक्खु इहु सुंदरु माणउ वरगोहाण गोहु पुणु राणउ।
सुणिवि वयणु णयणहि अवलोयउ वार वार वरतणु तहि जोयउ।
णिउ चिंतइ इहु को विज्जाहरु कवडत्तु[1] वि अच्छइ वणिवइ घरु।
अहवा भायणेउ महु केरउ महु मणणयणाणंदु जणेरउ।

13. 1. N, पोरिसहं, A, K, पेरिस, 2. N, पुहइ, A, पुघइं K, पुहवइ 3. A, N, सवय 4. A, K, इहुं 5. N, माउलउहं 6. A, उयंहो 7. A, K, N, लेपिणु 8. A, K, N, णवेप्पिणु

14. 1. A, K, N, कवडतू

13. वीरता का स्वरूप

हे पृथ्वीपति! पौरुष गया तो क्या कीजिए, लोगों में अपयश की प्राप्ति होगी। यश से रहित अवस्था गृद्ध पक्षी/भेड़िया के समान है, जीते हुए भी दीर्घकाल तक मान छोड़ना होगा। यदि पुनः इसी शासन की प्राप्ति होगी तो लोगों में यश का प्रकाशन होगा अथवा स्वर्ग के देव सुरेन्द्र की स्त्रीतुल्य स्त्री की प्राप्ति होगी। यदि रणभूमि में शुभ मरण होता है तो हे राजन! क्षत्रिय की वृत्ति को धारण कीजिए, जो अनेकों को मरवाता है और अनेक मर जाते हैं। उत्साहपूर्वक कीर्ति (यश) को रखिए, फिर भी मरना होगा तो शुभ गति में जायेंगे। मेरे वचनों को प्रमाणित कीजिये, युद्ध करके शत्रु को रण में नष्ट कीजिये। इस प्रकार के वचनों को सुनकर राजा कहता है–हे मंत्री! तुम्हारे वचन मेरे लिए रुचिकर हैं। इस अवसर पर नगर से नरपति शत्रु-समूह को भगाने के लिए चल पड़ा। इस दुंदुभि (डोढ़) का क्या कारण है एवं क्या पालना करना है। इस प्रकार एक व्यक्ति ने राजा के आने की बात वरांग देव को कही। वीरों का समूह उसके मन में भावित हुआ। देवसेन संग्राम के लिए जा रहे हैं, पीछे कौन जानता है, क्या होगा?

घत्ता–तब वरांग वचनों को सुनकर मन में चिंतन करता है यह मेरे मातुल (मामा) है। मैं इनके पुत्र का कार्य करूंगा एवं यह मेरे श्वसुर होंगे।

खंडक–इस प्रकार नगर का श्रेष्ठ वणिपति एवं जिनभक्त सागरबुद्धि चिंतन करके फिर वणिक पुत्र को लेकर के गया और नृपति को नमस्कार करके कहता है–

14. राजा देवसेन से वरांग का परिचय

हे देव! यह किस प्रदेश (प्रान्त) से है, मैं नहीं जानता हूँ किन्तु मेरे धर्मपुत्र के रूप में उपदेशित है। कुछ समय पूर्व इसे वणिक वर्ग ने रखा है। वह दीर्घकाल तक आप सभी की रक्षा करेगा। हे महाराज! यह भद्र पुरुष है, यह अकेला ही शत्रु बल को भग्न करेगा, यह सुन्दर मानव जो श्रेष्ठ योद्धा है, अभी तक छुपा हुआ है, उसे देखो। वचनों को सुनकर राजा नयनों से अवलोकन करता है, बार-बार उसे एकटक जोहता है। नृप चिंतन करता है–क्या कोई विद्याधर है या कोई वणिपति के घर पर छद्म वेश में रहता है अथवा यह मेरा चित्त विकार है या मेरे मन और नेत्रों में आनंद उत्पादक है। वह मुझको हरण करने वाला है, जो कलागुण से श्रेष्ठ स्वामी या दुर्जन है। वह क्या राजा है, मेरे मन में संशय हुआ। ज्ञानी के बिना संशय का नाश कैसे हो, कोई देव मेरे धर्म में आ पहुंचा है अथवा साधर्मी सत्-पुरुष जिनेन्द्र की भक्ति से युक्त एवं उपकार का रसीला है। इस तरह मन में विचार करता है, ऐसा जानकर फिर उसका

www.vitragvani.com

सो हरिणियउ आसि मइ णिसुणिउ कलगुण जुत्तउ हरिवरि पिसुणिउ।
सो किं ण हवइ महु मणि संसउ णाणी विणु किं भज्जइ संसउ।
अह णिज्जरु महु धम्मि परायउ[2] तूव धरेवि[3] मणु व विक्खायउ।
अह सप्पुरिसु जिणेंद भत्ति[4]ल्लउ साहम्मिय उवयार रसिल्लउ।
इय मुणेवि पुणु तहि सम्माणिउ कणयास णिवइ सारिउ वाणिउ।

घत्ता– जो णियपोरिस रिउ जिणइ, धीया[5] सुणंदा अप्पमि।
अण्णु वि जुयरायउ करमि, पवररिद्धि तहो कप्पमि।
खंडयं–इय भणिऊण णिराइयं, रणअवसरु वि पराइयं।
जाणिवि भड सण्णद्धिया विविहइ कवय णिवद्धिया।।१५।।

16

पुणु णरवइ वहु तूर हणेविणु[1] हरसवंत रणकंरव धरेविणु[2]।
अप्पडिमल्लु गयंदु कुमारहो दिण्णउ आरुहियउ सममारहो।
चलिय सेण वहु सुहडह[3] संगमु वहुहरि वहुकरि सोहइ जंगमु।
वरतणु केम सहइ गयउप्परि भाणु जेम भूहरसिहरुप्परि।
देवसेणु भूवइ किं सीसइ रोसारुणसिहि पुंजुव दीसइ।
अरिवल कट्टइ सयल डहेसई[4] वरतणु पवण सहाउ लहेसइ।
इत्तहि रिउवलु सम्मुह आयउ कुमरु राउ पुणु अहिमुहि धायउ।
दोहिमि सेणइ आणण मिलियइ दोहिमि सेणइ गोहइ[5] घुलियइ।
कायर केम भग्ग समरंगणि पिच्छिवि रुहिरारुण महिपंगणि।
जिम दालिद्दिहि पोरिसु णासइ अह धणु छंडिवि मग्गणु णासइ।
गयवरसहु गयवरु अब्भिडियउ हरिवरसहु हरिवरु पुणु घुलियउ।
रहसहु रहवरु जाइवि लग्गउ उडियसरेणु णउ दीसइ मग्गउ।
पामिक्कु[6] वि पामिक्कहो[7] मारहि[8] परसुप्पर भडभड संहारहि[9]।
दोहिमि रणु रउद्दु संजायउ दोहिमि धूलिहि रणु संछायउ।
हय मुहफेणु गयंदहो दाणु वि वणरुहिरइं उवसमियउ रेणु वि।

2. A, K, N, पराय 3. A, K, N, धरेवि 4. A, भतिल्लउ 5. A, K, N, धीय

16. 1. A, K, N, णेपिणु 2. A, K, N, धरेपिणु 3. A, K, N, सुहडहं 4. A, K, N, डहेसई 5. A, K, N, गोहइं 6. A, K, N, पाइक्कु 7. A, K, N, णयक्कहो 8. A, K, N, मारहिं 9. A, K, N, संहारहिं

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

सम्मान करता है। व्यक्ति सोने की आशा से वणिक को प्रेरित करता है।

घत्ता—जो अपने पौरुष (बल) से शत्रुओं को जीतता है, तो उसे पुत्री सुनंदा अर्पित करूंगा और भी युवराज पद दूंगा एवं श्रेष्ठ वैभव उसे कल्पित करता हूँ।

खंडक—इस प्रकार कह करके युद्ध क्षेत्र के लिए तत्पर होकर गया। अनेक प्रकार के कवच सहित योद्धाओं को निबद्ध जानकर तैयार हुआ।

16. युद्धभूमि में वरांग का प्रवेश

फिर राजा हर्षित होकर, युद्ध की इच्छा को धारण कर अनेक वाद्ययंत्रों को बजवाता है। अप्रतिमल्ल हाथी कुमार को दिया गया, जिस पर सवार होकर समर के लिए (युद्ध) प्रस्थान करता है। बहुत से योद्धाओं के संग सहित सेना चली, बहुत से राजा एवं हाथी यहां से युद्धभूमि में जाते हुए शोभित हो रहे थे। वरांग कुमार हाथी के ऊपर ऐसे शोभित होता है, जैसे पर्वत के शिखर (अग्रभाग) पर सूर्य शोभित है। देवसेन भूपति का क्या कहे, वह तो क्रोध रूप लाल-अग्नि समूह के समान दिखाई पड़ते हैं।

सभी शत्रुबल को पीड़ित करके दग्ध कर देगा जब कुमार वरांग स्वभाव को प्राप्त करेगा। इस प्रकार से शत्रु की सेना सम्मुख आती है तो फिर कुमार और राजा उनके सामने दौड़ते हैं। दोनों सेनाएँ आमने-सामने मिलती हैं, दोनों सेनाओं के योद्धा घूम रहे (चक्र) हैं, कायर समरभूमि से भागे। पश्चात् युद्धभूमि (प्रांगण) रक्तमय हो गई। जिस प्रकार दरिद्रता से पौरुष नष्ट हो जाता है अथवा दरिद्र व्यक्ति धन को छोड़कर अपनी जीविका का नाश करता है। श्रेष्ठ हाथी के साथ हाथी भिड़ते हैं और फिर घुड़सवार के साथ घुड़सवार भिड़ते हैं, रथ सवार रथ-सवार से युद्ध करते हैं। (युद्ध भूमि में युद्ध इतनी तेजी से हो रहा है।) उड़ती हुई धूल के कारण मार्ग नहीं दिखाई पड़ रहा है। पैदल सिपाही पैदल सिपाही को मारते हैं, योद्धा-योद्धा को परस्पर (एक-दूसरे) संहार कर रहे हैं, दोनों सेना में रौद्रता (क्रोध का रोष) उत्पन्न हो गयी है, दोनों सेनाओं की धूल से रणभूमि ढक गई है, घोड़े के मुंह से फेन एवं हाथी का मद गिरने लगा है, घात और रुधिर से धूल भी शांत हो गई है, फिर वीर (बहादुर) वीर से युद्ध में लड़ते हैं, कोई भिड़ता है, कोई पृथ्वी पर मूर्च्छित पड़ा है, किसी का सिर पृथ्वी पर गिरा पड़ा है, भयानक बलवान (योद्धा) पड़े हुए हैं, कैसे धड़, हाथ और चरणादि गिरे पड़े हैं। कैसे मरण को प्राप्त हुए।

घत्ता—उस अवसर पर (युद्धभूमि में) कुमार ने भी रण में बलपूर्वक विजय को प्राप्त किया।

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

पुणु वीराण वीर रणि जुज्झहि केवि भिडहि किवि महियलि मुज्झहि।
केहिवि महिणिवडिय वरसीसइ केहिवि पयडंतावलि भीसइ।
केहिवि[10] णियडिय धरकर चरणइ केहिवि पत्त रणंगणि मरणइ।

घत्ता– तहि अवसरि कुमरु वि वीरवइं रणमंडवि संपत्तउ।
घणवारि व सरधोरणिपवरु वरसइ कोहहि रत्तउ।

खंडयं– रिउवल तेण वि हंसयं, महिणिवडिय गय हंसयं।
वहु णर पहरहि भिण्णयं, ता अवलोइवि सिण्णयं[11]।।१६।।

17

णियभड महि णिवडंत पलोइवि इंदसेण तायहो मुह जोइवि।
लहि आएसु रणंगणि धायउ णाम उवेंदुसेणु णिव जायउ।
रिउ सहसइं गयंद परियरियउ णाम वलाह करिहि सो चडियउ।
आइवि पत्तउ जहि वरतणु भडु पेरंतउ णिय वारणवरघडु।
कडि तोणा जुयलउ संणिहियउ[1] वरगुण जुत्त चाउ करि गहियउ।
दाहिणकरि असिवर तहि धारिउ जहि चिरु हरि–करि–णर संहारिउ।
कोहमाण–माया पयडंतउ करइ जुज्झु सरगणु[2] अगणंतउ।
भिडिय परोप्पर[3] ते णिवणंदण णिय जस कारणि किद्धउ भंडण।
पुणु णिय वारणगणु तहि जोयउ दारणु कुमरहो उप्परि ढोयउ।
कुमरिवि णिय करिंदु[5] सुपसंसिउ भिडिवि तेण करिगणु विद्धंसिउ।
कोहाउर होइवि रिउ अक्खइ जीवइंछ गरलुल्लउ भक्खइ।
किं किं जलणिहि मज्जणु इंछइ हउं हरि पइं कुरंगु रणु वंछइ।
को पइं सरिसु णेडु अण्णाणिउ महु पोरिसु कें पइं ण वियाणिउ।

घत्ता– परकज्जि णिरत्थउ मा मरहि जाहि जाहि खलु मूढमइ।
कय वय दिणम्मि सीयलु पिवहि जीवण रे रे वणिवइ।।

खंडयं–पाविय दुट्ठ दप्पिट्ठयं, लज्जा रहियइ धिट्ठयं।
पइं महु अवस जदा इयं, जणु भणिसइ वणि घाइयं।।१७।।

10. N, किहिवि 11. A, K, N, सिंण्णयं **17.** 1. A, K, N, संण्णिहियउ 2. A, सरगणुं
3. A, K, N, परोपर 4. A, K, जम 5. A, K, N,करेंदु

www.vitragvani.com

कुमार ने बादल की बरसात की तरह क्रोध में रत होकर बाणों की बरसात की।

खंडक–शत्रु सेना उसके द्वारा घायल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी, यहां तक कि हाथी भी गिर पड़े। बहुत से मनुष्य (सैनिक) प्रहार से छिन्न-भिन्न हो गये। उनको देखकर कुछ के पसीना छूट गया।

17. युद्ध वर्णन

अपने वीर योद्धाओं को पृथ्वी पर गिरते हुए देखकर इन्द्रसेन उसके (वरांग) मुख को एक टकी लगाकर देखता है। जिसका इन्द्रसेन राजा के यहां (पुत्र रूप में) जन्म हुआ था, आदेश प्राप्त करके युद्ध-भूमि में हमला करता है। शत्रु हजारों हाथियों से घिरा हुआ था।

जिसका नाम पीड़ा (उपेन्द्रसेन) है, वह युद्ध भूमि में पहुंचा, जहां कुमारवरांग था, वह अपने श्रेष्ठ हाथियों की बाह्य परिधि से संयुक्त था। दोनों ने कमर पर तरकश अच्छी प्रकार से धारण किये। श्रेष्ठ गुणयुक्त वरांग ने चाप को हाथ में ग्रहण किया। दक्षिण हस्त में श्रेष्ठ तलवार को धारण किया, जिसने दीर्घकाल तक अश्व, हाथी और मनुष्य का संहार किया है। क्रोध, मान और माया कषाय प्रकट हुई और असंख्यात बाणों से युद्ध करता है। वे दोनों राजपुत्र परस्पर भिड़ते हैं, अपने यश के कारण से युद्ध करते हैं। फिर वहां पर मदमस्त हाथियों का समूह एकत्रित होता है और कुमार के ऊपर (धूल) अर्पित करते हैं। कुमार भी अपने श्रेष्ठ (इन्द्र रूप) हाथी की प्रशंसा करता है। उसके द्वारा हाथियों के समूह भिड़ाकर भयानक नाश होता है। क्रोधातुर होकर शत्रु कहता है–जीने की इच्छा होने पर भी विष (जहर) को खाते हो। क्या-क्या! समुद्र में गोता लगाने की इच्छा है। मैं सिंह और तुम मृग के बच्चे होकर युद्ध की इच्छा करते हो। तुम्हारे समान कोई अन्य मूर्ख नहीं है। मेरा पौरुष (बल) क्या तुम नहीं जानते हो।

घत्ता–निरर्थक कार्य क्यों करते हैं। निश्चित ही तुम मूर्खमति हो जो मरने के लिए आये हो। रे वणिपति! कुछ दिनों तक शीतल जल को पीजिए।

खंडक–तुमने अत्यंत अहंकारी दुष्ट, लज्जा रहित धृष्ट को पाया है। मैं तुमको पराधीन कर दूंगा। उपेन्द्रसेन कहता है–मैं तुमको नष्ट कर दूंगा।

18. उपेन्द्रसेन की चेतावनी

रे! वंशहीन, जातिहीन तेरा पौरुष गया। अब तू इस लोक में निवास प्राप्त नहीं कर पायेगा। मूर्ख! मृत्यु को क्या प्राप्त नहीं करेगा। (तेरे) अपने घर में परिवारजन का सुख के लिए पीछे क्या

18

रे कुल जाइहीण गय पोरिस मा अवत्थ पावहि इहवइ वस।
कालविहीण मूढ कि ण गच्छहि णियय गेहि वंधवसुहि पिच्छहि।
मइ किराडु जोय वि तुह[1] दिण्णउ अभयदाणु लइ किं मणु सुण्णउ।
आइ पएसि सिद्दि पइं सेविउ एवहि मरहि काइगय वेविउ।
इय वयणहि वरतणुया घोसइ उत्तरु दाइवि णियगिर पोसइ।
रे रे दुट्ठ इंदसेणु वि सुय कहि सिक्खिउ इय वयणहि अब्भुय।
कुल जायइ लब्भइ किं उण्णय पोरिसु लब्भइ रे रे दुण्णय।
हउ वणिवरु तुहु णरवइ णंदणु एवहि किद्धउ दोहिमि भंडणु।
लब्भइ बलपोरिस इह ट्ठाणहों रक्खि–रक्खि जीविउ अप्पाणहो।
तुज्झ मरणु अणयालिह वेसइ कइ भज्जहि महु वयणउएसइ।
वणि अच्छइ असरिस बल जुत्तउ करिगणु तासइ कोहहि रत्तउ।
अवरु वि वणयर जममुहि लावइ तहो कुल जाइ कवण दरिसावइ।
मइ चिरु वणयरबलु अवहेरिउ वणिगणु मारंतउ सइ पेरिउ।
गय किराय भज्जिवि मइ अग्गइ किं पइं ण मुणिय भग्ग समग्गइ।

घत्ता– **इय पच्चुतरू देवि तहि मुक्किय वाण भयंकर।**
ते जाइवि लग्गिय अरिवलहि पिसुणु व जीव खयंकर।

खंडय–**णियभुय तेण णिवारियं, णंदावत्तहि धारियं।**
पुणु वि तेण तहि मुक्कयं विविहइ तिक्खपिसक्कयं।।१८।।

19

तहि अवसरि वहु सुहड समूहें कुमरहो उप्परि आउह वूहें।
घल्लिय कहिमि कुंत दुणिरिक्खइ केहिवि[1] घल्लिय असिवरतिक्खइ।
केहिवि मुग्गर अवर तिसूलइ अण्णु वि गय सव्वल पुणु सूलइ।
केहिवि चक्क हलाउह घल्लिय णियभुय सयल परम्मुहि पिल्लिय।
गयइ णिरत्थ केम पहरणगणु जेम जाइ पाविय किविणहो धणु।
अहवा धम्महीण मणुयत्तणु तेण सव्वंहूयइ ण कयत्तणु।

---

18. 1. A, K, N, तुहं

19. 1. N, कहिवि

www.vitragvani.com

होगा। मेरे द्वारा तुझको भला जानकर अभयदान दिया जाता है। क्या उसे मन से सुनकर सुप्त पड़ा है? श्रेष्ठी के प्रदेश में आकर तुझे सेवित किया, इस प्रकार क्यों कंपित होकर मरते हो? इस प्रकार वरांग कुमार वचनों को सुनकर घोषणा करता है और उत्तर देकर अपने वाणी को पुष्ट करता है।

रे रे! दुष्ट इन्द्रसेन पुत्र–यह वचनों को निकालना कहाँ पर सीखा है। कुल में जन्म लेकर क्या उन्नति की है। रे रे! दुष्ट नीति के धारक (क्या) पुरुषार्थ को प्राप्त करते हो। मैं वणिपति (वणिक्पति) हूँ, तुम राजा के नंदन (पुत्र) हो, ऐसे हम दोनों युद्ध किया करते हैं, इस स्थान पर बल और पुरुषार्थ को प्राप्त करते हैं। अपने-अपने जीवन (प्राणों) की रक्षा करो, अन्याय के नाश को लिख दिया गया है, अनेकों को भग्न किया है। मेरे वचन शिक्षा है। वणिक् असाधारण बल से युक्त है, हाथियों के समूह को क्रोध में रत होकर त्रास (नष्ट) करता है। उपेन्द्रसेन कहता है – और भी वनचरों को यमराज के मुख में लाया था। उसकी कुल एवं जाति कौन बतायेगा? मेरे द्वारा वनवासियों के बल को अपहरण किया गया है, अनेक बार वणिक् समूह को (सई) सदा ताड़ितकर भेजा है। भीलों को मेरे द्वारा नष्ट किया गया है। क्या तुम्हें मेरी भग्न किये हुए की सम्पूर्ण जानकारी नहीं है।

घत्ता–इस प्रकार प्रत्युत्तर देकर उसके उपेन्द्रसेन द्वारा भयंकर बाण छोड़े गये। वे जाकर शत्रुबल को लग गये, वे बाण दुष्ट जीव की तरह नाशकारक थे।

खंडक–कुमार द्वारा अपनी भुजाओं से निवारण किया गया, जैसे स्वस्तिक को धारण किया हो। फिर भी उसके द्वारा वहां पर अनेकों तीक्ष्ण बाण छोड़े गये।

19. कुमार उपेन्द्रसेन का वध

उस समय (अवसर) अनेक वीर योद्धाओं के समूह द्वारा कुमार के ऊपर आयुध (अस्त्र-शस्त्र) का व्यूह डाला गया है। कोई तीक्ष्ण भाला (कुंत) मारता है, कोई किसी तरह तीक्ष्ण तलवार से प्रहार करता है, कोई किसी तरह मुद्गर, त्रिशूल, सब्बल, सूल आदि से प्रहार करता है, कोई किसी तरह चक्र और हल आयुध से प्रहार करते हैं, अपने भुजाओं से सभी सामने अस्त्रों को फेंकते हैं। वे प्रहार समूह ऐसे निरर्थक हो गये, जैसे कोई कंजूस के धन को प्राप्त करता है अथवा धर्महीन मनुष्य के द्वारा सब कुछ होने पर भी कृतार्थ नहीं होता है।

पुनः उपेन्द्रसेन स्वयं युद्ध करता है। हाथी पर सवार होकर उसकी (वरांग) की ओर जाता है। वणिपति आकर हाथी को रोकता है, अभिमुख होकर शत्रु हाथी को मोड़ता है, परस्पर युद्ध में

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

पुणु वि उवेंदुसेणु[2] सइं जुज्झइ गय आरुहियउ परगय तुज्झइ।
आइवि वणिवइ वारणु रोडिउ अहिमुह होइवि रिउ गय मोडिउ।
परसुप्परइ समरि चूरंतहं णहयलि सुर अच्छरिउ जणंतहं।
तहु किं कुमरि चक्कु संगहियउ मुयउ झत्ति जाइवि सिरु लुहियउ।
मुयउ उवेंदुसेणु महि णिवडिउ कम्म विवाउ मुणइ को अहडिउ।
जयसिरि कारणि संगरु मंडिउ सो विहिणा[3] हा हा किं खंडिउ[4]।
जो कुंडलमणिमउड धरंतउ सो जि सीसु रुहिरणुहि जि लित्तउ।
जो तणु वत्थाहरणहि भूसिउ सो महि णिवडंतउ जणि दूसिउ।

घत्ता– हा हा विहि इय संसार गइ, राउ वि खं समाणउ।
जम रुट्ठइ, रक्ख कवणु करइ, सुर णिवडहि किं माणउ।।

खंडयं–भव्व भडहि इय चिंतियं, पिक्खिवि पडिउ धरत्तियं ।
देव देव पइं णंदणो, रणि मारिउ णिव वंदणो।।१६।।

20

इय भडहो वयण सुणि इंदसेणु णियपरियण पोसण कामधेणु।
आरत्तणित्त पज्जलिय देहु अइकोहें पुत्तणिवद्ध णेहु।
गयवरि चडेवि सो पत्तु जाम णिउ देवसेणु संपत्तु ताम।
दोहिमि संजायउ रणु रउद्दु कायरह भयारणु णं समुद्दु।
वहु किं अक्खमि जो देवसेणु णिय सुहड भग्ग पिच्छेवि सेणु।
अरि सो भग्गउ णियपाण लेवि अवर वि मुय किवि भडलग्ग केवि।
जयसिरि पाविय सहु पुहइणाहु सुर णहि उच्चरियउ साहु–साहु।
इत्तहि कुमारु वरतणु पउत्त भो णिव तुह धण्णउ चारुगत्त।
पइं पुण्णहो अरिवलु गयउ सव्वु तुह पुण्ण पउरु वरभव्व भव्वु।
पुणु कुमरु पसंसिउ बार बारु[1] तुह सरिसउ दिट्ठु ण अवरु मारु।
पइं रक्खिउ महु पउरकयहु जंतु पइं दिण्णिय मेइणि अरिकयंत।
पइं गुणघणधारा सरिस वुत्त किं वण्णमि पइं किउ जुत्त जुत्त।
इय वयण भणिवि पुणु तूर देवि पुरवरि पइसारिउ कुमरु णेवि।

2. A, N, उवेंदुसेंणु 3. K, N, विहणा, A, विणा 4. K, खेंडिउ

20. 1. A, K, N, बार–बार

www.vitragvani.com

खण्ड-खण्ड करते हैं, आकाश में देवों को आश्चर्य उत्पन्न हुआ।

अहो! वहां क्या कुमार द्वारा चक्र धारण किया गया, कुमार ने शीघ्र वहां जाकर सिर कुचल दिया। उपेन्द्रसेन को पृथ्वी पर गिरा हुआ छोड़ दिया। कर्मविपाक (कर्म के फल) को जानने में कोई अभ्यस्त नहीं है, जयश्री के कारण से संग्राम (युद्ध) शोभित होता है। वह विधाता हाय-हाय किसके क्या खंड-खंड करवाता है, जो कुंडल एवं मणिमुकुट को धारण करता है, उसी का सिर रुधिर में लिप्त होता है। जो शरीर वस्त्रों और आभूषणों से शोभित होता है, वहीं पृथ्वी पर गिरते हुए दूषित (दोषयुक्त) नहीं होता क्या?

घत्ता—हाय हाय! विधाता संसार की क्या गति है, राग (इच्छा) भी आकाश के समान है। यम (मृत्युदेवता) रोषयुक्त होने पर रक्षा कौन करेगा? इन्द्र भी गिरता है, फिर उसका क्या मान (इज्जत) है।

खंडक—उपेन्द्रसेन को धरती पर गिरते हुए देखकर, वीर योद्धा राजा इन्द्रसेन के पास जाकर एवं वंदन करके कहता है—देव! तुम्हारा पुत्र, युद्ध भूमि में मारा गया।

20. कुमार वरांग का स्वागत

इस प्रकार यौद्धा के वचन इन्द्रसेन सुनकर, जो अपने परिवारजनों के पालन-पोषण के लिए कामधेनु है। उसके नेत्र रक्तमय हो गये एवं देह प्रज्ज्वलित हो गई, पुत्र के स्नेह में निबद्ध इन्द्रसेन अतिक्रोधित हुआ। हाथी पर सवार होकर जहां वह (देवसेन) प्राप्त हो, वहां राजा इन्द्रसेन गया। युद्ध भूमि में दोनों को क्रोध उत्पन्न हुआ, भयानक उत्सुकता से मानो समुद्र हिलोरें मारता हो।

देवसेन का बहुत क्या कहूँ, उसके योद्धा, सेना के पीछे भागते हैं, वहां शत्रुसेना अपने प्राणों को लेकर भागती है। अन्य योद्धाओं को भी किसी तरह घायल करके छोड़ा। साथ ही पृथ्वीनाथ (राजा देवसेन) ने विजयश्री को प्राप्त किया। देवगणों ने आकाश में साधु-साधु उच्चारित किया।

इस प्रकार कुमार वरांग प्रवृत्त हुआ। देवसेन कहता है—हे नृप! सुन्दर शरीर से युक्त तुम धन्य हो, तुम्हारे पुण्य से सम्पूर्ण शत्रुबल भाग गया, तुम्हारा पुण्य नगर में श्रेष्ठ भव्यता से युक्त है। कुमार राजा के द्वारा बार-बार प्रशंसित हुआ। तुम्हारे समान अन्य कोई दूसरा कामदेव नहीं है, तुम्हें मेरे नगर की रक्षा करना है, मैं तुमको पृथ्वी प्रतिपादित करता हूँ। शत्रु के लिए तुम्हें यम रूप में देखकर मैं तुमको पृथ्वी देता है।

तुम तो गुणों की बरसात के सदृश हो, क्या वर्णन करूं तुमने बहुत ही प्रयत्न किया है।

www.vitragvani.com

घत्ता–ता करिवि महुत्थउ तहि णिवेण कणयासणि वयसायरिउ।
णिउ वुच्चइ भणु तुहु कहु तणउ पइं रिउ वलु अवहारिउ।।२०।।

21

खंडयं–इय णिसुणिवि पहु उत्तयं, ता पच्चुत्तर वुत्तयं।
हउं पइं सिद्विहि णंदणो, किं णामु णहि णिवसुहमणो।।छ।।

तं णिसुणिवि पुणु राउ पयंपइ किं अलियउ अक्खहि महु संपइ।
इय सुणेवि पुणु वरतणु घोसइ सप्पुरिसु वि किं णियगुणु पोसइ।
जिह[1] पज्जुण्ण[2] पुत्त जम संवर णहयर केरउ हुयउ विज्जहर।
अहवा अवरु जणद्दणु णवमउ णंद महर सुउ जायउ तं हउ।
वणिवइ तणु रुहु किं णिव[4] अलियउ हरि गोवाल सिण्ण जणि धरियउ।
तव्वयणाणंतरि भडु अक्खइ इक्कु वि णिउण बुद्धि[5] पच्चक्खइ[6]।
सो उत्तमु अप्पउ ण पसंसइ इहु को णिवणंदणु विणु संसइ।
एवहि णिय वयणुल्लउ किज्जइ धीय सुणंदा एयहु दिज्जइ।
कुमरवरंगसरिसु को माणउ सुंदर हरि सुय तुव्व[7] समाणउ।
णरचूडामणि पोरिसवंतउ इहु को उत्तमु इह[8] संपत्तउ।
इय वयणइ मणि हरिसु धरेप्पिणु दिण्णिय पुत्ति विवाहु रएप्पिणु।
पुणु सुहि णिवसइ कील करंतउ णवकामिणि रइसुहु माणंतउ।
जो धम्मागलु[9] माणउ होसइ तासु महत्तु वि सुरगुरु घोसइ।
जं जं दीसइ तिहुयणि चंगउ तं तं धम्मपहाउ सुरंगउ।

घत्ता– जो जिणधम्मासत्तु णरु, जीवदया वय पोसइ।
पुप्कयंत[10] जुण्णइ सरिसु, सो तेयालु हवेसइ।।२१।।

इय वरवरंगचरिए। पंडियसिरितेयपालविरइये। महाकव्वे सिरिविउलकित्ति–मुणिसुप्पसाए। वरांगजयवण्णणो णाम तईउ संधी–परिच्छेउ सम्मत्तो।। संधि–3।।

---

21. 1. A, K, N, जिहं 2. A, K, N, पुज्जुण 3. A, K, N, वियाहर 4. N, णिंव 5. K, वुधि 6. K, पच्चकरवई 7. N,सुव/तुव, A, K, तूव 8. A, K, इहं 9. N, धम्मगलु 10.A, K, N, सिरिपुष्पदंत

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

इस प्रकार वचन कहकर, पुनः तूर (दुंदुभि) बजाई गई और कुमार को लेकर श्रेष्ठ नगर में प्रवेशित हुए।

घत्ता–तब वहां पर महोत्सव करके, सोने के सिंहासन पर कुमार वरांग को आचरित किया। नृप कहता है–तुम किसके पुत्र हो, मुझे कहो, जो तुमने शत्रु बल को अपहृत कर दिया।

21. कुमार वरांग की प्रशंसा एवं सुनंदा के साथ विवाह

खंडक–इस प्रकार प्रभु (देवसेन) के कहे हुए वचनों को सुनकर वरांग ने प्रत्युत्तर दिया मैं आपके श्रेष्ठी का पुत्र हूँ। हे शुभमन वाले राजन! क्या आप मेरा नाम नहीं जानते हो।

इस प्रकार सुनकर फिर राजा कहता है–मुझसे क्यों झूठ बोलते हो? यह सुनकर फिर कुमार वरांग घोषणा करता है–सत्पुरुष भी क्या अपने गुणों का पोषण करते हैं? प्रद्युम्न के पुत्र ने जैसे संवर को धारण किया एवं वह नभचर व विद्याधर हुआ अथवा कृष्ण प्रगट नहीं हुआ था, फिर भी नंद का पुत्र था, वैसे ही मैं हूँ। इसलिए वणिपति के तन से उत्पन्न होना, हे राजन! क्या झूठ है? नारायण कृष्ण ने क्या जन्म को धारण नहीं किया। तत्पश्चात् वीर (भट) कहता है–प्रख्यात एक निपुण व्यक्ति की बुद्धि प्रत्यक्ष होती है।

वह श्रेष्ठ है, जो अपनी प्रशंसा नहीं करता है। इस प्रकार कोई राजपुत्र है, राजा ने बिना संशय किये मान लिया। इस प्रकार नृप वचन कहता है कि अपनी पुत्री सुनंदा के लिए कुमार वरांग के सदृश किसको माना जाये, वह भगवान् के पुत्र समान है।

वह मनुष्यों में चूड़ामणि एवं श्रेष्ठ बल से युक्त है। यह कोई उत्तम पुरुष है, इसे जो मैंने प्राप्त किया। इस प्रकार राजा वचनों को मन में धारण कर हर्षित हुआ। राजा देवसेन ने विवाह मंडप की रचना करके अपनी पुत्री कुमार वरांग को दी।

फिर कुमार वरांग सुखपूर्वक निवास एवं क्रीड़ा करते हुए नूतन नववधू के साथ रतिसुख को अनुभव करता है। जो धर्म से पृथक् न हो ऐसा कोई मानव होगा, जिसका महत्त्व श्रेष्ठ देवों ने भी घोषित किया है। जो-जो तीन लोक में अच्छा (सुन्दर) दिखाई देगा, वह-वह धर्म का प्रभाव ही है।

घत्ता–जो मनुष्य जिनधर्म में रत है एवं जीवदया (अहिंसा) और व्रतों का पालन करता है। श्री पुष्पदंत के सदृश निपुण/दक्ष है, वह तेजपाल होगा।

मुनि विपुलकीर्ति की कृपा से पण्डित तेजपाल विरचित इस वरांगचरित महाकाव्य में वरांगकुमार के विजय वर्णन नाम का तृतीय संधि परिच्छेद समाप्त हुआ।।संधि–3।।

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

1

ता रायइ दिण्णउ णवर रण्णउ, अद्धरज्जु सम्माणिवि।
वरतणु गुण जुत्तउ पुव्व पउत्तउ, तं वयणु वि परियाणिवि।।छ।।

इत्तहि पुरवरि णिवसंत–संत णव वहुयहि सुहु विलसंत–संत।
इक्कहि[1] दिणि माउल पुत्तियाइ[2] णामेण मणोरम धुत्तियाइ[3]।
रइरस–लंपडु दिट्ठउ वरंगु मणि चेंतइ किज्जइ एहु संगु।
विहलंघलु जायउ तासु गत्तु सरमग्गण सल्लिउ तियहि[4] चित्तु।
सासोसासइ[5] अइवाहि जाउ सीयलु वि लेवणु जणइ ताउ।
तणु[6] तल्लोविल्लिय करइ केम सफरी जलु तुच्छइ हुयइ जेम।
किं महु केसइ[7] अलिउल[8] समाण णउ रक्खहि[9] विहु रहरंत पाण।
किं कुंडल किं महु तिलय सोह सुंदर विणु महु भासंति लोह।
हा हा[10] किं मइ[11] मुह मंडलेण किं पत्ताविलि गंडत्थलेण।
मुत्ताहलहारु वि तुरि[12] घुलंतु महु भासइ सो अहिइ व ललंतु।
किं किज्जइ[13] उण्ण[14] पयोहराइं[15] कंचुय वंधणु णं वंधणाइं।
किं रसणा दामें वरखेण किं वहु वत्थइ किं जुव्वणेण।
किं वर णेउर सद्दइ कुणंति णं कामभिच्च हणु–हणु भणंति।
इय भासइ सव्वाहरणविंदु ण सुहाइ कज्जु किंपि विसतंदु।

घत्ता– जहि कोइल सद्दहि, कयरुइ भद्दहि, कीर मोक्खइ खइं पुणु।
जहि वर कमलायरु, णं रयणायरु[16], रेहयंति कइ खइं[17] वणु।।१।।

1. 1. K, इक्कहिं 2. K, पुत्तियाइं, N, पुत्तियाई 3. K, धुत्तियाइं 4. K, तियहिं 5. K, सासइं 6. N, तणुं 7. K, सइं 8. N, अलिउ 9. K, रक्खहिं 10. N, हा॰ यह पद अतिरिक्त है। 11. A, K, N, मइं 12. A, N, उरि 13. A, K, N, किज्जइं 14. K, उण्णं 15. A, K, N, पयोहराइं 16 A, रयं 17. N, खइ

www.vitragvani.com

चतुर्थ सन्धि

1. मनोरमा की विरह व्यथा

तब वरांग के लिए राजा रणक्षेत्र में श्रेष्ठता के लिए सम्मान करके आधा राज्य देता है। वरांग गुणों से युक्त, पूर्व कहे हुए वचन रूप परिणमित होता है।।छप्पय।।

इस प्रकार श्रेष्ठ नगर में नववधुओं के साथ प्रमोद करते हुए निवास करता है। एक दिन मातुल (मामा) की पुत्री, जिसका नाम कुमारी मनोरमा है, वरांग को रतिरस में आसक्त देखती है और मन में चिंतन करती है कि इसके साथ संसर्ग करना चाहिए। उसका शरीर व्याकुल हो जाता है, स्त्री के चित्त (मन) में कामदेव का बाण पीड़ित करता है, श्वासोच्छ्वास अति तीव्रवेग से प्रवाहित होती है, शीतल जल का लेपन भी ताप उत्पन्न करता है, शरीर की तड़फड़ाहट (तड़पन) वैसे होती है, जैसे मछली जल के सूख जाने पर होती है।

क्या मेरे केश भौरों के समूह के समान नहीं हैं, किसी तरह मेरे प्राणों की रक्षा नहीं हो सकती है। क्या मेरे कुंडल हैं एवं क्या मेरी बिन्दी की शोभा है। वरांग के बिना मुझे सभी लोहा जैसे भासित होते हैं। हाय-हाय क्या मेरा मुख-मंडल है, क्या मेरे कपोल है। मुक्तामणि का हार शीघ्रता से घूमता है, वह भी मुझे सर्प के जैसा भासित होता है। इन उन्नत पयोधर (स्तन) का क्या करना चाहिए, चोली का बंधन ही मानो बंधन है। क्या मेरी करधनी (मेखला) और माला है। मेरे क्या बहुत से वस्त्र हैं एवं क्या मेरा यौवन है। क्या मेरे नूपुर शब्द करते हैं, मानो कामसेवक मारो-मारो कहता है।

इस प्रकार सभी आभूषण शून्य एवं विषनिद्रा तुल्य भासित होते हैं और कोई भी कार्य नहीं सुहाता है।

घत्ता—जहां कोयल शब्द करती हो, भद्र (शिष्ट) रूप बनाये गये हो, तोता (कीर) आकाश में स्वतंत्रता से उड़ते हों, जहां श्रेष्ठ सरोवर मानो रत्नाकर हो, जहां वृक्षों पर अनेक पक्षियों की पंक्ति शोभित है।

2. मनोरमा की विरहवेदना

वहां वन में नृपकुमारी (मनोरमा) पहुंचती है। शुभप्रकृति युक्त मानो पाप हरण करने वाली

www.vitragvani.com

2

तहि वणि संपत्तिय णिवकुमारि सुपयइ णं सरसइ पावहारि।
मुहु–मुहु[1] मणि समरइ वणिवरेंदु वरतणु णामें अरिणिहयवेंदु।
रोवइ णिरुद्ध कं वयहि वाल अहरहं सोहा णिज्जिय पवाल।
लय गेहु रवण्णउ तहि वणम्मि तहो मज्झि सिलायलु उज्जलम्मि।
तहि जाइ वयट्ठिय रायहंसि[2] इक्कल्लियाइ मुक्किवि वयंसि।
तहि लिहिउ तूव वणि णंदणासु जहि मणु णियउ वि णिरुद्धसासु।
तहि लेहइ चित्तु णिवद्ध केम जो ईसरु अप्पसरू वि जेम।
हा विहि किं ण करहि एहु संगु एयहु विणु होसइ मज्झु भंगु।
एयहु विणु णरभउ महु णिरत्थु जइ पावमि तउ होहमि कयत्थु।
हा विहि किं ण विहिय तासु मुद्दि तहु करि अच्छंतिय सुयसु[3] भद्दि।
हा हा किं ण हुइ य तासु दासि तहो णियडइ अच्छंतिय सुवासि।
इय विविहइ वयणइ लवइ जाम कुडिलग्गु पराइय[4] वयंसि ताम।
आइवि पच्छइ झंपियइ णित्त दुण्णिवि दीहइ[5] सररुहइ पत्त।
ता लिहिउ रूव पुणु पुसिउ तासु पुणु जोइय णियकरपल्लवासु।
जाणिउ वयंसि महु इत्थ पत्त वुल्लिय हलि मुय–मुय मज्झु णित्त[7]।
णित्तइ मुएवि पफुल्ल वत्तु वुच्चइ सहि किं लिहिउं णिउत्त।
लिहियउ मंडणु कोऊहलेण पुणु सो भण्णिउ मइ[8] णियकरेण

घत्ता– पुणु सहियइ वुत्तउ, भणहि णिरुत्तउ, कोऊहलि णउ मंडियउ।
भणु–भणु महु को णरु, जो तुह हिययरु, पइं मणु केण विहंडियउ।।२।।

3

इमं णिसुणि हलि वयण पभणइ सकामा णरेंदस्स धीयासु सोहग्ग सामा।
हले सो वरंगो मया चित्तं चोरो समाणेहियालेंगणं लेमि धीरो।
इमं णिसुणि तहु वयण सा झत्ति जाया तया णिउ ण सहि कुमर णियडहि समाया।

---

2. 1. A, K, मुहुं–मुहुं, N, मुहु–मुहुं 2. K, रायहिंसि 3. K, सयसु 4. A, पराइय 5. A, K, N, दीहइं 6. A, K, N, सररूहइं
7. N, णित 8. A, मइ–मइ

www.vitragvani.com

सरस्वती हो। मनोरमा के मन में वणिवर-प्रधान के मुख पर मोहित होने का युद्ध चलता है। जो शत्रुओं का नाश करने वाला, कुमार वरांग नाम से जाना जाता है।

जिसने अधरों की शोभा से किसलय को जीता है। घर से ले जाकर वहां वन में उज्ज्वल शिलाखण्ड के मध्य रमण करेंगे, जहां राजहंस बैठे हों, वे वहां जाती हैं। सखी उसको अकेला छोड़ जाती है, तुम यहां वन में आनंद प्राप्त करो। जहां अपने मन में श्वास निरुद्ध हो जाती है, वहां चित्त (मन) किस तरह निबद्धता (आलिंगन) को प्राप्त करता है।

जैसे ईश्वर अप्सरा से निबद्ध होता हो, विधाता इसके (कुमार) संग के लिए क्या करूं? इसके बिना मेरा नाश हो जायेगा, इसके बिना मेरा मनुष्य भव निरर्थक हो जायेगा। यदि प्राप्त कर लेती हूँ तो कृतार्थ हो जाऊँगी। हाय विधाता क्यों मुझे अनुष्ठान पूर्वक उसकी सुन्दर स्त्री नहीं बनाया, मुझे उसके पराधीन कर दिया। हाय-हाय क्यों उसकी दासी नहीं हुई? अच्छी तरह से उसके निकट निवास कर सकती।

इस प्रकार विविध वचनों को जैसे कहती है, वैसे ही सखी कुटिलता से आगे गयी। पश्चात् आकर आँखों को ढकती हैं। दोनों ने दीर्घ कमल को प्राप्त किया, अपने हाथ से लिखा हुआ पत्र भेजा, जिसमें अपना रूप रेखांकित था। सखी के द्वारा यह पत्र जाना गया।

सखी बोली–मेरे नेत्रों को छोड़ो-छोड़ो, नेत्रों को छोड़कर वह प्रसन्न होती है। सखी कहती है–क्या लिखा है। कौतुहल वश अपने हाथ से श्रृंगार/प्रसाधन लिखा है एवं क्या कुछ उन्हें कहा है।

घत्ता–सखी कहो, निश्चित कहो, कौतूहल सुशोभित नहीं होता हैं। मुझे कहो, कौन नर है? जो तुम्हें हितकर है एवं जिसने तुम्हारे मन को आहत (घायल) कर दिया है।

3. परस्त्री के सेवन के त्याग का प्रतिबोध

इस प्रकार सुनकर सखी सकाम (कामना सहित) वचन कहती है। नरेन्द्र की पुत्री सौभाग्य से रानी बनने के लिए आशान्वित है। हे सखी! वह वरांग मेरे चित्त को चुराने वाला है, धैर्यवान का सम्मान सहित आलिंगन लूंगी। उसके वचन सुनकर, सखी शीघ्र जाती है। वह निपुण सखी कुमार के निकट समागत हुई।

फिर कहती है–अरे! तुम कामरूप का अपहरण करने वाले हो, तुम्हारे समान अन्य कोई राजकुमार नहीं है। तुम्हारे रूप पर वह कुमारी (मनोरमा) आसक्त हुई है, अपनी शोभा से कुमारी

www.vitragvani.com

पुणो लवइ भो कामरूवावहारो तुमं सरिसु को अण्णु णउ णिवकुमारो।
तुमं रूवयासत्तिया सा कुमारी णियं सोह णिज्जियइ अहिसुरकुमारी।
तुमं तेहिं वुल्लाविया सगुणधारा सुतहि[1] वेगि जाइ जइ वणिकुमार।
सुल्लच्छीसु कंतासु गेहम्मि वासो सुप्पुण्णाहिया[2] लहहि वरसुह णिवासो।
इमं सुणिवि तिय वयण पभणइ कुमारो मया येहु णउ[3] जुत्तयं अजसयारो।
जु पाविट्ठु[4] णिक्किट्ठु लज्जाविहीणो सुणरु रमइ पररमणि अवगुणह[5] लीणो।
जु संतो–महंतो–दमंतो–खमंतो सुकें रमइ परणारि कय धम्महंतो।
सुणरु धण्णि जो करइ तिय संगचाउ सुच्छंदो विएसो भुयं सप्पयाउ।

घत्ता– णिय कंतु चएप्पिणु[6], लज्जमुएप्पिणु[7], जा परपुरसहो अहिलसइ।
सा वहु दुह पावइ, हुइ महि आवइ, णरयखोणि णिच्चु जि वसइ।।३।।

4

पिउ छंडिवि सुइर–णिस–रसमाणु चेडियसुउ[1] सेवइ चइवि माणु।
मयणाउर जुव्वण भारपत्त कज्जाकज्जुय[2] णउ मुणइ रत्त।
विणु करगहणुल्लइ रायपुत्ति महु संगु णियच्छइ णिहय जुत्ति।
सा कें हउं सेवमि पावमूल कामीयण हियवइ देइ सूलु।
वयरयणु विहंसि ण णरय जामि मइ परतियवउ किउ णियय गामि।
वरदत्त मुणिंदहो पासि लिद्धु सो किं हउं भण्णमि अक्ख–गिद्धु।
इय णिसुणि पडुत्तरु सा भणेइ पइं सरिसउ णेडु ण अवरुणेइ।
तियरयणु रमंतह पाउ होइ तो सुरणर कोवि ण रमइ लोइ।
रे कुमर मूढ तुह[3] धम्महीणु जं कुमरिहि संगि ण होइ लीणु।
तिय संगु[4] ज्झिउ सुहु खलि समाणु तिय सहु इंदिय सुह अमयखाणु।
पइं[5] अक्खिउ परतिय पडहु वज्जु सा णउ परतिय लहु करहि भज्जु।
तुहु तिय रयणुल्लउ लेहि–लेहि म चिरावहि सुंदर एहि–एहि।
एयंति णियच्छइ व वणपएसि णउ मुणइ कोपि पच्छण्ण–वेसि।

---

3. 1. K, सुवहिं N, सुताहि 2. N, सुप्पुणाहिया 3. N, णाउ 4. N, प्पविहु 5. A, K, N, अवगुणहं 6. A, K, N, चएपिणु 7. A, K, N, °मुएपिणु

4. 1. K,चेडियउउ, 2. N, °कज्जुया 3. K, तुहं 4. A, K, N, संग्गु 5. A, पइ

www.vitragvani.com

ने नागदेव को जीता है, तुम उसके लिए सगुणधारा कह सकते हो। वणिकुमार मनोरमा के पास शीघ्रता (वेग) से जाओ, शुभलक्ष्मी कांता के घर में निवास करो अर्थात् शुभपुण्य की अधिकता से श्रेष्ठ सुखपूर्वक निवास करो।

स्त्री के यह वचन सुनकर कुमार कहता है, मेरे द्वारा यह अपयश को करने वाला कार्य उचित नहीं है। जो पापी, नीच लज्जाविहीन, अवगुणों में लीन है, वही व्यक्ति परस्त्री में रमता है। जो संत, महंत, दमन करने वाला और क्षमावान यदि सुख के लिए परस्त्री में रमण करता है तो वह अपने धर्म का नाश करता है और वह सम्यक् नर धन्य है जो स्त्री के संग का त्याग करता है और इस लोक में स्वतंत्रता से गमन करता है।

घत्ता–अपने पति का त्यागकर, लज्जा छोड़कर, जो पर-पुरुष की अभिलाषा करती है। वह अत्यन्त दुःख को पाती है एवं पृथ्वी पर आती हुई, निश्चित रूप से नरक भूमि पर बसती है।

4. सखी द्वारा कुमार वरांग को प्रलोभन देना

प्रिय को छोड़कर, दीर्घकाल रात्रि में रस मानकर, सम्मान को छोड़कर, दासीपुत्र (चेटीसुत) का सेवन करती है। मदनातुर और यौन भार को प्राप्त करती है तो उचित-अनुचित नहीं जानती है और रमण करती है। राजपुत्री बिना विवाह किये हुए, मेरा संग मृत-युक्ति है। वह क्यों मुझ पापमूल का सेवन करती है, कामीजन हृदय में शूल देते हैं। व्रतरत्न का विध्वंस करके मैं नहीं जाऊँगा। मैंने स्वयं ही पर-स्त्री-सेवन के त्याग का व्रत वरदत्त मुनिराज के पास में लिया है, इन्द्रिय की लंपटतावश वह क्या मैं भग्न करूं। यह सुनकर सखी प्रत्युत्तर में कहती है, तुम्हारे समान अन्य कोई मूर्ख नहीं है। यदि स्त्रीरत्न में रमण करने से पाप होता है तो देव और मनुष्य कोई भी लोक में रमण नहीं करेगा।

रे! मूर्खकुमार तुम धर्महीन हो जो कुमारी के संग में लीन नहीं होते हो। स्त्री के संग को गुप्त रखना पतित के समान है, स्त्री के साथ इन्द्रियसुख अमृतखान है। सखी कहती है–तुम परस्त्री को गिराते हुए वर्जित करते हो, वह परस्त्री नहीं है। शीघ्र ही उसका भोग करो। तुम स्त्रीरत्न को ग्रहण करो, उसके समान चिरकाल में कोई सुन्दर नहीं है। वनप्रदेश में वह तुम्हें देख रही है, उसके गुप्तवेश को कोई नहीं जानता है।

घत्ता–उसके वचनों को सुनकर, व्रत को स्मरण करके, वरांग कहता है–हे! गुणनिलय यदि चोरी से धर्म को छोड़कर सेवन किया जाये तो लोक में यश का नाश हो जायेगा।

www.vitragvani.com

घत्ता– तं वयण सुणेप्पिणु[6], वयसुमरेप्पिणु[7], वरतणु पभणइ गुणणिलउ।
चोरु व सेविज्जइ, धम्ममुइज्जइ, तो पाविज्जइ जस विलउ।।४।।

5

जइ वाला करगहणउ किज्जइ सयल लोय पिच्छंतह[1] लिज्जइ।
ते हउं सेवमि णिय तिय सुंदरि[2] रइविलास भुंजमि णियमंदिरि।[3*]
अण्णु पयारि ण रइरस धुत्तिय पाणयंति सेवमि ण अजुत्तिय।
इय पच्चुत्तरु पाविवि वाला तिय सहियंति पत्त सुकुमाला।
णिसुणि पुत्ति एवहि करि संवरु कालंतरि होसइ सो तुह वरु।
विणु परणिय अवला णवि सेवइ परतिय दोसें मणि भउ वेवइ[4]।
विहि संजोउ करेसइ तेरउ हलि वयणुल्लउ मण्णहि मेरउ।
इय णिसुणेवि मणोरम वुच्चइ महु वरतणु विणु किंपि ण रुच्चइ।
वार–वार सा इय पलवंतिय कहव–कहव णियगेहि पहुत्तिय।
इउ वइयरु[5] णिसुणियउ णरिंदे णियपरियण पयकुवलयचंदें।
इत्तहि मूल णयरि किं जायउ धम्मसेणु जहि णिव विक्खायउ[6]।
जहि सुसेणु[7] जुवराय वइट्ठउ करइ रज्जु[8] जो णिय मणिइट्ठउ।
ता पच्चंत णिवइ बलदुद्धरु वरतणु गउ मुणि समरधुरंधरु[9]।
आइवि तित्थु देसि सो लग्गउ अरिलग्गंतइ सहु जणु भग्गउ।
जणु आइवि पुणु पत्थिव–पत्थिउ देव तुब्भु देसहो जणु दुत्थिउ[10]।
अरिपइ देसहो उपरि आयउ णाम पराजिउ महि विक्खायउ।
इय वयणहि सुसेणु[11] णीसरियउ तहि जाय वि पुणु संगरु धरियउ।
पुणु भज्जिवि णियणयरि पइट्ठउ चोर जेम लोयहि णवि दिट्ठउ।

घत्ता– णंदण रणि भग्गउ, णिसुणि समग्गउ, धम्मसेणु पुरवहि थियउ।
वरतणु सुमरंतउ, वहुगुणवंतउ, हा किं सो तुरयइ[12] णियउ।।५।।

6. A, K, N, सुणेपिणु 7. A, K, N, °सुमरेपिणु

5. 1. A, K, पिच्छंतहं 2. K, सुंदिरि 3. रइविलासु भुंजमि णियमंदिरि, यह पंक्ति K, प्रति में नहीं है। 4. N, घेवइ 5. N, वइरू 6. K, विखायउ 7. A, N, सुखेण 8. K, रजु 9. K, धुरधरु 10. N, दुत्थिऊ 11. A, K, N, सुखेण 12. A, K, N, तुरयइं

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

5. युद्धभूमि से सुषेण का भागना

यदि बाला (मनोरमा) से विवाह किया जाये तो सम्पूर्ण लोक देखते हुए ग्रहण कर लेगा। तब मैं अपनी सुन्दर स्त्री के रूप में सेवन करूंगा। अपने महल में रति विलास (प्रमोद) का भोग करूंगा। अन्य प्रकार से रति में आसक्त नहीं हो सकता हूँ अर्थात् प्राणों के अंत तक अनुचित्त सेवन नहीं करूंगा।

सखी यह प्रत्युत्तर प्राप्त करके अंततः सखी सुकुमाला (मनोरमा) के पास पहुंचती है। पुत्री सुनती है कि इस प्रकार से कुमार संवर करता है, कुछ समय पश्चात् यह तुम्हारा वरण करेगा। बिना परिणय (विवाह) के अबला का सेवन नहीं करता है, मन में परस्त्री–दोष से भयपूर्वक कांपता है।

सखी कहती है– मेरे वचनों को मानो, विधाता तेरा संयोग करेगा। इस प्रकार सुनकर मनोरमा कहती है, मुझे वरांग के बिना कुछ भी नहीं रूचता है। वह बार-बार यह कहते हुए, किसी तरह अपने घर में पहुंचती है। पृथ्वी मंडल के चन्द्र राजा देवसेन के द्वारा अपने परिजनों से यह वृत्तान्त सुना गया।

इस प्रकार नगरी में क्या ज्ञात हुआ? धर्मसेन जहां का प्रसिद्ध राजा है, जहाँ सुषेण युवराज पद पर आसीन है। जो मन में इष्ट हो वह राज्य कार्य करता है। तब उस सीमा पर बलवान योद्धा नृपति वरांग को जानो। वहां देश में आकर युद्ध में धुरंधर शत्रु आ गये हैं और शत्रु के आग जाने पर सभी जन (लोग) भाग गये हैं।

लोग आकर फिर पृथ्वी के विकार को दूर करने के लिए प्रार्थना करते हैं। तुम देश के विपत्तिग्रस्त (गरीब) लोगों के देवता हो। शत्रु, देश के ऊपर आ गया है। उसका नाम पृथ्वी पर विख्यात 'पराजित' है।

इस प्रकार वचनों को कहकर सुषेण बाहर निकल जाता है। वहां जाकर पुनः संग्राम करता है और फिर भग्न होकर वैसे ही अपनी नगरी में प्रविष्ट होता है, जैसे लोक में चोर को कोई नहीं देखता है।

घत्ता–पुत्र रणभूमि से भाग गया। सम्पूर्ण बात सुनकर, धर्मसेन नगर के बाहर स्थित है, अनेक गुणों को धारण करने वाले वरांग को याद करते हुए, हाय! वह घोड़ा मेरे पुत्र को कहां ले गया।

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

6

तहि अवसरि वरमंति पयंपइ णिसुणि णरेंद कज्जु करि संपइ।
अरिखंधारु[1] असंखु परायउ तुम्हह[2] बलु लहु इत्थु समायउ।
भंडणि णउ जुज्झहि एकल्लउ देवसेणु आणिज्जइ भल्लउ।
दूवउ इक्कु तित्थु[3] पेसिज्जइ लेहु इक्कु सुंदर तहो दिज्जइ।
देवसेणु णिव परउवयारउ अम्हह बंधव कज्ज वियारउ।
इउ[5] सुणेवि मंतिय वयणुल्लउ णियमणि मण्णिउ णरवइ भल्लउ।
ता पेसियउ इक्क गुणवंतउ लेहु लेवि गउ सोजि भमंतउ।
जाइ वि देवसेणु तहि णवियउ विणउ करेवि तेण सहु कहियउ।
लेहु लेवि तहि सयलु वि वायउ जह सुसेणु भग्गउ[6] अरि आयउ।
लिहिउ वरंगु आसि जिह हरियउ सयला कूय रायमणि धरियउ।
दूउ वि देवसेण सम्माणिउ पुच्छिउ वित्तं तु वि तहि भाणिउ।
तहि अवसरि वरंगु वुल्लाविउ सज्जणकज्जु तेण मणि भाविउ।
भणइ णरिंदु णिसुणि भड केसरि वरतण[7] तुह अच्छहि इह पुरवरि।
अम्हइ[8] दूरदेसि जाइव्वउ धम्मसेण णिवकज्जु करिव्वउ।
लेहु दिहालिवि वइयरु अक्खिउ पुणु दूयेण वि सव्वु समक्खिउ।

घत्ता– वइयरु णिसुणेप्पिणु[9], पडु वाएप्पिणु[10], वरतणु हुयउ वि सण्णमणु।
हा विहि किं जायउ, अरिबलु आयउ, तायहु पेरिउ सुहडगणु।।६।।

7

विण्णिवि अंसु जलुल्लिय णित्तइ णं सयवत्त[1] इउ सा सित्तइ।
पिक्खिवि देवसेणु ता भासइ इहु महु भायणेउ अरि तासइ[2]।
वाइवि लेहु सोय जं भिण्णउ पुणु णयणंसुयेहि सो रुण्णउ।
इत्तिउ कालु मया विण्णयाणिउ वणिउ पयेसिउ करेवि समाणिउ।
पुणु उच्छायि णिय वेसि उच्छोलिय दिट्ठउ णयणहि णिप्फंदोलिय[3]।

6. 1. A, K, N, क्खंधारु 2. A, K, N, तुम्हहं 3. N, तित्थि 4. A, K, N, अम्हहं 5. A, K, यउ, N, यउं 6. K, भग्गउं 7. K, चरतण 8. A, K, N, अम्हइ 9. A, K, णिसुणेयिण, N, णिसुणेपिणु 10. A, K, N, वाएपिणु

7. 1. N, सयवत्त 2. N, तासइं 3. A, K, N, निष्कंदोलिय

www.vitragvani.com

6. पिता धर्मसेन का पत्र

उस अवसर पर श्रेष्ठ मंत्री कहता है–राजन् सुनो अभी (सम्प्रति) एक काम करते हैं। शत्रुओं की अनगिनत सेना वहां पर पहुंची है, आपकी सेना एवं बल कम है। युद्ध में अकेले युद्ध नहीं कर सकते हैं, देवसेन उत्तम करने वाले हैं। एक दूत वहां भेजते हैं और साथ ही एक सुन्दर पत्र भिजवाते हैं। राजा देवसेन परोपकारी है, हमारे बंधुजन के कार्य का विचार किया करते हैं। इस प्रकार मंत्री के वचन सुनकर, अपने मन में नरपति उत्तम मानता है। उन्होंने एक गुणवान दूत भेजा और वह दूत लेख (पत्र) लेकर घूमते हुए वहां गया, वहां जाकर देवसेन को नमस्कार किया, उसके द्वारा विनयपूर्वक कहा गया, पत्र लेकर सब कुछ पढ़ता है, जहां सुषेण शत्रु सेना के आने पर युद्ध भूमि से भाग गया। जिस प्रकार सुषेण छिन गया है, वैसे ही वरांग को पाने की आशा में लिखा गया है।

दूत का देवसेन ने सम्मान किया, वित्त का भी पूछा गया कि उसका भी प्रतिपादन किया जाये। उस अवसर पर वरांगकुमार को बुलाया गया, सज्जन का कार्य उसके मन में भावित हुआ। राजा कहता है0– हे केसरी योद्धा! वरांग इस नगर में तुम ही ठीक हो, हम दूर देश में जायेंगे, धर्मसेन नृप के सहायक बनकर युद्ध तुम्हें करना होगा। लेख के प्रत्येक वृत्तांत को दूत के द्वारा पुनः सभी के समक्ष कहा गया।

घत्ता–वृतांत को सुनकर, कुशलता कहकर, वरांग चेतना युक्त हुआ। हाय विधाता यह क्या दुःख उत्पन्न किया, शत्रुबल एवं योद्धासमूह पिता के यहां आया है।

7. कुमार वरांग का मनोरमा से विवाह

उसके (मनोरमा) के दोनों नेत्र जलमय हो गये मानो कमलपत्र से उसका मुख सिंचा गया हो। देवसेन उसको देखकर कहते हैं–कुमार मेरा भानजा है, जो शत्रु का त्रास करता है। राजा पत्र पढ़कर शोक से भग्न हो गया, उसकी आँखों में आंसू आ गये, इतने काल के बाद मुझे ज्ञात हुआ, वणिक् रूप में सम्मान किया, पुनः उत्साहपूर्वक उछलता है, उसकी आंखें स्पन्दन रहित दिखाई दीं।

पुनः-पुनः बाहों से स्नेहयुक्त आलिंगन (गले लगाकर) देकर, पुनः-पुनः उत्तम प्रशंसा करके राजा कहता है–वरांग सुनो, एक कार्य कीजिए पुत्री मनोरमा को अन्य पत्नियों के साथ में ले जाओ। यह मातुल (मामा) के वचन सुनकर भानजा (वरांग) हंसकर कहता है–प्रथम तो मैं अपने

www.vitragvani.com

पुणु पुणु गाढालेंगणु देप्पिणु[4] पुणु–पुणु परम पसंस करेप्पिणु[5]।
भणइ राउ सुंदर सुणि किज्जइ पुत्ति मणोरम सय सहु लिज्जइ।
इय माउलइ वयण णिसुणेप्पिणु[6] भाइणेउ अक्खइ वि हसेप्पिणु[7]।
पढमइ णियपुरवरि जाइव्वउ णिय तायहो अरिबलु तासिव्वउ।
तो पच्छइ जाणिव्वउ चंगउ एवहि करमि ण कज्जु वरंगउ।
जा मत्थइ ता णिव पुणु घोसइ वयणु महारउ काइण पोसइ।
माउल वयणु ण उल्लंघिज्जइ महु पुत्तिय गहणुल्लउ किज्जइ।
कण्णा[8] रयण गणुल्लउ दिण्णउ लइ–लइ णउ छंडहि सुह वण्णउ।
तं सुणेवि जा वयणु ण वुच्चइ रायइ मुणिउ वयणु इहु रुच्चइ।
पासट्ठिय[9] णरेहि वोलिज्जइ पहु णियकुमरि वरंगहो दिज्जइ।
पुणु वासर सुमहुत्त गणेप्पिणु[10] मंडउ रइयउ हरिसु धरेप्पिणु[11]।
करिवि विवाहु मणोरम अप्पिय पुणु सयकुमरिय अण्णु वियप्पिय।
हुयउ विवाहु लोउ आणंदिउ जाइवि चेयालइ जिणु वंदिउ।
दिण्णउ दाणु णरेंदिसुभट्टह[12] थुय विरइय वंदीयणट्टह[13]।
पुणु वरतणु वणिगेहि[14] परायउ णववहु लेप्पिणु[15] कय मणरायउ।

घत्ता– णिसि समइ मणोरम, जगि जायउ तम, णियपिय रइरस लुद्धियहि[16]।
पिय पासि पहुत्तिय[17] रमणहो, रत्तिय, कंतालिंगिउ मुद्धियहि।।७।।

8

जा चिरु[1] उपण्णिय मणि ण संख सा[2] पूरिय विहिणा रमण कंख।
तमु गलिउ विहावरि हुउ पहाउ उदयायलि[3] पत्तउ दिवसराउ।
सह मंडवि सुसरु वइट्ठु जित्थु वरतणु संपत्तउ कुमरु तित्थु।
ता भणइ देव अरि हणिउ गव्वु मइ तुम्ह[4] पसायं लद्धु[5] सव्वु।
एवहि णिय जणणहो पासि जामि पत्थाउ ण अच्छमि इत्थु गामि।
आएसु देहि णिवकरि पसाउ तं णिसुणिवि वुल्लइ वयणराउ।

4. A, K, N, देपिणु 5. करेपिणु 6. A, K, N, णिसुणेपिणु 7. A, K, N, हसेपिणु 8. K, कण्णाय 9. K, पीसट्ठिय 10. A, K, N, गणेपिणु 11. A, N, धरेपिणु, K, धरेपिण्णु 12. A, K, भट्टहं 13. A, K, N, पट्टहं 14. K, गेउहि 15. A, K, N, लेपिणु 16 A, K, N, लुद्धियहिं 17. N, पहुतिय
8. 1. A, K, N, चिरु 2. K, स॰ 3. A, K, उवयायलि 4. A, तुम्हं 5. K, लघु

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

नगर में जाऊँगा, अपने पिता की शत्रु-शक्ति को नष्ट करूंगा। पश्चात् तब मैं मनोरमा का समागम ठीक समझूँगा। यह कार्य अभी मैं नहीं करूंगा। जो दिमाग में है उसकी राजा घोषणा करता है। मेरे वचनों का कैसे पालन नहीं होता है। हे वरांग! मामा के वचन का उल्लंघन मत करो, मेरी पुत्री को ग्रहण कर लीजिए। कन्या-रतन समूह वरांग को दिया गया। इसे ग्रहण करो, इस सुखकीर्ति को नहीं छोड़ो। उसको सुनकर कुमार कुछ भी वचन नहीं कहता है। राजा के द्वारा जाना गया कि कुमार वरांग को यह वचन रुचते हैं। पास स्थित एक मनुष्य के द्वारा भी कहा गया कि प्रभु! मेरी कुमारी को कुमार वरांग को दीजिए।

फिर शुभमुहूर्त्त शुभ दिन देखकर, हर्ष धारण कर एक मंडप की रचना की गई। मनोरमा का विवाह करके अर्पित किया, पुनः अन्य 100 कुमारी भी अर्पित की गई, विवाह होने पर लोक आनंदित हुआ। चैत्यालय (मंदिर) जाकर जिनदेव की वंदना की। वीर राजा ने दान दिया और बंदीजनों के बंधन नष्ट कर प्रशंसित शासन की रचना की। पश्चात् वरांग वणिपति के घर पर लौटा और नववधू को लेकर भोग किया।

घत्ता—रात्रि समय मनोरमा, जग में अंधकार उत्पन्न हुआ, अपने प्रिय के रतिरस को प्राप्त करती है। प्रिय के निकट रमण के लिए पहुंचती है, रत होकर पति के आलिंगन में मुग्ध हो जाती है।

8. मनोरमा की इच्छा पूर्ण की

जिसे चिरसमय तक मन में शंका उत्पन्न नहीं हुई, विधाता के द्वारा मनोरमा के रमण की इच्छा पूर्ण हुई। रात्रि का अंधकार नष्ट हुआ तथा उदयाचल में सूर्य उदित होता है। जहां पर मंडल के साथ श्वसुर (देवसेन) बैठा है, वहां पर कुमार वरांग पहुंचा। तब देवसेन कहता है—देव! शत्रुओं का गर्व से नाश करना है। मैं तुम्हारे प्रसाद से सब कुछ प्राप्त करूंगा, इस प्रकार मैं (कुमारवरांग) अपने पिता के पास जाता हूँ। यहां गांव में नहीं ठहरता हूँ, नृप अपने हाथों से आदेश दीजिए। उसको सुनकर राजा कहता है—यह घर, श्रेष्ठ नगर राज्य भार ले लो, नाना प्रकार से श्रेष्ठ लक्ष्मी ले लो, अन्य भी रूचता हो वह सब कुछ ले लो। परन्तु हे सुन्दर! गमन नहीं करो।

घत्ता—तुम्हारे बिना रमणीक नगर में सुख सूना है, तुम्हारे बिना राज्य निरर्थक है। अपने नगर में मत जाओ, यहीं पर ठहरो, तुम से जनपद (प्रजा) कृतार्थ हैं।

www.vitragvani.com

इहु घरु पुरवरु लइ रज्जभारु लइ पवर लच्छि णाणापयार।
अण्णु[6] वि रुच्चइ तं सव्वु लेहि परसुंदर गमणउ णवि करेहि।

घत्ता–पइं विणु सुह सुण्णउ, णयरु रवण्णउ, पइं विणु रज्जु णिरत्थउ।
मा णियपुरि गच्छहि, इत्थु जि अच्छहि, तुहं जणवइ सकयत्थउ[7]।।८।।

9

तित्थु जि पट्टणि हउ जाएसमि अरि विद्धंसि इच्छु आएसमि।
सुणिवि वयण जामाउर वुच्चइ सुसर तुहारउ वयणु ण रुच्चइ।
दइ आएसु तित्थु लहु गच्छमि मायवप्प पयकमलणि यच्छमि।
इत्थु वसंतह[1] दुण्णइ यारउ हउं जणि होसमि णउ अवहारउ।
तं णिसुणिवि महिराउ पयंपइ वयणु तुहारउक्किव्वउ[2] संपइ।
ता रहवर–मायंग तुरंगइ[3] चामरछत्तइ वत्थ सुरंगइ।
दासिय–दासइ रयणहि–रण्णइ अण्णु वि कुमरहो रायइ दिण्णइ।
इय सव्वइ वरतणु गिण्हेप्पिणु[4] सायर विद्धि वणेंदु लएप्पिणु[5]।
राउ वि णिय खंधारहो जुत्तउ धम्मसेण णिव णेहासत्तउ।
सत्थि करेवि पयाणउ दिण्णउ णिवहु मार चल्लिय कय पुण्णउ।

घत्ता– पुर–णयर मुयंतह[6], सुपहि गमंतह[7], णियपुरि थोवंतरि गयउ।
जाय वि वणि पेसिउ, वयणुद्दिसिउ, अक्खहि कुमरु समागयउ।।६।।

10

सायरविद्धि परायउ तित्तहि धम्मसेणु पहु अच्छइ जित्तहि।
णिसुणि राय वहुकलगुण जुत्तउ णाम वरंगु कुमरु इह पत्तउ।
को वरंगु को तुहं वणि सारा किं कज्जें आयउ गुणधारा।
तं सुणेवि पुणु वणिवरु भासइ सो वरंगु जो अरिकरि तासइ।
सो वरंगु जो चिरु हरि हरियउ सो जो पइं जुवरायइ धरियउ।
सो वरंगु गुणदेविहि णंदणु तुज्झ सुउ[1] मणणयणाणंदणु।
इय वयणइ णरेंदु याणंदिउ णं वरसागमि तरुगणु णंदिउ।

6. A, K, N, अंण्णुवि 7. N, सकत्थउ।

9. 1. A, K, N, वसंहहं 2. A, K, N, क्किव्वउ 3. K, तुरंगई 4. A, N, गिण्हेपिणु 5. A, K, N, लएपिणु 6. A, K, N, मुयंतहं 7. A, K, N, गमंतहं, K, गिण्हेंपिणु।

10. 1. K, सुउं।

www.vitragvani.com

9. कुमार वरांग का अपने नगर की ओर गमन

देवसेन कहता है–मैं उस नगर में जाऊँगा और शत्रुओं के विध्वंश की इच्छा का नाश करूंगा। वचन सुनकर कुमार कहता है–श्वसुर जी तुम्हारे वचन रुचते नहीं है। आदेश दीजिए, वहां पर शीघ्र ही जाता हूँ। मुझे मां–बाप के चरण कमल की इच्छा है, यहां रहते हुए दुर्नीति उनके साथ अन्याय नहीं करूंगा, मैं लोगों में छीनने वाला नहीं होऊँगा। उसको सुनकर भूपति (देवसेन) कहता है–तुम्हारे वचनों को सम्प्रति (अभी) करेंगे। तब श्रेष्ठ रथ, हाथी, घोड़ा, चमर, छत्र, वस्त्र, सुरंग आदि सहित दास-दासी, रत्नादि युद्ध में चलते हैं और कुमार के लिए अन्य राजा भी देता है। यह सब कुमार वरांग ग्रहणकर, वणिपति सागरबुद्धि को लेकर जाता है और राजा भी अपनी सेना के लिए धर्मसेन राजा के स्नेह में आसक्त होकर देता है और दिन में ही प्रस्थान करता है। नृपति की सेना चली और पुण्य कार्य किया।

घत्ता–सेना समूह राज्य, नगर छोड़ते हुए, सुपथ में गमन करते हुए, अपने नगर से थोड़े अंतर पर पहुंचती है। जंगल से आते हुए दूत से कहते हैं–जाओ और कुमार के आने की सूचना राजा धर्मसेन से कहो।

10. राजा धर्मसेन को वरांग के आगमन की सूचना

सागरबुद्धि वहां पर पहुंचते हैं जहाँ पर स्वामी धर्मसेन बैठे हुए थे। राजा ने सुना कि अनेक कला और गुणों से युक्त जिनका नाम वरांगकुमार है, यहां पहुंचे हैं।

राजा कहता है–कौन वरांग, कौन वणिक का आगमन हुआ है, वह गुणधारी किस कार्य से आये हैं। उसको सुनकर पुनः वणिपति कहता है–वह वरांग है जो शत्रुओं का त्रास (नाश) करता है। वह वरांग है, जिसे चिरकाल (पूर्वकाल) में घोड़े ने हरण किया था, वह जिसे तुमने युवराज पद धारण किया था। वह वरांग जो गुणदेवी का पुत्र एवं तुम्हारे मन और नेत्रों को आनंदित करने वाला पुत्र है। इन वचनों से नरेन्द्र आनंदित हुआ, मानो वर्षा आगम से वृक्ष समूह आनंदित हुआ हो, मानो दरिद्र के लिए धन प्राप्त हुआ हो, मानो रसपाक के लिए रसायन सिद्ध हुआ हो, मानो हंस का मन सरोवर में रत हुआ हो। तब नरपति (धर्मसेन) अनेक वाद्ययंत्रों के साथ हर्षित होकर जनसमूह के साथ चलता है। वहां पहुंचकर नंदन (वरांग) दिखाई देता है और दोनों का स्नेह लोक में श्रेष्ठ है। नरपति के साथ कुमार नगर में प्रवेश करता है। ब्राह्मणों के लिए दान दिया गया और जयकारा किया गया।

www.vitragvani.com

णं दालिद्दिएण धणु लद्धउ णं रसवाइ रसायणु सिद्धउ।
णं वरहंसु सिवप्पुरि पत्तउ णं हंसउ मण सरवरि रत्तउ।
ता णरवइ वहु तूरह णेविणु सम्मुह चल्लिउ हरिसु धरेविणु।
पत्तउ जाइवि णंदणु दिट्ठउ तूवें रइवरु लोय गरिट्ठउ।
णरवइ सहु पट्टणि पइसारिउ दिण्णु[2] दाणु भट्टह[3] जयकारिउ।
आय कुमरु जणणिहि पयलग्गउ तुह पसाय[4] मायरि दुह भग्गउ[5]।
सज्जण लोयहि तोसु पवट्ठिउ दुज्जण मुह मसिकुंचउ वट्ठिउ।
पिय मायरिहि महुच्छउ कीयउ णं णव पुत्त जाउ धणु दीयउ।
घरि आयउ वरंगु णिसुणेविणु[7] अरि भग्गउ णियसेण लएविणु।
सुण्ह वि गुणदेविहि पयलग्गिय हरिसिय दरसिवि सुण्ह समग्गिय।

घत्ता– ता णरवइ पुत्तहो, वरगुण जुत्तहो, सयलु वि चरिउ पपुच्छियउ।
सो जहि जहि हिंडिउ[6], सुह–दुह मंडिउ वरतणि सव्वु समक्खियउ[9]।।10।।

11

इत्तहि जो आयउ देवसेणु सो सम्माणिवि पुणु वहुविहेणु।
कयवासर भत्ति करेवि चारु मोक्कल्लिउ गउ णियपुर सुसारु।
अण्णहि दिणि मंति[1] सुसेणु लेवि जह वरतणु तह[2] संपत्त वेवि।
अक्खइ सुसेणु भो णिसुणि भाय तुहु धम्मवंतु णिरु विगय माय।
जं मइ अवराहु वि कियउ तुज्झु तं वंधव सयलु वि खमहि मज्झु।
किं खमउ णत्थि अवराहु कोवि तुह महु गुरवंधउ कहिहि सोवि।
अवराहु कवणु हउं खमिउ सव्वु इउ वयणु सुणिवि छंडेवि गव्वु।
जं चिरु विलसिउ मंत[3]वरेण तं सयलु वि अक्खिउ[4] कुमरि तेण।
तं मुणिवि विक्खणु वयण सव्वु भो वंधव पइं समु कवणु भव्वु।
तुह गव्वहीणु अकुडिल सहाउ तणु तेयइ णिज्जिय दिवसराउ।
वंधव लइ सव्वु वि रज्जभारु लइ मज्झु लच्छि पुणु पुहइ सारु।
इय वयण परोपरकरि सणेहु गउ कुमरु सुसेणु वि णियय गेहु[5]।
ता अवरहि दिणि गुणदेवि पुत्त णियतायहो अग्गइ कहइ वत्त।

2. N, दिंणु 3. A, K, N, भट्टहं 4. N, पसयइ 5. N, भग्गहउ 6. A, K, N, मुहं 7. A, K, N, सुणेपिणु 8. A, K, N, हेंडिउ 9. K, यमक्खियउ।

11. 1. K, मंत 2. A, K, N, तहं 3. N, मंतें 4. A, अकिउ 5. K, N, गेह।

वहां आकर कुमार माता-पिता के चरणों में पड़ता है, तुम्हारे प्रसाद (कृपा) से मेरे दुःख भाग गये। सज्जन लोक में संतोष रूप प्रवर्तित होते हैं। दुर्जन के मुंह में काली स्याही लगायी गई हो। प्रिय मां महोत्सव करती है जैसे मानो नूतन पुत्र होने पर धन दिया जाता है। घर में आये वरांग को सुनकर, शत्रु अपनी सेना लेकर भाग जाता है। नववधु गुणदेवी के चरण छूती है, सभी वधुओ को देखकर रानी (गुणदेवी) हर्षित होती है।

घत्ता—तब श्रेष्ठ गुण युक्त पुत्र से सम्पूर्ण चरित (अभी तक जो हुआ) पूछा जाता है। कुमार जहां-जहां घूमता रहा एवं सुख-दुःख सहन किया, वहां का सब कुछ कहता है।

11. सुषेण को क्षमा याचना

यहां पर (कंतपुरनगर) देवसेन आता है फिर उसका अनेक प्रकार से सम्मान किया जाता है, अनेक दिनों तक वरांग ने उनकी ठीक तरह आवभगत की, फिर वरांग को छोड़कर देवसेन अपने नगर को गया। एक दिन मंत्री सुषेण को लेकर जहां वरांग है, वहां पर दोनों पहुंचते हैं। सुषेण कहता है—

हे भ्राता सुनो तुम (आप) धर्मवान हो किन्तु मैं निरन्तर छलकपट करता रहा। जो मैंने तुम्हारे साथ गुनाह किया है, उन सभी के लिए हे भ्राता! मुझे क्षमा करो। क्या क्षमा? कोई भी अपराध नहीं है, तुम तो मेरे बड़े भाई कहे जाते हो, कौन अपराध है, मैं सभी को क्षमा करता हूँ।

इस प्रकार वचन सुनकर सुषेण गर्व (मान) छोड़ता है। जो मंत्रीवर दीर्घकाल से सुशोभित हुए थे, उसके बारे में भी सुषेण ने सब कुछ कुमार से कह दिया, उसे भी क्षमा करता हूँ। भो! भाई तुम्हारे समान कौन भव्य है? तुम गर्वहीन और छलकपट रहित स्वभाव के हो एवं शरीर तेज से सूर्य के प्रकाश (दिवसराउ) को जीता है। भाई राज्य का सम्पूर्ण भार ले लो एवं मेरी लक्ष्मी और भूमि भी ले लो। इस प्रकार परस्पर (एक-दूसरे से) स्नेह के वचन कहते हैं।

कुमार सुषेण अपने घर को चला गया। तब दूसरे दिन गुणदेवी का पुत्र (वरांग) अपने पिता के समक्ष रात को एक बात कहता है—हे देव! सुषेण के लिए आज ही युवराज पद दे दीजिए और वह राज्य करे। तात (पिता) कहते हैं—तुम ही सब कुछ ले लो, मेरा मान (सम्मान) कौन रखता है तो तुम रखते हो।

घत्ता—पुनः वरांग कहता है, गुप्त नहीं रखते है, मैं युवराज पद नहीं लूंगा, दूसरों की सेना को मैं वश में करूंगा, पृथ्वी पर अवगाहन करूंगा, मैं शत्रु राजा के मद (मान) को भग्न करूंगा।

www.vitragvani.com

भो देव सुसेणहो देहि अज्जु जुवरायत्तणु सो करहु रज्जु।
तायइ अक्खिउ तुह लेहि सव्वु पइं हुंतइ को उव्वहइ गव्वु।

घत्ता– पुणु वरतणु अक्खइ, गुज्झु ण रक्खइ, हउं ण लेमि जुवराय पउ।
पर चक्किय साहमि, महि अवगाहमि[6], हउं भंजमि अरिरायमउ।।११।।

12

मा अवगण्णहि वर मज्झु वाय लहु देहु सुसेणहु रज्जु ताय।
हउं णिवसमि पुरवरु करिवि इक्कु सुमणोहरु वणिसहु महि गुरुक्कु।
ता तायइ मण्णिउ वयणु सारु जं तुच्चइ तं करि तुह कुमारु।
तहि अवसरि वहु साहणु लएवि[1] जणणी–जणणुल्लय पयणवेवि।
पयणिहि विद्धिउ वणिणाहु संतु लिउ सत्थि पुणु वि कय चारु मंतु।
ते मंति चयारिवि विउल बुद्धि तहि सत्थि लइय कयणीय सुद्धि।
चल्लिउ कुमारु पहसिय मणेण पहि जंत–जंत पुणु दिट्ठु तेण।
जर पट्टणु कोवि वि णरविहीणु महि णिवडिय पासायइ वि खीणु।
तं पिच्छिवि पट्टणु तेण राय पुच्छिउ जरमंतिउ णिसुणि ताय।
इहु को पुरु सुण्णउ कवणु णामु सुमणोहरु महियलु विउलधामु।
तं णिसुणिवि पुणु कंचुयइ वुत्तु णामें अणत्तपुर गिह विचित्तु।
इह हुउ मुरारि जरसेंघ[2]याहं भंडणु रउद्दु दुण्णिवि जणाहं।
इय वयणइ तहि पुर कियउ वासु वरगेह रइय मुणिवर णिवासु।
बल चाउरंगु सहु रहिउ तित्थु वरतणु सहु सो जायउ कयत्थु।

घत्ता– तहि सालु वि रइयउ, परिहा सहियउ, तुंगु वि गोउर मंडियउ।
णिम्मिय जलवाणइ, कूवणिवाणइ, जुत्तउ अरिहि अखंडियउ।।१२।।

13

तरुवर सच्छाविय वाहियालि[1] वण–उववणणि वसहि खेयरालि।
किय हट्टम गमहि विउल लेवि कय विक्कइ वत्थ जणेहि सेवि।
महिवइ भवणइ कीयइ[2] मणोज्ज णिवसिउ तहि णत्तिउ राय भोज्ज।
हरि–करि अंतेवर सयल जुत्त चामीयर चंपय सरिस गत्त।

6. A, K, अवग्गहमि

12. 1. A, लाएवि 2. A, K, N, जरसेघयाहं

13. 1. A, वाहियाहि 2. K, कीवइ

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

12. आर्नतपुर का निर्माण

हे तात! (पिताजी) मेरी बात का तिरस्कार मत करो, शीघ्र ही सुषेण के लिए राज्य दे दीजिए। मैं एक श्रेष्ठ नगर बनाकर सुमनोहर एवं विस्तृत पृथ्वी पर वणिपति के साथ निवास करूंगा। तब पिता सभी वचनों को मानते हैं। जो उचित हो, वह कुमार तुम करो। उस अवसर पर बहुत सेना लेकर माता-पिता के चरणों में नमस्कार करके, समुद्र को चीरता हुआ आगे बढ़ता है। चार मंत्रियों को साथ में लिया, वे चारों मंत्री निर्मल विपुल बुद्धि वाले थे, उनको साथ में लेकर कार्य करता है। उपहसित मन से कुमार चलता है, रास्ते में जाते-जाते फिर उसके द्वारा एक पुराना नगर देखा गया, जहां कोई भी नहीं अर्थात् नरविहीन नगर था। महल आदि पृथ्वी पर गिर पड़े एवं क्षीण थे। राजा के द्वारा उस नगर को देखकर वृद्ध मंत्री से पूछा सुनो तात–यह खाली कौन-सा नगर है और क्या नाम है? जिसका अति उत्पन्न मनोहर पृथ्वीतल और विपुलधाम है। उसको सुनकर फिर कंचुकी बोला–इसका नाम आर्नतपुर है, जिसके घर विचित्र (सुन्दर) हैं, यहां पर कृष्ण और जरासंध हुए हैं और यहां पर दोनों का रौद्र स्वरूप युद्ध हुआ था। इस प्रकार वचनों से (जानकर पश्चात्) वहां नगर में निवास किया। श्रेष्ठघर की रचना की एवं श्रेष्ठमुनि का भी निवास बनाया, तुरंग सेना (बल) भी वहां साथ में रहती है, वरांग के साथ वह कृतार्थ हुए।

घत्ता–वहां पर घर (शाला) का निर्माण किया, नगर के चारों ओर खाई बनाई, ऊँचा नगर का दरवाजा मंडित किया, जो शत्रु की अखंडितता से युक्त था। जलपान गृह (प्याऊ) निर्मित किया, जल के लिए कुएं भी खुदवाएं।

13. कुमार के समक्ष नकुलाधिप का समर्पण

नगर का बाहरी मैदान श्रेष्ठ वृक्षों से आच्छादित है, वन-उपवन में पक्षी और भौंरे बसते हैं। एक बाजार का निर्माण किया, जहां लोग वस्तु लेने जाते हैं, लोगों की सेवा के लिए वस्त्रों का क्रय-विक्रय होता है। राजा ने मनोहारी भवनों का निर्माण किया, जहां पर राजा भोज का नाती रहता है, वह नगर घोड़े, हाथी और अन्तःपुर (रनिवास) सभी से युक्त है। कुमार का शरीर चम्पाफूल के समान है, वह अपने तेज से सूर्य (बालमित्र) को जीतता है जैसे भौंरा कमलनाल को जीतता है। जिनके सोलह वस्त्रों से विभूषित अंग हैं, उनके साथ वरांग रतिसुख पूर्वक प्रमोद करता है और वहां श्रेष्ठ नगर में निवास करता है। एक दिन एक शत्रुराजा पाप कर्म करता है। वरांग कहता है दुष्ट राजा, अतिनिकृष्ट है जिसका नाम बकुलाधिप है, इसको मैं वश में करता

www.vitragvani.com

णिय तेयइ णिज्जिय बालमित्तु[3] गइ जिय मुणाल सारंगु णित्तु[4]।
वसु–अट्ठाहरण–विहूसियंगु तह[5] सहु रइसुहु विलसइ वरंगु।
तित्थु वि पुरवर णिवसंत–संतु इक्कहि दिणि सत्तु णिवइ कयंतु।
अक्खइ हउं साहमि रायदुट्ठु णामेण कुलाहिउ अइणिकिट्ठु।
हउं वाजें हरियउ आसि जाम महु तायहो उपरि गयउ ताम।
जहि रणि जित्तियउ सुसेणु[6] भग्गु सो हउं जित्तउ कइ पायलग्गु।
तं भण्णिवि[7] को किउ दूवचंडु जज्जाहि वियक्खण जहि पयंडु।
पच्चंत णिवइ[8] महु हियइ सल्लु जण'पयडु कुलाहिउ सुहडमल्लु।
यउ भणहि[9] कइवि संगरु करेहि अह केर पडिच्छहि लत्थि देहि।
पइं उप्परि चडिउ वरंगु राउ समरिउ पियवंधव वइरभाउ[10]।
ता लेहु समप्पहि चारुवण्ण इय वयणइं लग्गिय अइ रवण्ण।
गउ दूव लेवि जो लिहिउ पत्त जाय वि पुणु अक्खिय सयलवत्त।
सो णिसुणिवि संकिउ णियमणेण बुल्लाविय णियमंतयणु तेण।

घत्ता– ता मंतु[11] करेविणु, संक धरेविणु[12], दुद्धरु मुणिवि वरंगपहु।
णिय पुत्ति लएविणु[13], गव्वु मुएविणु[14], आयउ सो मंतियहि सहु[15]।।१३।।

14

आएवि णमंसिउ राउ तेण बलवंतु वि संसिउ तहो भएण।
खम करहि देव हउं दोसवंतु तुह पायहि णिवडिउ अरिकयंतु।
ता भणइ वीरु वरतणु कुमारु मइ खमिउ सव्वु किउ दोसभारु।
महु[1] आण पडिच्छहि जीवयंतु सुहि रज्जु करहि णियपुरि वसंतु।
इय वयणइ तहो संतोसु जाउ मणि धरिय केर मुणि वलपहाउ।
पुणु धीय मणोहर दिण्ण आसु अवरु विसउ पुत्तिय दिण्ण तासु।
परसुप्पर णियड करेवि णेहु पुणु णियपुरि पत्तउ कणय देहु।
वरतणपहाउ वट्टियउ केम णहि दिणमणि णिसियर जुण्ह जेम।
साहिय महि जलणिहि सीम लेवि पुर–पट्टण–णयरइ विविह सेवि।

3. A, K, मित्त 4. A, K, N, णित्त 5. A, K, N, तहं 6. A, K, N, सुखेण 7. N, पभणिवि 8.A, K, णिवइं 9. A, K, भरणहि 10. A, K, N, वयरभाउ 11. K, मंत 12. A, K, N, धरेपिणु 13 A, K, N, लएपिणु 14. A, K, N, मुएपिणु 15. K, सहू

14. 1. A, K, N, मह

www.vitragvani.com

हूँ। जैसे मुझे अश्व के द्वारा हरण किया गया था, वैसे ही मेरे तात (पिता) के ऊपर संकट है। जिसने युद्ध जीता था और जिसके कारण सुषेण रणभूमि से भागा था, उसे मैं जीतूंगा और अनेक बार चरणों में गिराऊँगा। पश्चात् दूत को आह्वान किया और कहा–वहां जाओ, जहां वह प्रचंड बकुलाधिप है।

क्योंकि मेरे हृदय में राजा की सीमा की शल्य है। बकुलाधिप सुभट व मल्ल लोगों में विख्यात है। उससे कहो कि वह कितना भी संग्राम करे अथवा जीवन की प्रतीक्षा करे। तुम्हारे ऊपर वरांग राजा चढ़ाई करेगा और प्रियबांधव के बैरभाव के कारण युद्ध करेगा। तब वरांग ने एक पत्र (लेख) दूत को दिया, यह वचन अत्यन्त रमणीय लगते हैं। जो पत्र लिखा गया उसे दूत लेकर जाता है और जाकर सम्पूर्ण बात कहता है। उसे (दूत) सुनकर राजा अपने मन में शंकित होता है और उसके द्वारा अपने मंत्रियों को बुलाया जाता है।

घत्ता–तब मंत्रणा करके, शंका धारण कर, स्वामी-वरांगप्रभु को योद्धा जानकर, अपनी पुत्री लेकर, अर्थ छोड़कर मंत्रियों के साथ वह (बकुलाधिप) जाता है।

14. कुमार वरांग का यश

राजा के द्वारा नमस्कार किया गया एवं कहता है–हे कुमार! बलवान भी आपके भय से प्रशंसा करते हैं। हे देव! मुझ दोषी को क्षमा करें, शत्रु पाप कर्म करने पर आपके चरणों में पड़ते हैं। वह कहता है–आप वीर वरांग कुमार हो, मैंने सभी जो दोष किये हैं उन्हें क्षमा करें, मैं आपकी आज्ञा की प्रतीक्षा में जीवित हूँ।

कुमार कहता है–आप अपने नगर में रहते हुए सुख पूर्वक (सुख में) राज्य करें। इस प्रकार वचनों से उसे संतोष उत्पन्न हुआ, राजा ने यह जानकर मन में संतोष धारण किया। आशापूर्वक फिर अपनी मनोहर पुत्री को दिया एवं दूसरी विषय-सामग्री भी उस पुत्री के साथ दी। परस्पर स्नेहपूर्ण एवं सोना देकर निकट के संबंध बना करके फिर अपनी नगरी में पहुंचता है। वरांग की यशश्री किस तरह वर्द्धित होती है, जैसे आकाश में सूर्य और चन्द्रमा की ज्योत्स्ना होती है।

पृथ्वी पर समुद्र की सीमा लेकर, पुर, राज्य, नगरादि की विभिन्न प्रकार से सेवा की गई। तब सागरबुद्धि के सुन्दर देश मथुरा राज्य की भूमि भी राजा वरांग के लिए दी गई, कलिंग और विषयों की सम्यक् रिद्धि और सिद्धि भी दी गई, वणिपति ने पुत्र के लिए हिस्सा भी (भूमि का भाग) लिख दिया। मंत्री अनंत के लिए उक्त विषयक पत्र दिया, साथ ही वाराणसी का चित्र और सेना

www.vitragvani.com

ता सायरविद्धहो चारुदेसु दिण्णउ महिरायइ वरपएसु।
दिण्णउ कलेंग विसयहो सुरिद्धि वणि तणयहु लेहु भायरहो सिद्धि।
पल्लव विसयहो मंतिय अणंत वाणारसि चित्तहो सेणकंत।
अजियहो विसालपुरि दिण्ण–दिण्ण पुणु देवसेण माल वरवण्ण।

घत्ता– इय अप्पिवि देसु, विउलपएसु, करइ रज्जु महि राणउ।
अक्खलिय पयाउ, विमलसहाउ, अच्छइ माणिणि माणउ।।१४।।

15

इत्तहि णरवइ सुहु भुंजंतउ इक्क दिवसि अंतेउरि पत्तउ।
दिण्णउ आसणु तहि जि णिविट्ठउ तियगणु आइवि सयलु वयट्ठिउ।
हे पिय णिसुणहु धम्मरसायणु जिणवर भासिउ सुक्खहो भायणु।
कहहु धम्मु[1] सामिय दयसारउ सयलह जीवह दुक्ख[2] णिवारउ।
भणइ णरिंदु देवगुर तच्चइ सद्दहाणु जं किज्जइ सच्चइ।
तं जि धम्मु दहविहु पुणु अंगइ देव दोसअट्ठारह रहियउ।
गुरु जो णिग्गंथु वि तव सहियउ धम्मु सव्वजीवहु दय किज्जइ।
जिण भासिय आयमु पभणिज्जइ दिढ धरियइ दंसणु सुहयारउ।
वय–तव–संजमु सयलह सारउ एउ भणिवि जइ धम्मु पयासिउ।
पुणु सायारधम्मु तहि भासिउ
जो सावउ जिणवय परिपालयए सो जिण पडिमइ णिच्चु णिहालए।
किज्जइ जिणवरभवणु रवण्णउ अइउत्तंगु सिहरु ससि वण्णउ।
पुणु रिउरंधरंध तित्थंकर किज्जहि पडिमइ सयल सुहंकर।
करिवि पयट्ठापूय रइज्जइ वसुविहदव्वसुयंधह किज्जइ।

घत्ता– जिण पूय करंतह[3], भत्ति धरंतह[4], भवमलु सव्वु विणासए।
णरु णिरुवम सुक्खइ, लहइ असक्खइ[5], सासय सुक्ख पयासए।।१५।।

16

वरदत्तवयण वाला सुणेवि जंपइ करजोडि अणुवम देवि।
भो देव करहि पासाउ[1] इक्कु घणु छिवइ सिहरु णं गिरि गुरुक्कु।
करावहि जिणचउवीसबिंब करिवरपइट्ठ पियअहरबिंब।

---

15. 1. N, धमु 2. A, K, N, दुख 3. A, K, N, करंतहं 4. A, K, N, धरंतहं 5. A, K, N, असंक्खइं

16. 1. A, K, पसाउ

www.vitragvani.com

भी दी। जीती हुई विशालपुरी दी गई एवं फिर देवसेन की श्रेष्ठ वर्णयुक्त माला दी गई।

घत्ता–इस प्रकार देश एवं बड़े प्रदेश प्राप्त करके कुमार पृथ्वी पर राज्य करता है। अबाधित प्रताप होता है और वह निर्मल स्वभाव से युक्त होता है। सम्माननीय मानव के रूप में विद्यमान होता है।

15. कुमार द्वारा धार्मिक कथन

इस प्रकार नरपति (राजा वरांग) सुख भोगते हुए, एक दिन अंतःपुर (रनिवास) में पहुंचता है। वहाँ आसन पर बैठा हुआ था, सभी स्त्रियां भी आकर बैठती हैं। हे प्रिय! जो जरा और व्याधि का नाश करने वाला है वह धर्म की औषधि सुनाओ। जिनवर ने जिसे सुख का भाजन (पात्र) कहा है। दयायुक्त सभी जीवों के दुःख का निवारण करने वाला–हे स्वामी! सम्पूर्ण धर्म कहिए।

राजा कहता है–सर्वप्रथम देव शास्त्र गुरु के प्रति सच्चा श्रद्धान करना चाहिए, वह धर्म दशविधि अंग रूप कहा गया है, सच्चे देव अठारह (18) दोषों से रहित होते हैं। वह गुरु है जो निर्ग्रंथ, तप को सहन करते हैं एवं ईर्यासमिति पूर्वक सभी जीवों पर दया रखते हैं। जिनेन्द्र देव की वाणी आगम में कही गई है, सुखकारी सम्यग्दर्शन को दृढ़ता से धारण करना चाहिए। व्रत, तप, संयम आदि सभी धर्म को प्रकाशित करते हैं उन्हें आचार धर्म कहा गया है।

जो श्रावक जिनव्रतों का पालन करता है, उसके (नीचे वाली) जिनप्रतिमा देखी जाती है। रमणीय जिनदेव का मन्दिर बनवाना चाहिए, जिसका शिखर अत्यन्त ऊँचा और चन्द्रमा रूप वर्णित हो। फिर चौबीस तीर्थंकरों की प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा करवाना चाहिए, जो सभी के लिए कल्याणकारी है। प्रतिष्ठा करके सुगंधित अष्ट द्रव्यों से पूजा करना चाहिए।

घत्ता–जिनदेव की पूजा करते हुए, भक्ति धारण करते हुए, संसार के सभी दोषों का नाश करते हैं, मनुष्य अनुपम सुख को प्राप्त करता है, असमर्थ होने पर भी शाश्वत सुख का प्रकाश करता है।

16. मन्दिर एवं प्रतिष्ठा महोत्सव

मुनि-वरदत्त के वचन सुनकर, दोनों हाथ जोड़कर अनुपमा देवी कहती है–हे देव! एक कृपा कीजिए, आकाश छूता हुआ शिखर मानो ऊँचा पर्वत हो एवं प्रिय अधरबिम्ब चौबीस तीर्थंकरों की प्रतिमाओं की गजरथ-प्रतिष्ठा करवाईये। जिनमंदिर के बारे में वचन सुनकर, शीघ्र ही उनके द्वारा

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

सुणिऊण वयण जिणहरु विसालु लहु तेण कराविउ छुह[2] रमालु।
काराविवि पडिमइ करि पतिट्ठ वहु भवियण मेलिवि णव रइट्ठ।
पुणु दिण्णउ रायइ पवरु दाणु संघु वि मोक्कल्लिउ करि समाणु।
तहो पच्छइ पुज्ज करंतयाहं दिणि–दिणि अणवरयति सुद्धयाहं।
जिणु वंदहि भवियण तिण्णिकाल तहो चेयालइ महि धरिवि भाल।
परिवड्ढइ धम्मकुमार केम जल सिंचिउ तरु णग्गोह जेम।
जिणु वंदण–अच्चण–थुइ करेइ पुव्वज्जिय कलिमलु अवहरेइ।
हिमसिसिरवसंतइ गिंभयालि अण्णु वि वरसालइ[3] सद्दयालि।
सुह भुंजइ अंतेवर समाणु जिणधम्म कुणंतउ णयपमाणु।
कइयावि भमइ पुरि चडिवि हत्थि वरणिवकुमार वहु लेवि सत्थि।
कइया वणिकं कीला करेइ कामिणि संजुत्तउ अणुसरेइ।

घत्ता– तहि रज्जु करंतह[4], जणु पालंतह[5], अणुवम देविहि[6] सुउ जणिउ।
रायइ धणु दिण्णउ, कंचण वण्णउ, तासु सुगत्तु णामु भणिउ।।१६।।

17

पुणु दिणि–दिणि वड्ढिउ वालु केम णवणिसियर कलगुरु होइ जेम।
पुणु णंदणु जोवण–भारु पत्त लक्खणलक्खं किय चारुगत्त।
ता इत्तहिं[1] पहु इक्कहिं[2] दिणम्मि पल्लंकिय[3] सुत्तउ णिय हरम्मि।
णिसि समयहिं[4] वम्हमहुत्तकालि णयणहिं[5] पिच्छंतह दीवमालि।
हुय तिल्लहीण जुण्हा विणट्ठ पुणु पिक्खंतयह[6] सुतेउ णट्ठ।
णियकालें कवलिय दीव जाम णिव मणि जायउ णिव्वेउ ताम।
मणराउ विणट्ठउ वप्प केम दिणमणि पत्तइ तम णियरु जेम।
ता मणि चिंतइ वइ वरंगु राउ तउ चरमि घोरु करि संगचाउ।
जह दीव विणट्ठय तिल्लहीण तह णरु विहडेसइ आव खीण।

घत्ता– चिर परवलु जित्तउ, धरयलु भुत्तउ, णिच्छइ पुणु वि मरेसमि।
हो हो दुहयारउ, रज्जु आसारउ, महवयभारु धरेसमि।।१७।।

2. N, छूह 3. A, वरसारुइ 4. A, K, N,करंतहं 5. A, K, N, पालंतहं 6. K, देविहिं

17. 1. K, इत्तहिं 2. K, इक्कहिं 3. A, K, पल्लंकिय 4. K, समयहिं 5. A, णयंणहि, K, णयणहिं
6. A, K, N, पिक्खंतहं

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

श्वेत एवं रमणीक जिनमन्दिर का निर्माण करवाया गया, अपने हाथों से उसमें नवरचित जिनप्रतिमा की प्रतिष्ठा करवाते हैं, वहां पर बहुत भव्यजन एकत्र होते हैं, फिर राजा मुनिराज प्रवर को दान देते हैं, अनन्तर संघ भी हाथी की तरह वह स्थान छोड़ता है। पश्चात् वहां पर प्रतिदिन लगातार शुद्धिपूर्वक पूजा करते हैं, तीनों समय भव्यजन जिनदेव के दर्शन करने आते हैं, वह चैत्यालय पृथ्वी पर उत्कृष्टता धारण करता है। कुमार में धर्म वैसे बढ़ता जाता है जैसे जल के सींचने पर वटवृक्ष बढ़ता है। राजा जिनेन्द्र देव की वंदना, अर्चना और स्तुति करता है। पूर्वार्जित पाप कर्मों को (निर्जरा) दूर करता है। हिम, शिशिर, बसंत, ग्रीष्मकाल, वर्षा और शरदकाल (षट्‌ऋतु) में भी अंतःपुर (रनिवास) के समान सुख भोगता है। जिनधर्म को सिद्धान्तसापेक्ष नय एवं प्रमाण से किया करता है। कभी-कभी नगर में हाथी पर सवार होकर भ्रमण करता है, राजा (वरांग) के साथ बहुत से लोग चलते हैं, अनेक वणिक क्रीड़ा करते हैं और कामिणी संयुक्त होकर अनुसरण करती है।

घत्ता—वहां पर राज्य करते हुए, लोगों का पालन करते हुए अनुपमा देवी के पुत्र (उत्पत्ति) उत्पन्न होता है। राजा धन एवं सोना का दान देता है, पुत्र का नाम सुगात्र रखा गया।

17. वरांग कुमार का वैराग्य

प्रतिदिन बालक ऐसे बढ़ता है, जैसे नूतन चन्द्रमा की कलाएं बर्धित होती है, फिर पुत्र सुन्दर शरीर सहित यौवन अवस्था को प्राप्त करता है एवं अनेक लक्षणों को प्राप्त करता है। इस प्रकार एक दिन राजा अपने घर में पलंग पर सोता है, रात्रि समय ब्रह्ममुहूर्त्त काल में नेत्रों से दीप समूह को देखते हैं कि तेल का अभाव होने पर दीपक की लौ (ज्योत्स्ना) नष्ट हो गई। जैसे अपने काल में दीपक कवलित हो गया, वैसे ही राजा के मन में विरक्ति उत्पन्न हो जाती है। बेचारा! मनराग कैसे विनष्ट हुआ, जैसे सूर्य के पहुंचने पर अंधकार समूह नष्ट हो जाता है। तब वरांग मन में चिंतन करता है, परिग्रह का त्याग कर, घोर-तप धारण करूंगा। जिस प्रकार तेल के अभाव में दीपक नष्ट हो गया, उसी प्रकार मनुष्य की आयु विघटित हो जायेगी।

घत्ता—दीर्घकाल से दूसरों के बल (शत्रुबल) जीतते हैं, पृथ्वी का भोग करता है और फिर निश्चित ही मरण होगा। अरे अरे! दुःखकारक, राज्य असार है, मैं तो महाव्रत को धारण करूंगा।

18. संसार की असारता

तन, धन और यौवन युक्त अपना जीवन, संसार में सब कुछ इन्द्रधनुष की तरह क्षणभंगुर है। लावण्य, वर्ण (रंग) और परिवारजन का संयोग (सुयण) जल के बुलबुले के समान क्षणभंगुर

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

18

तणु धणु जोवणु णियजीवयव्वु सुरधणुमिव भंगुर लोयसव्वु।
लायण्णु[1] वण्णु पुणु सुयण संगु जलबुव्वु व सण्णिहु हवइ भंगु।
मायंग तुरय जंपाण–जाण विविहइ पासायइ णं विमाण।
घण छाय जेम ते विहडि जंति अह विज्जु जेम थिर णउ रहंति।
धय–चामर–छत्त विहूसणाइ सिंहासण वत्थु वि णिव सणाइ।
ते सयलु वि अद्धुव वप्प केम संज्झा रायत्तणु जाइ[2] जेम।
तिय गणु मोहें मइ भुत्तु आसि ते पुणु जाएसहि दुह पयासि।
डज्झउ इंदिय सुहु–दुहु गुरुक्कु[3] कंडू समाणु गणि मुणीहि मुक्कु।
जगि सासउ किंपि ण रहइ इत्थु जमु कवलेसइ उप्पण्ण वत्थु।
जो दिवसु उवण्ण णराहं जंति सो जमउरि पहहि पयाणु होंति।
णरु वंधिउ तरुणी मोहपासि तो विण तिप्पइ जिम सव्वगासि।
चिर हुय जगि महिवइ वलसहंत जिण–चक्कवट्टि–हलहर महंत।
ते पुण जममुहि णिवडिय णिराय अम्हह को रक्खइ धम्मराय।
इहु तणु भक्खेसइ दयविहीणु जम रुट्ठइ अइवलवंतहीणु।

घत्ता– सुहणिहि संपययर, कहि गय सुरतर, कहि गय कुलयर सिरि पवर।
कहि[4] भरहु णराहिउ, भूयलु साहिउ, कहि भुव वलिसरसमु अवर।।१८।।

19

किं अम्हारिसु कीडय समाणु कालें सुरेंदु हुइ गय वि पाणु।
जं जं दीसइ संसारि सारु तं तं हउं मण्णमि सहु असारु।
असरणु परिभमियउ जीउ आसि जलिथलि[1] णहयलि बहु दुक्खरासि।
णारय पुणु णिवसिउ दीहयाल तिरियत्तु[2] वि हुय जह[3] धीयवाल।
लइ–लइ वि मुक्क वहु विविह गत्तु सरणु वि रहियउ जर–मरण पत्तु।
जणु मरणहो वीहइ सव्वु कोवि पाविय सुहु वंछइ पुणु वि तोवि।
जरमरणु करंतह[4] कवणु सुक्ख हउं भमिउ जोणि चउरासिलक्ख।
इत्थी दव्वु वि मोहंधु जीउ परिभमिउ णिरतरउ वहि दीउ।
चउगइ संसार अवत्थ दिट्ठु जिणवयणं रसाइण विणु अणिट्ठु।
मिच्छत्तालंकिउ पावि लग्गु णउ लहइ जीउ सग्गा पवग्गु।

18. 1. A, लायणु 2. N, जोइ 3. A, कुरुक्कु 4. N, कर

19. 1. K, छलि 2. K, त्तिरि 3. K, जहं 4. K, करंतहं

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

है। हाथी, घोड़ा एवं हाथी की पालकी मानो विमान हो एवं अनेक प्रासाद (महल) वे सब आकाश में बादल की तरह विघटित हो जाते हैं अथवा जैसे बिजली स्थिर नहीं रहती है। ध्वजा, चमर और छत्र से विभूषित सिंहासन आदि वस्तुएँ एवं धान्यविशेष वे सभी वैसे अध्रुव है, जैसे रात्रि में संध्या चली जाती है। मेरे द्वारा मोहवश स्त्रियों का भोग किया गया, वे पुनः दुःख में ले जायेंगी। इन्द्रिय सुख-दुःख का नाश करके गुरुता प्राप्त करूंगा। इन्द्रिय सुख खुजली के समान है, जिसे मुनिराज जानकर मुक्त होते हैं।

यहां जग (संसार) में कोई भी उत्पन्न वस्तु शाश्वत नहीं रहती है, सभी का यमराज भक्षण करेगा। जैसे जिस दिन मनुष्य उत्पन्न होता है, वैसे ही यमपुरी के पथ में प्रस्थान भी होता है। मनुष्य यौवन रूप तरुणी के मोह-बंधन में बंधा हुआ है, सब कुछ ग्रसित करने पर भी तृप्त नहीं होता है।

प्राचीन काल में संसार में राजा, बलवान, तीर्थंकर, चक्रवर्ती, हलधर आदि महापुरुष हुए। वे सभी मृत्यु के मुख में (निरन्तर) पड़े। हमारी यमराज से कौन रक्षा करेगा? अतिबल से हीन, दयाविहीन यमराज रुष्ट होकर इस तन (शरीर) का भक्षण करेगा।

घत्ता–जिन्होंने शुभनिधि को प्राप्त किया है एवं देवता से भी श्रेष्ठ कहाँ गये? श्री प्रवर कुलकर कहाँ गये? भूमि-सहायक भरत कहाँ गये? और भुजबली समान अन्य कहां गये?

19. अशरण भावना

हमारा जीवन क्रीड़ा (खेल) के समान है। मृत्यु के द्वारा सुरेन्द्र (इन्द्र) के भी प्राण जाते हैं। जो-जो सब कुछ संसार में दिखाई देगा, वह-वह मैं असार मानता हूँ। जीव आशा में अशरण परिभ्रमण करता है, जल, थल और आकाश में अनेक दुःख–समूह को प्राप्त करता है, फिर नरक में दीर्घकाल तक निवास करता है, तिर्यंच भी होता है, विविध (अनेक) शरीर ग्रहण करता है और छोड़ता है। शरण में रहते हुए भी बुढ़ापा एवं मरण को प्राप्त करता है, सभी कोई जन्म-मरण से भयभीत रहते हैं, तो भी सुख प्राप्त करने की इच्छा करते हैं। जरा-मरण करते हुए कौन-सा सुख है, मैं चौरासी (84) लाख योनियों में भ्रमण करता हूँ।

स्त्री और धन में जीव अंधा है, निरन्तर ही अनेक दीपों में भ्रमण करता है। चतुर्गति संसार की अवस्था देखो, जिनेन्द्रदेव के वचनों की औषधि बिना सभी अनिष्ट है। मिथ्यात्व में अलंकृत होकर पाप में लगा रहता है एवं जीव स्वर्ग एवं मोक्ष को प्राप्त नहीं करता है। मरण के भय से

www.vitragvani.com

मरणहो भएण कुच्छियवि देव सरणु वि पइसइ पुणु करइ देव।
विज्जहु घरि गच्छइ भइ धरंतु महु रक्खि–रक्खि वयणइ भणंतु।
सो कें रक्खइ विज्जु वि मरेइ असरणु वि भवावलि संसरेइ।

घत्ता– किवि सुर–सुह पावइ, हय णिरु आवइ, वरदयधम्म पसायएण।
किवि णरयहु गच्छइ, वहु–दुहु पिच्छइ, तिव्व कसाय पहावएण।।१६।।

20

किवि होइ तिरिउ वहुजोणि भेय किवि हुंति मणुय सुह–दुह णिकेय।
सा कवण जोणि जा मइ ण लद्ध सो जीउ कवणु जो मइ ण खद्ध।
सा कवण माइ जहि हउं ण जाउ सो कुलु ण जो वि ण उवण्ण काउ।
सा धरणि ण जहि णउ भमिउ आसि सा णारि ण भुत्तिय ण विदुरासि।
सो हंसु ण जहि महु तणु णक्खद्धु सो वंधणु णवि जहि हउं ण वद्धु।
जगि जोणि भमंतह[1] सव्वजीव वंधव संजाया जाणि जीव।
एकल्लउ सुह–दुह लहइ[2] पाणि सरिसउ णवि चल्लइ भणहि णाणि।
कुच्छियइ कलेवरि रइ करेइ मोहंधु जीउ णवि तउ करेइ।
पावें कम्मासउ करइ णिच्चु कम्मासइ दुहु पावइ अणिच्चु।
किवि संवरु करइ वि सुद्धभाव जह संवरु तह णिज्जरसहाव।
इह इक्कु वि दुल्लहु मणुय जम्मु पुणु अण्णु वि दुल्लहु परमधम्मु।
धम्में विणु कहि पावियइ सुक्खु धम्मु वि किज्जइ जो हणइ दुक्खु।

घत्ता– तइलोय सहाव, तत्तु वि भाव, मणि चिंतिवि ता णरवरेण।
पुणु हुयउ पहाउ, रविहि पहाउ, जायउ णवर वि वित्थरेण।।२०।।

21

पुणु चेयालइ जिणु वंदेप्पिणु[1] पुत्तु सुगत्तहो सरिसउ लेप्पिणु[2]।
धम्मसेण णिव पुरइ परायउ जो महि मंडलि इक्कु वि रायउ।
णिसुणि ताय णरवइ चूडामणि हउं जिण दिक्ख लेमि जगि दिणमणि।
इय वयणइ णरेंदु गंजोलिउ हा हा पुत्तु–पुत्तु कहि भोलिउ।
करि गिहमज्झि धम्मु सायारउ जइ वरतउ दुधरू सुहयारउ।
पइं विणु को मणु महु साहारइ पइं विणु को अरिणर अवहारइ।

---

20. 1. N, भमंतहं, A, K, भगंतहं 2. A, K, लहइं

21. 1. A, K, N, वंदेपिणु 2. A, K, N, लेपिणु

www.vitragvani.com

कुत्सित देव की शरण में प्रवेश करता है और फिर देव की शरण लेता है। भय धारण कर विद्याधर के पास जाता है, मेरी रक्षा करो, रक्षा करो, कहता है। वह क्या रक्षा करता है, क्योंकि वह भी मरता है। इस संसार–समूह में सभी अशरण रूप परिभ्रमण करते हैं।

घत्ता–कुछ श्रेष्ठ दया धर्म के प्रसाद से मरकर निरन्तर देव के रूप में आकर सुख पाते हैं। कुछ-कुछ तीव्रकषाय के प्रभाव से अत्यधिक दुःख भोगते हैं और नरक में जाते हैं।

20. जीव का संसार भ्रमण

कुछ तिर्यंच योनि के बहुत से भेद में हुए, कुछ ने सुख-दुःख का घर मनुष्य योनि को प्राप्त किया। वह कौन योनि है, जिसे मैंने प्राप्त न किया हो। वह जीव कौन है, जिसे मैंने भक्षित न किया हो। वह कौन माता है, जिससे मेरा जन्म न हुआ हो। वह कुल नहीं जिसमें मेरी काया उत्पन्न न हुई हो। वह पृथ्वी नहीं जहां मैं आशा में घूमा नहीं हूँ। वह नारी नहीं जिसका भोग न किया हो और विधुर न हुआ हो। वह हंस नहीं, जिसने मेरा तन न नौंचा हो, वह बंधन नहीं, जहां मैं न बँधा हूँ। सभी जीव जग में योनियों में भ्रमण करते हुए, जानकर भी बंधन उत्पन्न करता है। अकेला ही प्राणी सुख-दुःख को प्राप्त करता है। ज्ञानी कहते हैं–साथ में कुछ भी नहीं जाता है। कुत्सित मृत शरीर में रति (कामभोग) करता है, मोह में अंधा जीव तप नहीं करता है, पाप से नित्य कर्माश्रव करता है एवं कर्माश्रव में अनित्य दुःख प्राप्त करता है। कुछ शुद्धभाव पूर्वक संवर करते हैं। जहां संवर है, वहाँ निर्जरा स्वभाव है। यह एक मनुष्य जन्म दुर्लभ है, फिर दूसरा दुर्लभ श्रेष्ठ धर्म है, धर्म के बिना सुख प्राप्त नहीं होता है, धर्म करना चाहिए जो दुःख को हनन करने वाला है।

घत्ता–श्रेष्ठ मनुष्य के द्वारा त्रैलोक का स्वभाव एवं तत्त्वों के भाव का मन में चिन्तन होता है। फिर सूर्य जैसा प्रभाव होता है और बाद में विस्तार होता है।

21. दीक्षा के लिए पिता की आज्ञा

राजा वरांग पुत्र सुगात्र को साथ लेकर चैत्यालय में जिनेन्द्रदेव के दर्शन करता है। पश्चात् राजा धर्मसेन के नगर में लौटा जो पृथ्वी पर एक ही राजा है। हे नरपति चूड़ामणि! जग में सूर्य तुल्य पिताजी सुनो–मैं जिनदीक्षा लेता हूँ। इन वचनों से सरल स्वभावी राजा व्याकुल हो जाता है, हाय-हाय पुत्र कहता है, आचारसहित धर्म घर में रहकर करो। यदि श्रेष्ठ तप दुष्कर सुखकारक

www.vitragvani.com

णउ गिण्हहि जिणदिक्ख[3] परिग्गहु पइं विणु हउं किं रहमि परिग्गहु।
ताय वयण णिसुणिवि पुणु वुच्चइ देव मज्झु महि रज्जु ण रुच्चइ।
तहि अवसरि पिय मायक्खमाविवि पुणु सयलु वि वंधव खम भाविवि।
धरवइ रज्जु देवि णियपुत्तहो जुण्णतिणुव्व रज्जु परिचत्तहो।
गहिय दिक्ख वरदत्तु णवेप्पिणु[4] वत्थाहरणइ सयल चएप्पिणु[5]।
सायरविद्धि[6] पुणु वि भवसंकिउ मंतिय सहु जिण दिक्खालंकिउ।
णिव गेहिणि णियचित्ति विरत्ती लइय दिक्ख संजय गुणपत्ती।
णिय गुरु सीसु वरंगु वि जायउ जिण तउ करइ तिसुद्ध णिरायउ।
तिणु–कंचणु समभाउ वि मण्णइ वरइंदिय सुहु मुणि अवगण्णइ।
सत्तु–मित्तु मणि सरिसउ भावइ दुद्धरु तउ करेवि तणु तावइ।

घत्ता– गिरसिहरहो अच्छइ, णिद्दण गच्छइ, गिंभयालि इम तउ करइ।
तरुतलि दिण गम्मइ, हरिरुह हम्मइ, वरसालइ जोउ वि धरइ।।२१।।

22

सीयालइ चउपहि देइ जोगु णउ धरइ कयावि ण हरिस सोउ।
किवि रहइ भयावण महिमसाणि पारणउ करइ मासावसाणी।
परमप्पउ कावइ[1] सो जि इक्कु दो आसावंधण हय गुरुक्कु ।
मुणि तिण्णिवि[2] सल्लह[3] मलिउ माणु तिण्णिवि गारवतमु हणण भाणु।
तिरयण आहूसण धरिय जेण दंडिय तिण्णिवि मणवयतणेण।
तव दड्ढिय तुरिय कसाय कट्ठ चउगइ गमणु वि रुंधिउ अणिट्ठ[4]।
णिरु पंचमहव्वय भारु लिद्धु पंचासवदारह[5] वज्ज दिद्धु।
वरपंचसमिदि पालणह[6] धीरु पंचमगइ गमु वंछइ सुवीरु।
छज्जीव दयावरु विमलबुद्धि सत्त वि भयवज्जिउ किय तिसुद्धि।
अट्ठवि मयतरु तवसिहि जालए णव विहु वंभचेरु जो पालइ।
दहविहु[7] धम्म कयावि ण छंडइ एयारह[8]गुणे अप्पउ मंडइ[9]।
पडिमइ एयारह गुण अक्खइ वारहविहु तव रसु जो भक्खइ।
तेरह[10] विहु चारित्तु वि पालइ अप्पउ झावइ चिरमलु जालइ।

3. A, K, जिण्ण° 4. A, K, N, णवेपिणु 5. A, K, N, चएपिणु 6. K, ° विधि।

22. 1. N, वकावइ 2. K, तिण्णिविं 3. K, सल्लहं 4. N, अणिट्ठु 5. A, K, N, पंचासवदारहं 6. A, K, N, पालणहं 7. K, °विहू 8. A, K, N, एयारहे 9. A, K, N, मंडए 10. N, तेरहं

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

है। तुम्हारे बिना कौन मनुष्य मेरा सहारा होगा? तुम्हारे बिना कौन नर शत्रु को दूर भगायेगा? जिन दीक्षा ग्रहण नहीं करो, तुम्हारे बिना मैं धन-दौलत आदि (परिग्रह) का क्या करूंगा? पिताजी के वचनों को सुनकर फिर कहता है–

हे देव! मुझे पृथ्वी और राज्य नहीं रुचता है। उस अवसर पर प्रिय माँ से क्षमा मांगकर, पुनः फिर सभी भाइयों से क्षमा की भावना भाकर, पृथ्वीपति (वरांग) अपने पुत्र के लिए राज्य देकर, जीर्ण तिनके की तरह राज्य का परित्याग किया। मुनिराज वरदत्त को नमस्कार कर जिनदीक्षा ग्रहण की। सभी वस्त्र और आभूषण का त्याग करता है। सागरबुद्धि भी संसार से शंकित हुआ और मंत्री के साथ जिनदीक्षा से शोभित हुआ। राजा की गुणवती पत्नियों को भी अपने चित्त में विरक्ति हुई और जिनदीक्षा लेकर संयमित हुई। अपने गुरु का शिष्य वरांग हुआ और मन, वचन और काय की शुद्धिपूर्वक जिन-तप करता है, तृण-कंचन में समभाव मानता है, मुनिराज इन्द्रिय सुख का तिरस्कार करते हैं, शत्रु एवं मित्र में समान भाव मन में रखते हैं एवं दुर्धर तप करके शरीर को तपाते हैं।

घत्ता–पर्वत के शिखर पर बैठते हैं, जहाँ निद्रा चली जाती है, ग्रीष्मकाल में ऐसे तप करते हैं। वर्षा में वृक्षों के नीचे दिन व्यतीत करते हैं और आत्मध्यान में लीन होते हैं।

22. मुनि वरांग की तपस्या

मुनि वरांग शीतकाल में चौराहे पर योग करते हैं, कभी भी हर्ष और शोक धारण नहीं करते हैं, कुछ समय भयंकर श्मशान (मरघट) की भूमि पर रहते हैं, व्रत विशेष करके माह के अन्त में पारणा करते हैं, उनका परम आत्मा ही एक स्वामी है, दो आशाबंधन (इहलोक और परलोक हित) की गुरुता का नाश करते हैं। मुनिराज तीन प्रकार की शल्य (माया, मिथ्या और निदान) को मल (दोष) मानते हैं, तीनों की बुद्धि रूप अंधकार का सम्यक्त्व रूप सूर्य से नाश करते हैं जिनके द्वारा त्रिरत्न (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र) रूप आभूषण धारण किये जाते हैं। मन, वचन और काय से दंडित होते हैं, तप से अनिष्ट कषाय का नाश किया जाता है, चतुर्गति का गमन भी रोकते हैं, निरन्तर पंच महाव्रतों में लिप्त रहते हैं एवं पंच आस्रवद्वार (मिथ्यात्व, अविरत, प्रमाद, कषाय और योग) का अभाव करते है, पांच समितियों का धैर्यता एवं सम्यक् वीरता से पालन करते हैं, पंचम गति (मोक्ष) में जाने की वांछा रखते हैं, निर्मल बुद्धिपूर्वक षट्काय जीवों की दया रखते हैं, मन, वचन और काय की शुद्धि पूर्वक सात प्रकार के भय वर्जित किया करते हैं, आठ प्रकार के मद रूपी वृक्ष को तप रूप अग्नि से जलाते हैं, नवविधि (नौ बाड़ सहित) पूर्वक ब्रह्मचर्य का

www.vitragvani.com

घत्ता– इय तउ वि तवंतउ, महि वि हरंतउ, अंतयालु जाणेप्पिणु[11]।
दिढ[12] जोउ धरेप्पिणु[13], अणसणु लेप्पिणु[14], सुक्कझाणु काएप्पिणु।।२२।।

23

पंडिय–पंडिय–मरणु करेप्पिणु[1] चउगइ दुक्खह पाणि उदेप्पिणु[2]।
गउ सव्वत्थसिद्धि सो मुणिवरु तत्थ वियाउ भुंजि होइवि णरु।
महि परिपालिवि पुणु तउ लेप्पिणु[3] णिच्छयरयणत्तय[4] वि धरेप्पिणु[5]।
पुणु सिवउरि जाएसइ सो मुणि
सायरविद्धि सिद्वि पुणु मंतिय चत्तारिवि सग्गहो गय भत्तिय।
जिणपय वरतण तिय वि मरेप्पिणु[6] अंतयालि जिणवरु समरेप्पिणु।
णियधम्माणुसारि गइ पाविय जारिसु तारिसु लद्धिय भाविय।
अण्णु वि जो जिणसासण भत्तउ सुहगइ पावइ सो मल चत्तउ।
जो समत्तसीलु वय धाराइ[7] सो भयसायर अप्पउ तारइ।
सय–पमाय–संवच्छर खीणइ पुणु सत्तग्गलसउ वोलीणइ।
वइसाहहो किण्ह वि सत्तमदिणि किउ परिपुण्णउ जो सुह महुर कुणि।
विउलकित्ति मुणिवरहु पसायं रइयउ जिणभत्तिय अणुरायं।
मूलसंघ गुणगण परियरियउ रयणकित्ति हूयउ आयरियउ।
भुवणकित्ती तहो सीसु वि जायउ खमदमवंतु वि मुणि विक्खायउ।
तसु पट्टि संपय वि णिविहिट्ठउ धम्मकित्ति मुणिवरु वि गरिट्ठउ।
तहो गुर होइ[8] विमलगुण धारउ मुणिसुविसालकित्ति तवसारउ।
सो अम्हह[9] गुरु जहि महु दिण्णिय पाइय करणबुद्धि मइ गिण्हिय।
सरपियवासउपुर सुपसिद्धउ धण–कण–कंचण–रिद्धि समिद्धउ।
वरसावडह[10] वंसु गरुयारउ जाल्हउ णाम साहु वणिसारउ।
तासु पुत्तु सूजउ दयवंतउ जिणधम्माणुरत्त सोहंतउ।
तासु पुत्त जहि कुल उद्धरियउ रणमलणामु मुणहु गुण भरियउ।
तहो लहुयउ वल्लालु वि हुंतउ जिण कल्लाणइ जत्त कुणंतउ।
पुणु तह लहुयउ ईसरु जायउ संपइ अच्छइ दयगुण रायउ।

11. A, K, N, जाणेपिणु 12. N, दृढ 13. A, K, N, धरेपिणु 14. A, K, N, लेप्पिणु ।

23. 1. A, N, करेपिणु 2. A, K, N, देपिणु 3. A, K, N, लेपिणु 4 A, N, रयण, A, रय 5. A, K, N, धरेपिणु 6. A, K, N, मरेपिणु 7. N, पालइ 8. N, हाइ 9. A, K, N, अम्हहं 10. A, K, N, वइसावडहं

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

पालन करते हैं, दस प्रकार के धर्म को कभी भी नहीं छोड़ते हैं अर्थात् हमेशा धारण करते हैं, ग्यारह प्रतिमा के गुण कहते हैं। बारह प्रकार के तप पूर्वक जिनका आहार होता है, तेरह प्रकार का चारित्र भी पालन करते हैं, आत्मा का ध्यान करके पुराने दोषों का अभाव करते हैं।

घत्ता—इस प्रकार मुनि वरांग तप को तपते हुए, पृथ्वी का निवारण करते हुए, अंत समय जानकर, योग को दृढ़ता से धारण करके, अनसन (उपवास) लेकर, शुक्लध्यान प्राप्त करते हैं।

23. मुनि वरांग का सर्वार्थसिद्धि गमन

पंडित-पंडित मरण करके, चतुर्गति के दुःख का संसारी प्राणियों को उपदेश देकर वह मुनिवर सर्वार्थसिद्धि गये। वहां विपाक (कर्म का फल) भोगकर, फिर मनुष्य होकर पृथ्वी का परिपालन करके पुनः तप लेकर, निश्चय रत्नत्रय धारण कर, पश्चात् वह मुनि शिवपुरी (मोक्ष) जायेंगे। सागरबुद्धि श्रेष्ठी और मंत्री आदि भक्ति से चारों भी स्वर्ग गये। जिनदेव के चरणों में वरांग की स्त्री भी मरण प्राप्त करके अंतकाल में जिनेन्द्र देव को स्मरण करके, अपने धर्म के अनुसार गति प्राप्त की। जैसे-तैसे भव्यता को प्राप्त किया। दूसरे भी जो जिनशासन के भक्त हैं, वह दोषों (मल) का त्यागकर शुभगति को प्राप्त करते हैं। जो सम्यक्त्व, शील और व्रतों को धारण करता है वह भवसागर से स्वयं ही तिरता है।

अलग पन्द्रह सौ वर्ष क्षीण होते हैं और फिर सौ के आगे सात कहे हैं। वैशाख कृष्ण की सप्तमी के दिन पूर्ण किया। अर्थात् संवत् 1507 में वैशाख कृष्ण की सप्तमी के दिन ग्रन्थ पूर्ण हुआ। जो सुख और मधुर खिला हुआ है।

मुनिवर विपुलकीर्ति के प्रसाद एवं जिनभक्ति के अनुराग से रचना की है, जो मूलसंघ गुणों के समूह से घिरे रहते थे, ऐसे रत्नकीर्ति आचार्य हुए, भुवनकीर्ति उनके शिष्य हुए। क्षमावान और दयावान के गुणों से मुनि व्याख्यात थे। उनके पट्ट में इस समय धर्मकीर्ति श्रेष्ठ मुनिवर बैठे हुए थे। उनके गुरु निर्मल गुणों को धारण करने वाले तप युक्त मुनि विशालकीर्ति थे। वह हमारे गुरु है, जिनसे मैंने करण बुद्धि प्राप्त की।

सरोवर प्रिय वासवपुर प्रसिद्ध है जो धन-धान्य स्वर्ण और वैभव से समृद्ध है, जिस श्रेष्ठ नगर में सावडवंश बड़ा था, उसमें जाल्हव नाम का वणिक साहू था, उसका पुत्र सुजड साहू जो दयावान और जिनधर्म में अनुरक्त रहते हुए शोभित था, उसके पुत्र जो कुल के उद्धारक थे,

www.vitragvani.com

पोल्हणु णामु चउत्थु पसिद्धउ णिय पुण्णेण दव्वु वहु लद्धउ।
इय चत्तारिवि वंधव जाया वरखंडिल्लवाल विक्खाया।
रणमलणंदणु ताल्हुय हुंतउ[11] तासु पुत्त हउं कइगुण जुत्तउ।
तेयपाल महु णामु पसिद्धउ जिणवर भत्तिवि वहुगुण लद्धउ।
दाणशीलजिणवरपय भत्तउ।

घत्ता– कम्मक्खय कारणु, मल अवहारणु, हरुह भत्तिमइ रइयउ।
जो पढइ पढावइ णियमणि भावइ येहु चरिउ रुइ[12] सहियउ।।२३।।

24

एहु सत्थु जो सुणइ सुणावइ एहु सत्थु जो लिहइ लिहावइ।
एहु सत्थु जो महि वित्थारइ सो णरु लहु चिरमल अवहारइ।
पुणु सो भवियणु सिवपुरि पावइ जहि जरमरणु ण किंपि वि आवइ।
णंदउ णरवइ महि दयवंतउ णंदउ सावय जणु वयवंतउ।
महि जिणणाहहु धम्मु पवड्ढउ खेमु सव्व जणवइ परिवड्ढउ।
कालि–कालि वर पावसु वरिसउ सव्वलोउ दयगुण उक्करिसउ।
अज्जिय मुणि वरसंघु वि णंदउ सयल कालु जिणवरु जणु वंदउ।
जं किंपि वि हीणाहिउ साहिउ हीणबुद्धि कव्वु वि णिव्वाहिउ।
तं सरसइ मायरिक्खम किज्जहु अवर वि पंडिय[1] दोसु म दिज्जहु।

घत्ता– जो णरु दयवंतउ, णिम्मलचित्तउ, णिच्चु जि जिणु आराहइ।
सो अप्पउ झाइवि, केवलु पायवि, मुत्ति रमणि सो साहइ।।२४।।

इय वरंगचरिये पंडियतेयपालविरइये। मुणिविउलकित्तिसुपासये। वरंगसव्वत्थसिद्धिगमणोणाम चउत्थसंधी–परिच्छेउ।।सं.।। संधि।।४।।

—:—

11. K, N, भणिज्जइ 12. N, त्तुइ

24. 1. K, भंडिय

www.vitragvani.com

'रणमल' नाम जानो जो गुणों से भरा था, उसके लघु भ्राता 'वल्लाल' हुए जो जिन कल्याण में लगे रहते थे, फिर उनसे छोटे ईश्वर (ईसरू) उत्पन्न हुए, वह दयागुण के राजा के रूप में अभी विद्यमान थे।

पोल्हण नाम के चौथे भाई प्रसिद्ध है, जिन्होंने अपने पुण्य से बहुत द्रव्य (धन) प्राप्त किया था। यह चारों भाई विख्यात खंडेलवाल वंश में उत्पन्न हुए। रणमल के पुत्र ताल्हुप हुए, उनका पुत्र मैं अनेक गुणों से युक्त हुआ। तेजपाल मेरा नाम प्रसिद्ध है। जिनवर की भक्ति करके अनेक गुणों (बुधगुण) को प्राप्त किया, दान, शील (आचरण) और जिनवर के चरणों का भक्त हूँ।

घत्ता—कर्मों के क्षय के कारण, दोषों को दूर करने के लिए भक्तिपूर्वक मैंने रचना की है। जो पढ़ता है और पढ़वाता है तथा रुचि सहित इस चरित्र को मन में भाता है।

24. अंतिम शिक्षा / स्वाध्याय की प्रेरणा

यह शास्त्र जो सुनता है और सुनाता है, यह शास्त्र जो लिखता है और लिखवाता है। यह शास्त्र जो पृथ्वी पर विस्तारित करता है (प्रचार-प्रसार), वह नर शीघ्र ही चिरकाल के पापबंधन को दूर करता है, फिर वह भविकजन शिवपुरी (मोक्ष) प्राप्त करता है। जहां पर जरा-मरण कभी भी नहीं आता है। पृथ्वी पर दयावान राजा आनंदित होता है, व्रतवान श्रावकजन आनंदित होते हैं। पृथ्वी पर जिनेन्द्र देव का धर्म बढ़ता है, जनपद में सभी में क्षमा बढ़ती है। समय-समय पर वारिस बरसती है, सम्पूर्ण लोक दयागुण से उल्लसित होते हैं। अजित मुनि का संघ भी आनंदित होता है। सभी काल में लोग जिनेन्द्र देव के दर्शन करते हैं। जो कोई भी हीनाधिकता सहित काव्य का निर्वाह करता है, वह सरस्वती माता मुझे क्षमा करें और अन्य पंडित जन मुझे मतिदोष दें।

घत्ता—जो नर दयावान है, निर्मल चित्तवाला, नित्य ही जिनदेव की आराधना करता है। वह अपनी आत्मा का ध्यान कर, केवलज्ञान पाकर वह मुक्ति वधु को प्राप्त करता है।

मुनि विपुलकीर्ति की कृपा से पण्डित तेजपाल विरचित इस वरांगचरित में वरांगकुमार के सर्वार्थसिद्धिगमन नाम का चतुर्थ संधि परिच्छेद समाप्त हुआ।।संधि–4।।

परिशिष्ट

(क) विशिष्ट धार्मिक शब्दावली

वरंगचरिउ में अनेक धार्मिक और दार्शनिक शब्द प्राप्त होते हैं, जो धर्म के प्रतिपादन में बहुत ही सहकारी हैं। उनका विवेचन इस प्रकार है–

अच्चण (अर्चना) (जिणु वंदण-अच्चण-थुइ करेइ) 4/16

पूजा के अर्थ में अर्चना शब्द उपयोग किया जाता है, क्योंकि महापुराण[1] में पूजा का अपरनाम अर्चना प्राप्त होता है। उसमें पूजा के अनेक पर्यायवाची दिये गये हैं, जो इस प्रकार हैं–याग, यज्ञ, क्रतु, पूजा, सपर्या, इज्या, अध्वर, मख, मह और अर्चना।

अट्ठवि मय (आठ मद) 4/22

मद का सामान्य अर्थ है–गर्व करना। मद के जैन वाङ्मय में आठ प्रकार प्रतिपादित हैं–ज्ञान, पूजा, कुल, जाति, बल, ऋद्धि, तप और शरीर। इन आठों के आश्रय से गर्व करना मद कहलाता है।[2] मुनि इन आठ मदों के त्यागी होते हैं।

अणत्थदंड (अनर्थदंड व्रत) 1/16

प्रयोजन रहित पाप बंध के कारणभूत कार्यों से विरक्त होने को अनर्थदंड व्रत कहते हैं।[3] अनर्थदंड के पांच भेद होते हैं–

(1) पापोपदेश–तीव्र पापबंध के कारणभूत कार्यों का उपदेश देना।

(2) हिंसादान–हिंसा के कारणभूत हथियारों एवं उपकरणों को देना।

(3) अपध्यान–दूसरों के प्रति बुरा विचार करना।

(4) दुःश्रुति–रागादिवर्धक खोटे शास्त्रों का सुनना।

(5) प्रमादचर्या–निष्प्रयोजन यहां-वहां घूमना, पृथ्वी खोदना, वनस्पति आदि का तोड़ना।

अहिंसा 1/10

अहिंसा का स्वरूप पूज्यपाद स्वामी[4] ने प्रतिपादित किया है कि मन, वचन, काय के संकल्प से और कृत, कारित, अनुमोदन से त्रस जीवों को जो नहीं मारता है, उस क्रिया को अहिंसा कहते

---

1. महापुराण, आ. जिनसेनकृत, 67/193, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, 1951 2. रत्नकरण्ड श्रावकाचार, श्लोक 25
3. वही, 4/74 4. सर्वार्थसिद्धि–आ. पूज्यपादकृत, भारतीय ज्ञानपीठ, बनारस, ई. 1955, 7/20/358

हैं। इसके दो भेद हैं—द्रव्य अहिंसा और भाव अहिंसा। द्रव्य अहिंसा—जीव-मात्र को न मारना और न सताना द्रव्य अहिंसा है एवं जीव मात्र के प्रति मारने और बताने का भाव भी न रखना भाव अहिंसा है।

अट्ठमि (अष्टमी)

जैन धर्म में अष्टमी एक पर्व के रूप में माना जाता है, यह शाश्वत पर्व है।

अणसणु (अनशन) 1/21

यह बाह्य तप का प्रथम भेद है। इसका अपर नाम उपवास कहा जाता है। शरीर से उपेक्षा हो जाने के कारण अथवा अपनी चेतन वृत्तियों को भोजन आदि के बन्धनों से मुक्त करने के लिए अथवा क्षुधा आदि में भी साम्यरस से च्युत न होने रूप आत्मिक बल की वृद्धि के लिए किया गया चारों प्रकार के आहारों का त्याग ही अनशन तप है।

आयरिय (आचार्य) (1/1)

साधुओं को दीक्षा-शिक्षा दायक, उनके दोष निवारक तथा अन्य अनेक गुण विशिष्ट, संघनायक साधु को आचार्य कहते हैं। जो मुनि पांच प्रकार के आचार निरतिचार पूर्वक स्वयं पालता है और इन पांचों आचारों में दूसरों को भी प्रवृत्त करता है तथा आचार का शिष्यों को भी उपदेश देता है, उसे आचार्य कहते हैं।[1] जो 36 गुण से युक्त होते हैं। जो सर्वकाल सम्बन्धी आचार को जानता है एवं योग्य आचरण करता हो और अन्य साधुओं को आचरण करवाता हो इसलिए वह आचार्य कहा जाता है।[2]

आयार (आचार) 1/11

अपनी शक्ति के अनुसार निर्मल किये गये सम्यग्दर्शनादि में जो यत्न किया जाता है, उसे आचार कहते हैं।[3] आचार के पांच भेद हैं—(1) दर्शनाचार, (2) ज्ञानाचार, (3) चारित्राचार, (4) तपाचार, (5) वीर्याचार।

इंदिय (इन्द्रिय) 1/14

इन्द्रिय का सामान्य अर्थ है—शरीर के चिह्न विशेष को इन्द्रिय कहते हैं। इन्द्रियं पांच हैं—स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण।

1. भगवती आराधना, गाथा, 419 2. मूलाचार, गाथा, 509/510 3. सागार धर्मामृत, अधि सं. 7/श्लोक 35

www.vitragvani.com

उज्झाय (उपाध्याय) 1/1

रत्नत्रय से संयुक्त जिनकथित पदार्थों के शूरवीर उपदेशक[1] और निःकांक्षित भाव सहित ऐसे उपाध्याय होते हैं।[2] बारहअंग चौदहपूर्व जो जिनदेव ने कहे हैं उनको पण्डित जन स्वाध्याय कहते हैं, जो स्वाध्याय का उपदेश करता है इसलिए वह उपाध्याय कहलाता है। उपाध्याय 25 विशेष गुणों से युक्त होते हैं, मोक्षाभिलाषी मुनियों को उपदेश एवं पठन-पाठन का कार्य करवाते हैं।

उदय (1/10)

कर्मों की फल प्रदान करने की अवस्था उदय कहलाती है या जीव के पूर्वकृत जो शुभ कर्म या अशुभकर्म उसकी चित्तभूमि पर अंकित रहते हैं, वे अपने-अपने समय पर परिपक्व दशा को प्राप्त होकर जीव को फल देकर खिर जाते हैं, इसे ही कर्मों का उदय कहते हैं।

उपसग्ग (उपसर्ग) 2/2

पूर्व जन्म का बैरी या तज्जन्म सम्बन्धी दुश्मन अपने द्वेषभाव के कारण विघ्न उत्पन्न करता है अथवा पापकर्म के फलस्वरूप अचेतन कृत विपदा उत्पन्न हो जाती है, उसे उपसर्ग कहते हैं।

कम्म (कर्म) 1/14

जो जीव को परतन्त्र करते हैं, उन्हें कर्म कहते हैं। अथवा जीव के द्वारा मिथ्यादर्शनादि परिणामों से जो किये जाते हैं व उपार्जित होते हैं वे कर्म हैं। कर्म के मुख्य दो भेद हैं–द्रव्यकर्म और भावकर्म।

द्रव्यकर्म–ज्ञानावरणादि आठ कर्मों के समूह को द्रव्यकर्म कहते हैं। जीव के जो द्रव्य कर्म हैं, वे पौद्गलिक हैं और उनके अनेक भेद हैं।

द्रव्य कर्म के आठ प्रमुख भेद हैं–1. ज्ञानावरण, 2. दर्शनावरण, 3. मोहनीय, 4. अन्तराय, 5. नाम, 6. आयु, 7. गोत्र एवं 8. वेदनीय। उक्त क्रम में प्रारंभ के चार घाति कर्म हैं एवं पश्चात् के चार अघाति कर्म हैं।

भावकर्म–जो भावकर्म हैं, वे आत्मा के चैतन्य परिणामात्मक हैं क्योंकि आत्मा से कथंचित् अभिन्न रूप से सम्बद्ध प्रतीत होते हैं और वे रागद्वेषादि रूप हैं।

कम्मासउ (कर्मों का आस्रव) 4/20

आस्रव = पुण्य पाप रूप कर्मों के आगमन द्वार को आस्रव कहते हैं। जैसे नदियों के द्वारा

1. नियमसारगाथा, गाथा–74 2. द्रव्य संग्रह, गाथा–53

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

समुद्र प्रतिदिन जल से भर जाता है, वैसे ही मिथ्यादर्शनादि स्रोतों से आत्मा में कर्म आते हैं अथवा मन, वचन एवं काय की क्रिया योग है, वही आस्रव है। आस्रव के दो भेद–1. द्रव्यास्रव, 2. भावास्रव।

1. **द्रव्यास्रव**–अपने-अपने निमित्त रूप योग को प्राप्त करके आत्म-प्रदेशों में स्थित पुद्गल कर्मभाव रूप से परिणमित हो जाते हैं, उसे द्रव्यास्रव कहते हैं। अथवा ज्ञानावरणादि कर्मों के योग्य जो पुद्गल आता है, उसको द्रव्यास्रव कहते हैं।

2. **भावास्रव**–आत्मा के जिस परिणाम से पुद्गल द्रव्य कर्म बनकर आत्मा में आता है, उस परिणाम को भावास्रव कहते हैं।

कामदेव 3/4

चौबीस तीर्थंकरों के समयों में जो अनुपम आकृति के धारक होते हैं, उन्हें कामदेव कहते हैं। ये चौबीस हैं एवं कामदेव चौथे काल में ही उत्पन्न होते हैं।

कुदेव 1/10

जो राग-द्वेष आदि अठारह दोष रूपी मल से मलिन होते हैं तथा जिनकी पहचान स्त्री, गदा, त्रिशूल, खप्पर आदि से होती है, वे कुदेव कहलाते हैं।

कुपत्त (कुपात्र) 1/17

सम्यक्त्व, शील और व्रत से रहित जीव कुपात्र है अर्थात् जो व्रत, शील और तप से सम्पन्न है, किन्तु सम्यग्दर्शन से रहित है, वह कुपात्र है।[1] उपवासों से शरीर को कृश करने वाले, परिग्रह से रहित, काम, क्रोध से विहीन परन्तु मन में मिथ्यात्व भाव को धारण करते हैं, उन जीवों को कुपात्र जानना चाहिए।

कुलयर (कुलकर) 3/4

प्रजा के जीवन का उपाय जानने से मनु तथा आये हुए पुरुषों को कुल की भांति इकट्ठे रहने का उपदेश देने से कुलकर कहलाते हैं। कुलों की व्यवस्था करने में कुशल होने से भी उन्हें कुलकर कहा जाता है।[2] प्राचीन प्राकृत ग्रन्थ तिलोयपण्णति में 14 कुलकरों का उल्लेख है–1. प्रतिश्रुति, 2. सन्मति, 3. क्षेमंकर, 4. क्षेमन्धर, 5. सीमंकर, 6. सीमंधर, 7. विमलवाहन, 8. चक्षुष्मान, 9. यशस्वी, 10. अभीचन्द्र, 11. चन्द्राभ, 12. मरुदेव, 13. प्रसेनजित और 14. नाभिराय।

1. वसुनंदी श्रावकाचार, आचार्य वसुबन्दी कृत, गाथा 223 2. महापुराण, 211–212

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

उक्त कुलकरों ने अपने समय के मानव को अनेक प्रकार से शिक्षित किया था एवं उन्हें संरक्षण प्रदान किया था।

केवलणाण (केवलज्ञान) 1/1

जो लोकालोक के समस्त पदार्थों को युगपत् जानता है। साथ ही समस्त द्रव्य और उनकी अनंतानंत पर्यायों को इन्द्रिय ज्ञान से रहित एक साथ जानता है, वह केवलज्ञान है।

चउदसि (चतुर्दशीव्रत) 1/16

जैन धर्म में चतुर्दशी एक शाश्वत पर्व के रूप में मनाया जाता है। इस दिन लोग संयम की आराधना करते हैं, साथ ही एकाशन या उपवास भी संयम की आराधना के लिए रखते हैं।

चउगइ (चतुर्गति) गति

जीव की अवस्था विशेष को गति कहते हैं, जिसके द्वारा जीव नरकादि चारों गतियों में गमन करता है, वह गति कहलाती है। गतियाँ चार होती हैं–1. मनुष्य गति, 2. तिर्यंच गति, 3. देव गति, 4. नरक गति।

चेई/चेयालउ (चैत्यालय) 3/7, 3/9

जिन प्रतिमा व उनका स्थान अर्थात् मन्दिर चैत्य व चैत्यालय कहलाते हैं। ये मनुष्यकृत और अकृत्रिम दोनों होते हैं।

छज्जीव (षट्जीव)

पांच स्थावर जीव एवं एक त्रस जीव की संज्ञा षट्जीव होती है। आगम साहित्य में इनका प्रतिपादन छज्जीव नाम से प्राप्त होता है।

जलगालणु (जलगालन) 1/15

जल में त्रस जीव पाये जाते हैं, जो सूती सफेद गाढ़े (मोटे) व दुहरे (दुपट्ट) कपड़े से छानना चाहिए। ऐसा करने पर त्रस जीव अलग हो जाते हैं। अतः पानी छानकर पीना और उपयोग में लेना चाहिए। जिस छन्ने से पानी छाना गया है, उसमें जो त्रस जीव राशि सूक्ष्म है, उसी छन्ने को पानी भरने के पात्र में सावधानी से उठाकर अथवा तिरछा कर छने जल की धीरे से धार देना चाहिए, जिससे उसकी समस्त जीवराशि बाल्टी में आ जाये। इसी जीव राशि का नाम 'जिवानी' है, इसे सावधानी पूर्वक जलाशय में पहुंचाना चाहिए। जलछन्ना 36 अंगुल लम्बा और 24 अंगुल चौड़ा होता है जो बाल्टी आदि पात्र से तिगुना होना चाहिए। छने जल की मर्यादा दो घड़ी (48 मिनिट) होती है, प्रासुक जल की मात्रा लोंग आदि डालने पर 6 घंटे होती है।

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

जिंदेउ (जिनदेव) 1/10

वरंगचरिउ में जिनेन्द्र देव के और भी पर्यायवाची प्राप्त होते है – जिनवर एवं जिण आदि। जिन का अर्थ – जिसने मोह राग-द्वेष और इन्द्रियों पर विजय प्राप्त की है, वह जिनेन्द्र है। जो वीतरागी, सर्वज्ञ और हितोपदेशी भी होते हैं।

जिणधर्म/जिणसासण (3/3)

जो जिनेन्द्र द्वारा प्रतिपादित धर्म है, उसे जिनधर्म कहते हैं और उनका अनुशासन ही जिनशासन है।

जिणगुण (जिनगुण) 1/3

पंचपरमेष्ठी में अरहंत और सिद्ध को जिन संज्ञा के रूप में कहा जाता है। अर्थात् उनके गुण ही जिनगुण है। अरहंत परमेष्ठी के 46 गुण होते हैं और सिद्ध परमेष्ठी के 8 गुण होते हैं।

जूव = जुआ (द्यूत क्रीड़ा) 1/10

वरंगचरिउ में जूव शब्द जुआ व्यसन के रूप में प्रयुक्त हुआ है। जो पैसों की बाजी लगाकर हार-जीत के खेल खेले जाते हैं, उसे जुआ कहते हैं। जैसे–तास, चौपड़, सट्टा, छकड़ी, मटका, शतरंज, लॉटरी आदि।

जोणि (योनि) 4/19

जीव जो भव (पर्याय) धारण करता है, उसे योनि कहते हैं। जैसे–जीव की मनुष्य पर्याय तो वह मनुष्य योनि है। इसप्रकार जैन वाङ्मय में 84 लाख योनियों का उल्लेख प्राप्त होता है।

णय (नय) 4/16

जिस नीति के द्वारा एकदेश विशिष्ट पदार्थ लाया जाता है, उसे नय कहते हैं।[1] नाना स्वभावों से हटाकर वस्तु को एक स्वभाव जो प्राप्त कराये, उसे नय कहते हैं।[2] ज्ञाता के अभिप्राय को नय कहते हैं। वस्तु के एक देश को ग्रहण करता है एवं अनंत धर्म वाली वस्तु के किसी एक धर्म को जानने वाले ज्ञान को नय कहते हैं। नय के मुख्य दो भेद हैं–1. द्रव्यार्थिक नय, 2. पर्यायार्थिक नय।

1. द्रव्यार्थिक–द्रव्य ही जिसका प्रयोजन है, वह द्रव्यार्थिक नय कहलाता है।

2. पर्यायार्थिक नय–पर्याय ही जिसका प्रयोजन है, वह पर्यायार्थिक नय है।

णरइ/णरय जोणि (1/10, 1/4)

1. स्याद्वाद मंजरी, श्लोक–27, परमश्रुत प्रभाव मण्डल, आगास, वि.सं. 1991
2. आलापद्धति, आचार्य देवसेनकृत, सूत्र–9

www.vitragvani.com

नरक—जो पापी जीवों को अत्यधिक दुःखों को प्राप्त कराने वाला है, वह नरक है। जो गति नरक-गति नाम-कर्म से प्राप्त होती है, उसे नरकगति या नरकयोनि कहते हैं।

णिग्गंथु (निर्ग्रन्थ) 1/10

मुनिराज का एक विशेषण निर्ग्रन्थ है। ग्रन्थ का अर्थ परिग्रह है। जो बाह्य और आभ्यन्तर ग्रंथि से विनिर्मुक्त है, वह निर्ग्रन्थ है।

णिगोय (जीवनिगोयराशि) 1/10, 1/12

निगोद का अर्थ है—नि अर्थात् अनन्तपना है, निश्चित जिनका ऐसे जीवों को 'गो' अर्थात् एक ही क्षेत्र 'द' अर्थात् देता है, उसको निगोद कहते हैं। जो निगोद जीवों को एक ही निवास दे उसको निगोद कहते हैं। जिनका निगोद ही शरीर है, उनको निगोद शरीरी या निगोद जीवराशि कहते हैं। निगोद के दो भेद हैं—नित्यनिगोद और इतर निगोद (चतुर्गति निगोद)।

नित्यनिगोद—जो कभी त्रस पर्याय को प्राप्त करने योग्य नहीं होते, वे नित्यनिगोद हैं।

इतर/अनित्य—जिन्होंने त्रस पर्याय पहले पायी थी अथवा पायेंगे, वे अनित्य-निगोद है।

तक्करु (तश्कर/चोरी)

चोरी करना व्यसन के अंतर्गत आया है। प्रयोजनवश बिना पूछे किसी की रखी हुई, भूली हुई, रास्ते में पड़ी हुई वस्तु को ग्रहण करना चोरी है।

तव (तप) 4/15, बारह विहूतव 4/22

इच्छाओं का निरोध करना तप है। विषयों से मन को दूर करने के हेतु एवं राग-द्वेष पर विजय प्राप्त करने हेतु जिन-जिन उपायों द्वारा शरीर, इन्द्रिय और मन को तपाया जाता है अर्थात् इन पर विजय प्राप्त की जाती है, वे सभी उपाय तप हैं। तप के दो भेद हैं—1. बाह्य तप, 2. आभ्यन्तर तप।

बाह्य तप के 6 भेद हैं—अनशन, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रस परित्याग, विविक्त शय्यासन एवं कायक्लेश।

आभ्यन्तर तप के 6 भेद हैं—प्रायश्चित्, विनय, वैय्यावृत्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान तप।

तस (त्रस) 1/10

जिनके त्रस नाम कर्म का उदय है, वे त्रस कहलाते हैं।[1] दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चतुःइन्द्रिय एवं पंचेन्द्रिय (संज्ञी और असंज्ञी) त्रस जीव हैं।

तिक्कशल्लु (तीन शल्य) 3/7, सल्लहि 1/10

शल्य शब्द का अर्थ है पीड़ा देने वाली वस्तु। जब शरीर में कांटा आदि चुभ जाता है तो

1. सर्वार्थसिद्धि, अध्याय—2/सूत्र—12, पृ. 124

www.vitragvani.com

शल्य कहलाता है। जिस प्रकार कांटा आदि शल्य प्राणियों को बाधाकर होती है, उसी प्रकार शरीर और मन सबकी बाधा का कारण होने से कर्मोदय जनित विकार में भी शल्य का उपचार कर लेते हैं अर्थात् उसे शल्य कहते हैं। शल्य तीन प्रकार की है—माया शल्य, निदान शल्य और मिथ्यादर्शन शल्य।[1]

1. **मायाशल्य**—माया, निकृति एवं वंचना अर्थात् ठगने की वृत्ति यह मायाशल्य है।
2. **निदान शल्य**—भोगों की लालसा निदान शल्य है।
3. **मिथ्यादर्शन**—अतत्त्वों का श्रद्धान मिथ्यादर्शन शल्य है।

तित्थंकर (तीर्थंकर) 4 /15

जो धर्मतीर्थ का उपदेश देते हैं, समवशरण आदि विभूति से युक्त होते हैं, जिन्हें तीर्थंकर नामकर्म नाम की महापुण्य प्रकृति का उदय होता है उन्हें तीर्थंकर कहते हैं। तीर्थंकर चौबीस होते हैं।

तेरहविहु चारित्तु (13 प्रकार का चारित्र)

जैन वाङ्मय में चारित्र के 13 भेद प्राप्त होते हैं, जो इस प्रकार हैं—पांच महाव्रत, पांच समिति और तीन गुप्ति।

थावर—स्थावर 1/10

जिनके स्थावर नामकर्म का उदय है, वे स्थावर कहलाते हैं।

थुत्ति (स्तुति) 1/10

स्तुति, स्तवन, वंदन, अर्चना आदि सारे शब्द गुणानुवाद के अभिव्यंजक हैं। जिनेन्द्रदेव का गुणानुवाद ही स्तुति है।

दंसणरयणु (दर्शन रतन) सम्यग्दर्शन 3/4

सातों तत्त्वों का यथार्थ श्रद्धान ही सम्यग्दर्शन है। आचार्य समन्तभद्र के अनुसार सत्यार्थ और मोक्ष के कारणभूत देव, शास्त्र और गुरु का आठ अंग सहित, तीन मूढ़ता रहित, आठ मद रहित श्रद्धान करना ही सम्यग्दर्शन है। उसके आठ अंग निम्न हैं—1. निःशंकित, 2. निःकांक्षित, 3. निर्विचिकित्सा, 4. अमूढ़दृष्टि, 5. उपगूहन, 6. स्थितिकरण, 7. वात्सल्य, 8. प्रभावना।

दहलक्खणु (धम्मुदहविहि) दशलक्षण धर्म (1/10, 4/15)

धर्म के दस प्रकार हैं—उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम शौच, उत्तम सत्य, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आकिंचन्य एवं उत्तम ब्रह्मचर्य।

दाणंतराय 2/5

1. सर्वार्थसिद्धि, अध्याय—7 / सूत्र—18, पृ. 275

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

जिसके उदय से जीव दान की इच्छा रखता हुआ भी दान न कर सके उसे दानान्तराय कर्म कहते हैं।

दाणु (दान) 1/17

स्व और पर के उपकार के लिए अपनी वस्तु का त्याग करना दान है। अथवा रत्नत्रय से युक्त जीवों के लिए अपने वित्त का त्याग करने या रत्नत्रय के योग्य साधनों के प्रदान करने की इच्छा का नाम दान है। दान के चार भेद हैं–आहारदान, औषधिदान, अभयदान और ज्ञानदान।

दिगवउ (दिग्व्रत) 1/16

पूर्वादि दिशाओं में नदी, ग्राम, नगर आदि प्रसिद्ध स्थानों की मर्यादा बाँधकर जीवन पर्यन्त उससे बाहर नहीं जाना और उसके भीतर लेन-देन करना दिग्व्रत कहलाता है।

दिसवउ (देशव्रत) 1/16

दिग्व्रत में धारण किये गए विशाल सीमा को दिवस, पक्षादि, घड़ी, घंटा, मिनिट आदि काल की मर्यादा से प्रतिदिन त्याग करना वह देशव्रत है।

दुग्गइ (दुर्गति/नरक गति)

जो प्राणी पापादि में प्रवृत्त होता है, वह दुर्गति का पात्र होता है। अर्थात् पापादि क्रियाओं से प्राप्त होने वाली गति को दुर्गति कहते हैं।

दोसअट्ठारह/दोस्सट्ठारह (3/7, 4/15)

अठारह दोषों से अरहंतदेव रहित होते हैं। वह अठारह दोष इस प्रकार है–1. जन्म, 2. बुढ़ापा, 3. प्यास, 4. भूख, 5. आश्चर्य, 6. अरति, 7. दुःख, 8. रोग, 9. शोक, 10. मद (मान), 11. मोह, 12. भय, 13. निद्रा, 14. चिन्ता, 15. स्वेद (पसीना), 16. राग, 17. द्वेष, 18. मरण।

धयवड (पंचवर्ण/ध्वजपताका) 1/3

जैन ध्वज पताका में पांच वर्ण होते हैं–हरा, लाल, पीला, सफेद, काला।

पंचणमोयारइ (पंचनमस्कार मंत्र) 1/21

जिसमें पांचों परमेष्ठी (अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु) को नमस्कार किया गया है, उसे पंचनमस्कार मंत्र कहते हैं।

पंचत्थकाय (पंचास्तिकाय)

छह द्रव्यों में कालद्रव्य को छोड़कर शेष पांच द्रव्य अस्तिकाय हैं।

पंचमगइ (पंचमगति/मोक्ष) 4/22

जहाँ पर सभी कर्मों का अभाव हो जाता है, उसे मोक्ष कहते हैं। घाति कर्म के अभाव पूर्वक अरहंत अवस्था प्राप्त होती है एवं घाति और अघाति दोनों कर्मों के अभाव पूर्वक सिद्ध अवस्था

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

प्राप्त होती है। मोक्ष का ही अपर नाम पंचमगति है।

पंचमहव्वय (पंचमहाव्रत) 4/22

मुनियों के 28 मूलगुणों में प्रथम ही पंच महाव्रत होते हैं, जो इस प्रकार हैं–1. अहिंसा महाव्रत, 2. सत्य महाव्रत, 3. अचौर्य महाव्रत, 4. ब्रह्मचर्य महाव्रत, 5. अपरिग्रह महाव्रत।

उक्त पांचों महाव्रतों के पालन के लिए हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह–इन पांचों पापों का पूरी तरह त्याग करने को पंचमहाव्रत कहते हैं।

पंचसमिदि (पंचसमिति) 4/22

ईर्या, भाषा, एषणा, आदान-निक्षेपण और उत्सर्ग–ये पांच समितियां हैं, जिनका विवेचन इस प्रकार हैं–

1. ईर्या समिति–प्रमादरहित चार हाथ जमीन देखकर चलना ईर्यासमिति है। नेत्रगोचर जीवों के समूह से बचकर गमन करने वाले मुनि के प्रथम ईर्यासमिति होती है। यह व्रतों में शुद्धता उत्पन्न करती है।

2. भाषा समिति–सदा कर्कश और कठोर वचन छोड़कर यत्नपूर्वक प्रवृत्ति करने वाले यति का धर्म कार्यों में बोलना भाषासमिति है।

3. एषणा समिति–शरीर की स्थिरता के लिए पिण्ड शुद्धिपूर्वक मुनि का आहार ग्रहण करना एषणा समिति है।

4. आदान निक्षेपण–देखकर योग्य वस्तु का रखना और उठाना आदान-निक्षेपण समिति है।

5. उत्सर्ग समिति–इसे प्रतिष्ठापन समिति भी कहते हैं। प्रासुक (जीव-जन्तु से रहित) भूमि पर मल-मूत्र छोड़ना उत्सर्ग समिति है।

पंचासवदार (पंचास्रवद्वार) 4/22

शुभ और अशुभ कर्मों के आने के द्वार को आस्रव कहते हैं। आस्रव के पांच द्वार कहे गये हैं–मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग।

पंडिय-मरणु (पंडित मरण) 4/23

मरण–अपने परिणामों से प्राप्त हुई आयु का, इन्द्रियों का और मन, वचन, काय–इन तीनों बलों का कारण विशेष के मिलने पर नाश होना मरण कहलाता है। निर्मम, निरहंकार, निष्कषाय, जितेन्द्रिय, धीर, निदान-रहित, सम्यग्दर्शन सहित जीव मरते समय आराधक होता है, उसे ही पण्डित मरण कहते हैं। यह मरण मुनि का ही होता है।

पडिमबिन्दु (प्रतिमा बिम्ब) 3/7

अनंत चतुष्टय सहित तीर्थंकर भगवान् की बाह्य एवं आभ्यन्तर परिग्रह से रहित शरीर वाली

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

ऐसी दिगम्बर प्रतिमाएँ वीतराग स्वरूप वाली होती हैं। प्रतिमा दो प्रकार की प्राप्त होती है।

अकृत्रिम प्रतिमाएँ—जिन प्रतिमाओं को न किसी ने बनाया है और न कभी विनाश स्वरूप हैं अर्थात् मेरु पर्वत, कूट-भवन-विमान व चैत्यवृक्षादि में आगम वर्णित अनादि अनिधन रूप अकृत्रिम प्रतिमाएँ होती हैं।

कृत्रिम प्रतिमाएँ—चक्रवर्ती या राजाओं तथा मनुष्यों द्वारा स्वर्ण-रजत, सप्त धातु-पाषाण व रत्नमय निर्मित प्रतिमाएँ कृत्रिम प्रतिमाएँ कहलाती हैं।

पडिहरि 3/4

प्रतिनारायण—जैन पुराण में 9 प्रतिनारायणों का उल्लेख शलाका पुरुषों के अंतर्गत किया गया है, जो इस प्रकार हैं—अश्वग्रीव, तारुक, मेरक, मधुकैटभ, निशुम्भ, बलि, प्रहरण, रावण और जरासंध। ये नौ प्रतिनारायण युद्ध में नौ वासुदेवों (नारायणों) के हाथों निज चक्रों से मृत्यु को प्राप्त होते हैं और नरक में जाते हैं।

पमाण (प्रमाण) 4/16

'प्रमीयतेऽनेनेति प्रमाणम्' अर्थात् जिसके द्वारा पदार्थ जाना जाता है, उसे प्रमाण कहते हैं। अपना और पदार्थ का निश्चयात्मक ज्ञान प्रमाण है। प्रमाण का अर्थ है प्र—प्रकर्ष से अर्थात् संशय विपर्यय आदि का निराकरण करके मीयते-जाना जाता है अर्थात् उसे प्रमाण कहते हैं। प्रमाण के दो भेद—प्रत्यक्ष और परोक्ष।

1. **प्रत्यक्ष**—स्व और पर के निश्चय करने वाले स्पष्ट; पर-निरपेक्ष ज्ञान को प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं। इसके दो भेद-सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष और पारमार्थिक प्रत्यक्ष।

2. **परोक्ष**—अस्पष्ट ज्ञान को परोक्ष कहते हैं। इसके पांच भेद हैं—स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान और आगम।

परभव (दूसरा भव) 1/13

अगला या आने वाली पर्याय/दूसरा जन्म लेना परभव कहलाता है।

परतिय/पररमणी/परवणिया (परस्त्री) 1/14

स्वविवाहित पत्नी के अलावा दूसरे पुरुषों की पत्नियां परस्त्री कहलाती हैं। ऐसे ही दूसरों की स्त्रियों के साथ गलत व्यवहार करना, पर-स्त्री सेवन कहलाता है।

परिग्गहु/परिग्गहपमाणु 1/16, 4/21

अनाप-शनाप रुपया-पैसा, धन-दौलत जोड़ना ही परिग्रह कहलाता है। धन-धान्यादि परिग्रह का परिमाण कर उससे अधिक में निस्पृहता होना इच्छा-परिमाण व्रत व परिग्रह परिमाण कहलाता है।

पुण्णु (पुण्य) 1/10

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

जीव के दया, दानादि रूप शुभ परिणाम पुण्य कहलाते हैं। यद्यपि लोक में पुण्य के प्रति बड़ा आकर्षण होता है, परन्तु मोक्ष की अभिलाषा रखने वाला जीव केवल बन्ध रूप होने के कारण इसे पाप से किसी भी प्रकार अधिक नहीं समझते। इसके प्रलोभन से बचने के लिए हमेशा इसकी अनिष्टता का विचार करते हैं, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि यह सर्वथा पाप रूप ही है। लौकिक जनों के लिए यह अवश्य ही पाप की अपेक्षा बहुत अच्छा है। यद्यपि मुमुक्षु जीवों को भी निचली अवस्था में पुण्य प्रवृत्ति अवश्य होती है पर निदान रहित होने के कारण उनका पुण्य पुण्यानुबंधी है जो परम्परा से मोक्ष का कारण है। लौकिक जीवों का पुण्य निदान व तृष्णा सहित होने के कारण पापानुबन्धी है तथा संसार में डुबाने वाला है। ऐसे पुण्य का त्याग ही परमार्थ से योग्य है।

पूय (पूजा) 1/17

अरहंत आदि के समक्ष गंध, पुष्प, धूप, अक्षतादि समर्पण करना यह द्रव्य पूजा है। साथ ही उठ करके खड़े होना, प्रदक्षिणा देना, नमस्कार करना आदि क्रियाएँ करना वचनों से अरहंतादि का स्तवन करना भी द्रव्य पूजा है। अरहंतादि के गुणों का मन से चिन्तन करना भावपूजा है।

पोसहु-उववासु (प्रोषधोपवास) 1/16

चतुर्दशी और अष्टमी के दिन सर्वदा के लिए व्रतविधान की वांछा से चार प्रकार के आहारों का त्याग करना प्रोषधोपवास है। अर्थात् पहले और आगे के दिनों में एकाशन के साथ अष्टमी और चतुर्दशी के दिन उपवास आदि करना प्रोषधोपवास कहलाता है।

बारह अणुविक्खइं (बारह अनुप्रेक्षा) 2/1

अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आस्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ एवं धर्मभावना–इन बारह भावनाओं का बार-बार चिन्तन अनुप्रेक्षाएँ हैं।

बलभद्द (बलभद्र) 3/4

सभी बलदेव निदान से रहित होते हैं और सभी बलदेव ऊर्ध्वगामी अर्थात् स्वर्ग व मोक्ष के जाने वाले होते हैं। बलदेवों का परस्पर मिलान नहीं होता है तथा एक क्षेत्र में एक ही बलदेव होता है। वह बलदेव नौ हैं–विजय, अचल, धर्म, सुप्रभ, सुदर्शन, नन्दीषेण, नन्दिमित्र, राम (पद्म) और बलराम।

भत्ति (भक्ति) 1/9

अरहंतादि के गुणों के प्रति अनुराग ही भक्ति है।

भोगोपभोग परिमाण 1/11

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

जो वस्तु भोग अर्थात् एक बार उपयोग करना जैसे भोजन आदि और जो वस्तु उपभोग अर्थात् बार-बार उपयोग करना, जैसे वस्त्रादि। उक्त भोग-उपभोग वस्तु को सीमित करना या परिमाण करना ही भोगोपभोग परिमाणव्रत है।

मंदिर 1/18

जहां पूज्य आराध्यदेव की प्रतिमाएँ विराजमान होती हैं, उसे मंदिर कहते हैं।

मइरादोस (मदिरा दोष) 1/12, मज्ज (मद्य) 1/11

महुवा गुड़ आदि को घड़े में भरकर उसको जमीन के अंदर रख देते हैं। अनेक दिनों में जब महुवादि सड़कर उनमें अनेक लटें पड़ जाती है अर्थात् त्रस जीव उत्पन्न हो जाते हैं। पुनः उसको उबालकर जो रस पदार्थ तैयार किया जाता है, उसे मद्य कहते हैं। यह मद्य त्रस जीवों का रस ही है।

मणवयणतिसुद्ध (मन, वचन, कायादि की शुद्धता) 1/14

मन, वचन एवं काय की एकरूपता ही मन, वचन और काय की शुद्धता है।

महुमज्जमंस पंचुंवराइ 1/14

मद्य, मांस, मधु और पांच उदम्बर फलों (बड़, पीपल, ऊमर, कठूमर और पाकर) का त्याग ही श्रावक के अष्टमूलगुण हैं।

मिच्छत्त (मिथ्यात्व) 4/19

विपरीत मान्यता का नाम ही मिथ्यात्व है। अर्थात् सात तत्त्वों के प्रति अयथार्थ श्रद्धान, ज्ञान और चारित्र का होना ही मिथ्यात्व है।

मिच्छा (मिथ्या/झूठ) 1/12

असत्य बोलना झूठ है।

मुणिणाह (मुनिराज) 1/9, रिसिवर 3/7, साहु (साधु) 1/1

दिगम्बर साधु का अपर नाम मुनिराज है। जो 28 मूलगुणों का निरतिचार पालन करते हैं, उन्हें साधु या मुनिराज कहते हैं।

मोह (1/10)

'दर्शनमोहनीयविपाक कलुष परिणामता मोहः' अर्थात् दर्शनमोहनीय के विपाक से जो कलुषित परिणाम होता है, वह मोह है। मोह के तीन भेद हैं—मोह, राग और द्वेष।

मंस (माँस) 1/11

दो इन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक तिर्यंच तथा मनुष्यों के शरीर रूपी कलेवर को मांस कहते हैं।

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

बिना घात के माँस प्राप्त नहीं होता है, मांस चाहे कच्चा हो या पका हुआ हो या पक रहा हो, निरन्तर उसमें त्रस जीवों की उत्पत्ति होती रहती है। अतः बुद्धिमान मनुष्यों को मांस-अण्डा कभी नहीं खाना चाहिए।

रिउ–दव्वहं (षट्‌द्रव्य) 1/10

द्रव्य छह होते हैं–जीव, पुद्‌गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। द्रव्यों का विवेचन इस प्रकार है–

जीव द्रव्य–जो चेतना गुण से युक्त होता है, उसे जीवद्रव्य कहते हैं।

पुद्‌गल द्रव्य–जो स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण वाला है, वह पुद्‌गल है।

धर्म द्रव्य–गति हेतुत्व अर्थात् जो जीवों और पुद्‌गलों को गमन में उदासीन रूप से सहायक हो, उसे धर्मद्रव्य कहते हैं। जैसे–मछली के गमन में जल सहायक होता है।

अधर्म द्रव्य–स्थिति हेतुत्व अर्थात् स्वयं ठहरते हुए जीवों और पुद्‌गलों को ठहराने में उदासीन रूप से सहायक हो उसे अधर्म द्रव्य कहते हैं। जैसे–पथिकों को ठहरने में छाया सहकारी है।

आकाश द्रव्य–अवगाहन हेतुत्व अर्थात् जो जीवादि द्रव्यों को अवकाश देता है, उसे आकाश द्रव्य कहते हैं। इसके दो भेद–लोकाकाश और अलोकाकाश।

काल द्रव्य–वर्तना हेतुत्व अर्थात् जो द्रव्यों को परिणमन में सहकारी हो, उसे कालद्रव्य कहते हैं।

रिउरिउ-सावय-वयाइ (श्रावक के बारह-व्रत)

श्रावक के बारह व्रत होते हैं–पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत।

पांच अणुव्रत–1. अहिंसाणुव्रत, 2. सत्याणुव्रत, 3. अचौर्याणुव्रत, 4. ब्रह्मचर्याणुव्रत, 5. परिग्रह परिमाणाणुव्रत।

तीन गुणव्रत–1. दिग्व्रत, 2. देशव्रत और 3. अनर्थदण्डव्रत।

चार शिक्षाव्रत–1. सामायिक, 2. प्रोषधोपवास, 3. भोगोपभोग परिमाणव्रत, 4. अतिथि संविभागव्रत।

रूद्दझाण–रौद्र ध्यान 1/16

क्रूर आशय व दूसरों को पीड़ा देने के प्रयोजन से किया जानेवाला ध्यान रौद्रध्यान है।

वंभचेरू/वंभव्वउ (ब्रह्मचर्यव्रत) 1/16

जो तीनों प्रकार की स्त्रियों को और उनके प्रतिरूप (चित्र) को माता, पुत्री और बहिन के समान देखकर एवं स्त्रीकथा आदि से निवृत्ति है, वही ब्रह्मचर्यव्रत कहलाता है।

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

वय (व्रत) 1/11

अशुभ कार्यों एवं हिंसादि पापों से निवृत्ति तथा शुभ कार्यों एवं अहिंसादि में बुद्धिपूर्वक प्रवृत्ति वही व्रत कहलाता है।

वसण (व्यसन) 1/11

लोक निन्दित बुरी आदतों को व्यसन कहते हैं। उस महापाप रूप व्यसन के सात प्रकार हैं–1. जुआ खेलना, 2. वेश्या सेवन, 3. परस्त्री सेवन, 4. चोरी करना, 5. शिकार, 6. मद्य (मदिरा) सेवन और 7. मांस खाना।

वसुविहदव्व (अष्ट द्रव्य/पूजा) 4/15

अष्टद्रव्य से जिनेन्द्र देव की द्रव्यपूजा किया करते हैं। वह अष्टद्रव्य इस प्रकार है–जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप और फल।

उपर्युक्त अष्ट द्रव्यों को पूज्य जिन प्रतिमाओं के समक्ष छन्दादि बोलकर चढ़ाया जाता है।

संग (परिग्रह) 1/10

संग का अर्थ परिग्रह है। साधु (मुनिराज) का एक विशेषण निसंग भी होता है। अर्थात् जो 24 परिग्रह से निर्गत हो गये हैं, वह निसंग है। **संग**–आसक्त होना संग/आसक्ति है।

संजमु (संयम) 4/15

'सम्यक् यमो वा संयमः' अर्थात् सम्यक् रूप से नियन्त्रण करे सो संयम। 'संजयणं संजमो'[1] अर्थात् जो सम्यक् प्रकार से नियमन करता है, वह संयम है। संयम दो प्रकार का है–1. इन्द्रिय संयम और 2. प्राणी संयम।

1. षट्काय जीवों की विराधना नहीं करना, वह प्राणी संयम है।
2. पांचों इन्द्रियों के विषयों में प्रवृत्ति न होना इन्द्रिय संयम है।

संवरु (संवर) 4/20

आस्रव निरोधः संवरः। आस्रव का निरोध संवर है अर्थात् नूतन कर्मों का आना रूक जाना संवर है। वह दो प्रकार का है–द्रव्यसंवर एवं भावसंवर। भावसंवर–संसार की निमित्त भूत क्रिया की निवृत्ति होना भावसंवर है एवं संसार की निमित्तभूत क्रिया का निरोध होने पर तत्पूर्वक होने वाले कर्म पुद्गलों के ग्रहण का विच्छेद होना द्रव्य संवर है।

सत्ततच्च (सात तत्त्व) 1/10, णववि पयत्थहं (नवपदार्थ) 1/10

तत्त्व–जो पदार्थ जिस रूप से अवस्थित है, उसका उस रूप होना, तत्त्व कहलाता है। तत्त्व के 7 भेद हैं–जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष। सात तत्त्वों के साथ पुण्य-पाप को जोड़ने से नौ पदार्थ हो जाते हैं।

---

1. निरुक्त क्रोश, पृ. 355

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

सत्तवि भय (सात-भय)

जिसके उदय से उद्वेग होता है, वह भय है।[1] भीति को भी भय कहा जाता है। सम्यग्दृष्टि सप्त भयों से रहित होता है। भय के सात भेद होते हैं–इहलोक, परलोक, अरक्षा, अगुप्ति, मरण, वेदना और आकस्मिक। सातों भयों का विश्लेषण पंडित जयचन्द्र ने समयसार की तात्पर्यवृत्ति टीका[2] में इस प्रकार किया है–

1. **इहलोक भय**–इस भव में लोगों का डर रहता है कि न जाने ये लोग मेरा क्या बिगाड़ करेंगे, यह इहलोक भय है।

2. **परलोक भय**–परलोक में न जाने क्या होगा ऐसा भय होना परलोक भय है।

3. **अरक्षा भय**–आत्मा के नाश की रक्षा के लिए अक्षमता, अत्राण भय या अरक्षा भय कहलाता है।

4. **अगुप्तिभय**–जहां गुप्त प्रदेश न हो, खुला हो, उसको अगुप्ति कहते हैं, वहां बैठने से जीव को जो भय होता है, वह अगुप्ति भय है।

5. **मरण भय**–मैं जीवित रहूँ, कभी मेरा मरण न हो अथवा दैवयोग से कभी मृत्यु न हो, इस प्रकार शरीर के नाश के विषय में जो चिन्ता होती है, वह मरण भय है।

6. **वेदना भय**–मैं निरोग हो जाऊँ, मुझे कभी भी वेदना न होवे इस प्रकार की मूर्च्छा अथवा बार-बार चिन्तवन करना वेदना भय है।

7. **आकस्मिक भय**–अकस्मात् भयानक पदार्थ से प्राणी को जो भय उत्पन्न होता है, उसे आकस्मिक भय कहते हैं।

समत्त (सम्यक्त्व) 1/10, 4/23, सद्दाहणु 3/3, सम्मदंसणरयण 1/10

सातों तत्त्वों का यथार्थश्रद्धान ही सम्यग्दर्शन है। इसी का अपर नाम सम्यक्त्व है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र – इन तीनों का एक नाम रत्नत्रय है।

समभाव (समता) 4/21

मोह राग-द्वेष से रहित होकर मध्यस्थ भाव ही समता कहलाती है। अर्थात् शत्रु और मित्र, मसान और महल, कांच और कंचन (सोना), सुख-दुःख, लाभ-अलाभ तथा इष्टानिष्ट में जो समान दृष्टि है, उसे समता या समभाव कहा जाता है।

सम्यक्खंडो (छह खण्ड) 3/6

छह खण्ड इस प्रकार होते हैं–पांच म्लेच्छ खण्ड एवं एक आर्यखण्ड।

सल्लेहण (सल्लेखना) 1/17

अच्छे प्रकार से काय और कषाय का लेखन करना अर्थात् कृश् करना सल्लेखना है।

1. सर्वार्थसिद्धि, 8/9, पृ. 301 2. समयसार, गाथा–228, कलश–155-160

www.vitragvani.com

अर्थात् बाहरी शरीर का और भीतरी कषायों का, उत्तरोत्तर काय और कषाय को पुष्ट करने वाले कारणों को घटाते हुए भले प्रकार से लेखन करना अर्थात् कृश करना सल्लेखना है।[1]

सामायउ (सामायिक) 1/16

सुख-दुःख, लाभ-अलाभ, इष्ट-अनिष्ट आदि विषमताओं में राग-द्वेष न करना बल्कि साक्षी भाव से उनका ज्ञाता द्रष्टा बने हुए समतास्वभावी आत्मा में स्थित रहना अथवा सर्व सावद्य योग से निवृत्ति सो सामायिक है।

सावय (श्रावक) 1/15

जो श्रद्धापूर्वक गुरु आदि से धर्मश्रमण करता है, वह श्रावक है।[2] श्रावक तीन प्रकार के होते हैं—पाक्षिक, नैष्ठिक और साधक।

सिखाव्वउ (शिक्षाव्रत) 1/17

जिनके प्रभाव से विशेष श्रुतज्ञान का अभ्यास हो या जिसमें मुनिव्रत पालन करने की शिक्षा मिले, उन्हें शिक्षाव्रत कहते हैं।

सिद्ध परमेष्ठी 1/1

आठ कर्मों के बन्धन को जिन्होंने नष्ट किया है, ऐसे आठ महागुणों से सहित, लोकाग्र में विराजमान हैं, जो नित्य एवं कृत-कृत्य, शान्तिमय, निरंजन आदि गुण से युक्त हो गये हैं, उन्हें सिद्ध कहते हैं।

सिवगइ (मोक्ष गति) 1/9

जहां पर जन्म, जरा, मरण, भय, संयोग, वियोग, दुःख, संज्ञा और रोगादि नहीं होते हैं, वह सिद्धगति कहलाती है।

सुक्कझाणुं (शुक्ल ध्यान) 4/22

जिसमें शुचि गुण का सम्बन्ध है, वह शुक्लध्यान है, जैसे मैल हट जाने से वस्त्र शुचि होकर शुक्ल कहलाता है, वैसे ही निर्मल गुणयुक्त आत्म परिणति भी शुक्ल है।

सुद्धभाव (शुद्धभाव) 4/20

वीतराग भाव ही शुद्धस्वभाव है।

सुहगइ (शुभगति) 1/10

शुभगति दो हैं—देव गति और मनुष्य गति।

हरि (नौ-नारायण) 3/4

नौ नारायण इस प्रकार हैं— त्रिपृष्ठ, द्विपृष्ठ, स्वयंभू, पुरुषोत्तम, पुरुषसिंह, पुरुषपुंडरीक, दत्त (पुरुषदत्त), नारायण (लक्ष्मण) और कृष्ण।

1. सर्वार्थसिद्धि, 7/22, पृ. 280 2. सागार धर्मामृत, अधि.—1, श्लोक—15-16

www.vitragvani.com

(ख) नामानुक्रमणिका

(i) वरंगचरिउ में प्राप्त आभूषणों के नाम

आहूसण (आभूषण) 4/22
कंचण 3/7
कंचुय 4/1
कर–कंगण 3/6
कुंडल 4/1, 3/19
गजमोती 3/11
णेउर–नूपुर 4/1
तिलय–बिन्दी 4/1
दाम/माला 4/1, 3/6
मणिमउड-मणिमुकुट 3/19
मुत्ताहलहार 4/1
वत्थाहरणहि 4/1

(ii) जानवरों के नाम

अलि (भौंरा) 4/1
करि (हाथी) 3/1
केसरि (सिंह) 1/20
कोल-वराह (जंगली सुअर) 1/20
तुरंगइ (घोड़ा) 4/9
दव्वीयर (सर्प) 2/8
मयगल (हाथी) 1/20
रोज्झ (नीलगाय) 1/20
वरहिण (वर्हिन/मोर) 1/20
वारणु (हाथी) 3/10
संवर (सांभर/एक राजस्थान का जंगली पशु) 3/10
सारंग (हिरण) 1/20
सफरी (शफरी/मछली) 4/1
हयवरू (घोड़ा) 3/1

(iii) शरीर अंगों के नाम

उर (ह्रदय) 3/3
अहर (अधर/ओंठ) 2/2
णयण (नेत्र) 2/2
पयोधर (स्तन) 2/2
सिर (मस्तक) 3/3

(iv) फलों के नाम

एल (इलायची) 1/4
खज्जूर (खजूर) 1/4
णरियल (नारियल) 1/4
दाडिम (अनार) 1/4
फोफल (नींबू) 1/4
माहु-लिंग (सुपारी) 1/4
लवंग (लोंग) 1/4
तंबोल (ताम्बूल) 3/2

(v) वाद्य यंत्र

झुणि (ध्वनि) 1/8
डिंडिमु (डोढ़/वाद्य विशेष) 3/13
दुंदुहि (दुंदुभि) 1/4
तूरि 1/19
मायंग (मृदंग) 4/9

(vi) उपकरण विशेष

चमरवाउ (चमरवायु) 3/5

www.vitragvani.com

छत्त (छत्र) 4/9
जंपाण (पालकी/हाथी) 3/10
धय (ध्वजा) 4/18
दीप (दीपक) 4/17

(vii) अस्त्रों के नाम

असिवर (तलवार) 3/19
आउहं (आयुध) 1/10
कुंत (भाला) 3/9
चक्क (चक्र) 3/19
चाउ (चाप) 3/17
तिसूलइ (त्रिशूल) 3/19
मुग्गर (गदा) 3/19
वाण (तीर) 3/18
सव्वल (दे) शर्बल वरछी 3/19
हलायुध 3/19

(viii) जाति विशेष

किराय (किरात) 2/6
सकूर 2/7
सवर (भील) 2/4

(ix) पात्रों के नाम एवं अन्य नाम

अंगवइ (अंगवती) राजा महेन्द्र दत्त की पुत्री और कुमार वरांग की पत्नी 1/6
अप्पडिमल्लु (अप्रतिमल्ल/हाथी नाम) 3/16
इंदसेण (इन्द्रसेन) 3/9
उवेंदुसेणु (उपेन्द्रसेन) 3/9
कप्परूक्खु (कल्पवृक्ष) 1/4
कामधेणु (कामधेनु) 3/8
कुलाहिउ, वकुलाधिपति (कुमार वरांग का शत्रु राजा) 4/3
कुसुंभराउ (कुसुंभराजा/भिल्लराज) 2/6
गुणदेवि (गुणदेवी–कुमार वरांग की माँ) 3/5
चित्तसेणु (चित्रसेन (मंत्री)) 1/6
जसोमइ (जसोमति–सिंहपुर के राजा द्विषन्तप की पुत्री) 1/6
णंदावत्तउ (एक देवविमान) 2/8
दत्तराउ (दत्तराज) 1/6
देवसेन (मंत्री) 3/9
देवसेन (राजा) (ललितपुर नगरी का राजा और वरांग का मामा) 1/6
धम्मसेण (धर्मसेन–कुमार वरांग के पिता) 3/1
धियसेण (धृतिसेन–कुमार वरांग के श्वसुर) 1/5
पंडुपुत्तु (पाण्डवपुत्र) 3/4
पियदत्ता (प्रियदत्ता–दत्तराज की पुत्री और कुमार वरांग की पत्नी 1/6
भोजरायकुल (भोजराज कुल) 3/2
मणोरम (मनोरमा–देवसेन की द्वितीय पुत्री) 4/1
मयरकेउ (मकरकेतु–मलयदेश के अधिपति) 1/6
मयसेणा (मृगसेना–वरांग की सौतेली माँ एवं सुषेण की माँ) 1/5
महेंददत्त (महेन्द्रदत्त–विंध्यपुर के राजा) 1/6
वज्जायहु (वज्रायुध–गिरिव्रज नगर का राजा और सुकेशी के पिता) 1/6
वणपालु (उद्यानपाल) 1/9
वरदत्त मुणिंद (मुनिराज वरदत्त) 4/4

www.vitragvani.com

वसुंधरि (वसुंधरा–सनत्कुमार की पुत्री और वरांग की पत्नी) 1/6

सणकुमार (सनत्कुमार–इष्टपुत्री के राजा) 1/6

सायर विद्धि (सागरबुद्धि–ललितपुर नगरी का वणिपति) 2/6

सुकेसी (सुकेशी–वज्रायुध राजा की पुत्री और वरांग की पत्नी) 1/6

सुगत्तु (सुगात्र–वरांग का पुत्र) 4/16

सुणंदा (सुनंदा–कुमार वरांग की पत्नी साथ ही पटरानी) 1/6

सुबुद्धि मंत्री (1/6)

सुसेण (सुषेण–वरांग का सौतेला भाई) 4/5

हलि (मनोरमा की सखी/सहेली/दासी) 4/3

(x) नगरों/क्षेत्र के नाम

आणत्तपुर (आर्नतपुर) 4/12

कंतपुरणयरू (कंतपुरनगर) 1/3

गिरिवज्ज (गिरिवज्र) 1/6

जमणयरि (यमपुरी) 3/3

जम्बूदीउ (जम्बूद्वीप) 1/2

पुरचक्क (चक्रपुर) 1/6

भरहखेत्त (भरतक्षेत्र) 1/3

पुरमलय (मलयपुर) 1/6

महुराउरि (मथुरापुरि) 3/9

ललिताहणयरि (ललितपुर) 3/9

वासउपुर (वासवपुर) 4/23

विणीयदेसु (विनीतदेश) 1/2

विसालपुरि (विशालपुरि) 4/14

सिंहउर (सिंहपुर) 1/6

(xi) षट् ऋतु नाम

हिम–सिसिर–वसंतइ–गिंभयालि अण्णु वि वरसालइ सद्दपालि। 4/16

1. हिम ऋतु, 2. शिशिर ऋतु, 3. बसंत ऋतु 4. ग्रीष्म ऋतु, 5. वर्षा ऋतु 6. शरद ऋतु

(xii) राज्य के अंग

सो आणिज्जइ णियय सहायहो।
देस–कोस–बल–लच्छि सहायहो।। 3/12

1. राजा 2. मंत्री 3. कोश भण्डार 4. देश 5. किला 6. मित्र 7. सैन्य

(xiii) कथा-प्रसंग

1. प्रद्युम्न की कथा–

अहवा मुयउ ण सुन्दरो, वणिगउ जहि गिरिकंदरो।
पज्जुण्णु व आवेसए जइ जीवंतउ होसइ।।3।। 3/3

2. रावण की कथा–

कहि पडिहरि दहमुह अइ पयंडु,जहि अरिवरबल किय खंडु-खंडु। 3/4

कम्में दहमुह लक्खणि धायउ। 2/1

परतिय लंपडु हटमुह जायउ, तिक्खंडइ राउणु विक्खायउ। 1/14

3. राजा यशोधर की कथा–

कम्में राउ जसोहर णडियउ, तिय मोहे सो दुग्गइ पडियउ। 2/1

4. भरत चक्रवर्ती की कथा–

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

कम्में भरहराउ जिणवर सुउ, बलवंतउ सुरकरिकरसमभुउ। 2/1

5. राजा वसु की कथा–

वसुराउ असच्चहो खयहु गउ, परदव्वु ण लिज्जर तियउ वउ। 1/16

णारय पुणु णिवसिउ दीहयाल, तिरियत्तु वि हुय जट धीयवाल।

6. चक्रवर्ती सुभौम की कथा–

चक्कवइ सुभोमु पयंडबाहु, पारद्धहो उवरि णिबद्धगाहु।। 1/13

7. द्विपायन मुनि की कथा–

छप्पंचास कोडि जादवबलु, सुररमणहं जमउरि पत्तउ खलु। 1/12

8. राजा जरासंध की कथा–

जिम आसि राय जरसिंधबलु, तिम चल्लिउ खंधारुएण। 1/10 (घत्ता)

9. द्रोपदी की कथा–

दोवइ कारणि अवरु भयावणु, कीयकु हणिउ भीमिबलवंतए।

णियबंधव तियदोस बहंतए। 1/14

परस्त्री में आसक्ति के परिणाम प्रसंग में इस कथा का उल्लेख किया गया है। वह इस प्रकार है–राजा विराट के घर जब पांडव अज्ञातवास कर रहे थे, राजा का साला कीचक द्रोपदी से अभद्र व्यवहार करता है, वह किसी तरह उसके चंगुल से छूटकर भीम को पूरी घटना सुनाती है। भीम चाल चलकर कीचक का वध कर देता है। इस प्रकार परस्त्री से छेड़खानी या अभद्र व्यवहार करने से यह दशा होती है।

10. जुआ के प्रसंग में युधिष्ठर आदि पाण्डवों की कथा–

राउ जुहिट्ठिलु बंधव सहियउ, संवच्छरबारह वणे रहियउ।। 1/11

11. चारुदत्त की कथा–

वणिसुउ णामेण जि चारुदत्तु, विट्ठइ गिह घल्लिउ दुक्ख पत्तु। 1/13

12. बलभद्र की कथा–

वरसद्धहि कंधि चडावियउ मुयउ जणद्दणु भायरेण।

सो किं बलहद्दहि पावियउ, विहियइ अइ सोयाउरेण। घत्ता, 3/3

13. शिवभूति विप्र की कथा–

सिवभूइ विप्पु लोहेण णडिउ, रयणइ णउ कप्पिय कुगइ पडिउ। 1/12

सन्दर्भ ग्रंथ-सूची

मूल ग्रंथ

1. अपभ्रंश काव्यत्रयी, जिनदत्त सूरिकृत, सम्पा. लालचन्द्र भगवानदास गाँधी, ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा, 1927.
2. अपभ्रंश व्याकरण, आचार्य हेमचन्द्रकृत, प्रो. शालिग्राम उपाध्याय, भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, 1965.
3. आदिपुराण, जिनसेनाचार्यकृत, सम्पा. पन्नालाल जैन, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण, 1988.
4. आराधना कथा प्रबन्ध, प्रभाचन्दकृत, भाषा-अनु. रमेशचन्द्र, आचार्य शान्तिसागर स्मृति ग्रन्थमाला, बुढ़ाना (उ.प्र.), 1990.
5. आराधना प्रकरण, सोमसूरि विरचित, सम्पा. जिनेन्द्र जैन/सत्यनारायण भारद्वाज, जैन अध्ययन एवं शोध-संस्थान, जबलपुर, 2002.
6. आवश्यक निर्युक्ति, आचार्य भद्रबाहुकृत, सम्पा. समणी कुसुम प्रज्ञा, जैन विश्वभारती, लाडनूँ, 2001.
7. करकंडचरिउ, मुनि कनकामर, सम्पा. हीरालाल जैन, जैन सिरीज कारंजा, (प्रथम संस्करण, 1934), भारतीय ज्ञानपीठ काशी, द्वितीय संस्करण, 1964.
8. काव्यदर्पण, विद्यावाचस्पति, सम्पा. रामदहिन मिश्र, ग्रंथमाला कार्यालय, पटना, 1960.
9. काव्यप्रकाश, आचार्य मम्मट, सं. नागेन्द्र, ज्ञान मण्डल लिमिटेड, पंचम संस्करण, वि.सं. 2031.
10. काव्यमीमांसा, राजशेखरकृत, गायकवाड़ सीरीज–1, बड़ौदा, 1924.
11. काव्यादर्श, दण्डी, अनु. ब्रजरत्नदास, श्री कमलमणि, ग्रन्थमाला, काशी.
12. काव्यालंकार, भामहकृत, चौखम्बा, संस्कृत सीरीज, वाराणसी.
13. काव्यालंकार, रुद्रटकृत, नमिसाधु टीका सहित, काव्यमाला सीरीज, बम्बई, 1909.
14. जम्बूसामिचरिउ, वीरकविकृत, सम्पा. विमल प्रकाश जैन, भारतीय ज्ञानपीठ काशी, 1966.
15. जसहरचरिउ, पुष्पदन्तकृत, सम्पा. पी.एल. वैद्य, जैन सिरीज कारंजा, 1931.
16. देशी नाममाला, आचार्य हेमचन्द विरचित, सम्पा. आर. पिशेल, भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूना, 1989.
17. णायकुमारचरिउ, पुष्पदन्तकृत, सम्पा. हीरालाल जैन, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, 1972.

www.vitragvani.com

18. परमात्म प्रकाश, जोइन्दुकृत, सम्पा. ए.एन. उपाध्ये, परमश्रुत प्रभावक मण्डल, बम्बई, 1937.
19. पउमचरिउ, स्वयंभूकृत, सम्पा. एस.सी. भायाणी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वि.सं. 1989.
20. पउमसिरिचरिउ, धाहिलकृत, सम्पा. एच.सी. भायाणी, भारतीय विद्या भवन, बम्बई, वि.सं. 2005.
21. प्राकृत पैंगलम्, सम्पा. भोलाशंकर व्यास, प्राकृत टैक्स्ट सोसायटी, वाराणसी, 1959.
22. प्राकृत व्याकरण, आचार्य हेमचन्द्रकृत, सम्पा, श्री ज्ञानमुनि महाराज, आचार्यश्री आत्माराम जैन मॉडल स्कूल, कमलानगर, दिल्ली–7, 1974, भाग 1-2.
23. पाहुड दोहा, मुनि रामसिंहकृत, सम्पा. हीरालाल जैन, जैन सिरीज, करंजा, 1933.
24. भविसयत्तकहा, धनपाल धक्कड़कृत, सम्पा. सी.डी. दलाल, गायकवाड़ ओरियण्टल सिरीज, बड़ौदा, 1923.
25. मयणपराजय चरिउ, हरिदेवकृत, सम्पा. हीरालाल जैन, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, 1962.
26. महापुराण, पुष्पदन्तकृत, मूल सम्पा. पी.एल. वैद्य, सम्पा. देवेन्द्रकुमार, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, (भाग–1, 2, 3, 4, 5), 2001.
27. मूलाचार, आचार्य वट्टकेरकृत, वसुनंदीकृत आचारवृत्ति सहित, टीकानुवाद, आर्यिका रत्न ज्ञानमतीजी, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण, 1999.
28. रत्नकरण्डक श्रवकाचार, आचार्य समन्तभद्रकृत, आचार्य प्रभाचन्द्रकृत टीकासहित, सम्पा. पन्नालाल साहित्याचार्य प्रकाशक, मुनि संघ साहित्य प्रकाशन समिति, सागर, मध्यप्रदेश, छठा संस्करण, 1998.
29. वरांगचरित, आचार्य जटासिंह नन्दिकृत, अनु. खुशालचन्द्र गोरावाला, भारतवर्षीय दिगम्बर जैन संघ, चौरासी मथुरा, 1953.
30. वरांगचरित, आचार्य जटासिंह नन्दिकृत, सम्पा. ए.एन. उपाध्ये, माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला हीराबाग, मुम्बई, 1953.
31. वाचस्पत्यम्, तारानाथ तर्क वाचस्पति, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1969.
विष्णुपुराण, गीताप्रेस, गोरखपुर.
32. स्वयंभू छन्द, सम्पा. प्रो. एच.डी. वेलणकर, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर.
33. सर्वार्थसिद्धि, आचार्य पूज्यपादकृत, सम्पा. अनुवाद फूलचंद शास्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, छठा संस्करण, 1995.
34. सावयधम्मदोहा, आचार्य देवसेनकृत, सम्पा. हीरालाल जैन, जैन ग्रन्थमाला, कारंजा.
35. साहित्य दर्पण, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र कृत, सम्पा. सत्यव्रतसिंह, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, चतुर्थ संस्करण, 1976.

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

36. सिरिवालचरिउ, कवि नरसेन विरचित, सम्पा. देवेन्द्र कुमार जैन, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 1974.

37. हरिवंश पुराण, जिनसेनकृत, सम्पा. पन्नालाल साहित्याचार्य, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली, 1962.

आधुनिक समालोचनात्मक ग्रंथ

38. उपाध्याय, बलदेव, भारतीय दर्शन, शारदा मन्दिर, बनारस, 1948.

39. कासलीवाल, कस्तूरचन्द, राजस्थान के जैन संत व्यक्तित्व एवं कृतित्व, श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, श्री महावीरजी, जयपुर, 1967.

40. कोछड़, हरिवंश, अपभ्रंश साहित्य, भारतीय साहित्य मंदिर, दिल्ली, 1956.

41. चन्द्रशेखर, तुलसी की दार्शनिक शब्दावली का सांस्कृतिक इतिहास, उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1990.

42. चटर्जी, सुनीति कुमार, भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी, शतकमल प्रकाशन, दिल्ली (प्रथम संस्करण, 1954), द्वितीय संस्करण, 1977.

43. जैन, जगदीशचन्द्र, प्राकृत साहित्य का इतिहास, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, 1985.

44. जैन, जिनेन्द्र, जैन काव्यों का दार्शनिक मूल्यांकन राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2001.

45. जैन, देवेन्द्रकुमार, अपभ्रंश और हिन्दी, राजस्थान प्राकृत भारतीय संस्थान, जयपुर, 1983.

46. जैन, देवेन्द्र कुमार, अपभ्रंश भाषा और साहित्य–भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, 1965.

47. जैन, प्रेमसुमन, प्राकृत कथा साहित्य परिशीलन, संघी प्रकाशन, जयपुर, 1992.

48. जैन, प्रेमसुमन, कुवलयमालाकहा का सांस्कृतिक अध्ययन, प्राकृत जैनशास्त्र एवं अहिंसा शोध-संस्थान, वैशाली, बिहार, 1975.

49. जैन, प्रेमसुमन, जैनधर्म की सांस्कृतिक विरासत, भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली, 2005.

50. जैन, प्रेमचन्द्र, अपभ्रंश कथाकाव्य एवं हिन्दी प्रेमाख्यानक, सोहनलाल जैनधर्म प्रचारक समिति, अमृतसर, 1973.

51. जैन, राजाराम, रइधू ग्रंथावली, जीवराज ग्रन्थमाला, सोलापुर, महाराष्ट्र.

52. जैन, राजाराम, रइधू साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन, प्राकृत जैनशास्त्र और अहिंसा शोध संस्थान, वैशाली, 1974.

53. जैन, श्रीचन्द, जैन कथाओं का सांस्कृतिक अध्ययन, रोशनलाल एन्डसन्स, जयपुर–3.

54. नाहटा, अगरचन्द आदि (सम्पा.), राजस्थान का जैन साहित्य, प्राकृत भारती, जयपुर, 1977.

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

55. तोमर, रामसिंह, प्राकृत एवं अपभ्रंश साहित्य–हिन्दी परिषद् प्रकाशन, प्रयाग विश्वविद्यालय, 1964.
56. पंत, अम्बादत्त, अपभ्रंश काव्य परम्परा एवं विद्यापति, नागरी प्राच्य संस्थान, काशी.
57. पाण्डेय, राजनारायण, महाकवि पुष्पदंत, चिन्मय प्रकाशन, चौड़ा रास्ता, जयपुर, 1968.
58. पाण्डेय, शम्भूनाथ, अपभ्रंश और अवहट्ट : एक अन्तर्यात्रा, चौखम्भा विद्याभवन, दिल्ली, 1979.
59. मिश्र, सुदर्शन, महाकवि पुष्पदंत और उनका महापुराण, प्राकृत, जैनशास्त्र और अहिंसा शोध संस्थान, वैशाली, 1987.
60. शर्मा, रामगोपाल, अपभ्रंश भाषा का व्याकरण और साहित्य, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1982.
61. शास्त्री, देवेन्द्र कुमार, अपभ्रंश भाषा और साहित्य की शोध-प्रवृत्तियां, भा. ज्ञानपीठ प्रकाशन, 1972.
62. शास्त्री, देवेन्द्र कुमार, भविसयत्तकहा तथा अपभ्रंश कथाकाव्य, भारतीय ज्ञानपीठ, 1970.
63. शास्त्री, नेमीचन्द्र, तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद्, सागर, 1974.
64. शास्त्री, नेमीचन्द्र, प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, ताराबुक एजेन्सी, वाराणसी, 1966.
65. शास्त्री, नेमीचन्द्र, भगवान् महावीर और उनकी आचार्य परम्परा, आचार्य शान्तिसागर छाणी ग्रन्थमाला, मुजफ्फरनगर (प्रथम संस्करण, 1974), द्वितीय संस्करण, 1992.
66. शास्त्री, परममित्र, सूत्रशैली और अपभ्रंश व्याकरण, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, सम्वत् 2024 ई.
शास्त्री, परमानन्द, जैन ग्रन्थ प्रशस्ति संग्रह, द्वितीय भाग, वीर सेवा मन्दिर सोसाइटी, दिल्ली, 1963.
67. शाह, अंबालाल, जैन साहित्य का वृहद् इतिहास, पार्श्वनाथ विद्या शोध संस्थान, वाराणसी, चौथा संस्करण, 1969 (भाग–5).
68. श्रीवास्तव, वीरेन्द्र, अपभ्रंश भाषा का अध्ययन, एस. चन्द्र एण्ड कम्पनी प्रा. लि., रामनगर, नई दिल्ली.
69. सहाय, राजवंश हीरा, अपभ्रंश साहित्य : परम्परा और प्रवृत्तियां, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, 1970.
70. सहाय, शिव, अपभ्रंश भाषा और व्याकरण, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 1974.
71. सांकृत्यायन, राहुल, हिन्दी काव्यधारा, किताब महल, इलाहाबाद, 1945.
72. सिंह, नामवर, हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, 1961.
73. सिंह, शिवप्रसाद, कीर्तिलता और अवहट्ट भाषा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995.
74. सोगाणी, कमलचन्द्र, अपभ्रंश अभ्यास सौरभ, अपभ्रंश साहित्य अकादमी, जैन विद्या संस्थान, महावीरजी, राजस्थान, 1996.

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

75. सोगाणी, कमलचन्द्र, अपभ्रंश : एक परिचय, अपभ्रंश साहित्य अकादमी, जैन विद्या संस्थान, महावीरजी, राजस्थान, 2000.

76. सोगाणी, कमलचन्द्र, प्रौढ़ अपभ्रंश रचना सारैभ, अपभ्रंश साहित्य अकादमी, जैन विद्या संस्थान, महावीरजी, राजस्थान, 1997.

77. सोगाणी, कमलचन्द्र, अपभ्रंश रचना सौरभ, अपभ्रंश साहित्य अकादमी, जैन विद्या संस्थान, महावीरजी, राजस्थान, 1991.

78. Mishra, Madhusudan, A Grammar of Apbhransh, Vidhyanidhi Prakashan, Delhi, 1992.

कोश ग्रन्थ

79. अपभ्रंश हिन्दी कोश, डॉ. नरेश कुमार, इन्डोविजन प्राइवेट लिमिटेड, नेहरूनगर, गाजियाबाद, उत्तरप्रदेश, 1987.

80. आदर्श हिन्दी शब्दकोश, पं. रामचन्द्र पाठक, श्री गंगा पुस्तकालय त्रिलोचन, वाराणसी, 1970.

81. एकार्थक कोश, प्रधान सम्पा. आचार्य तुलसी, युवाचार्य महाप्रज्ञ, सम्पा. समणी कुसुमप्रज्ञा, जैन विश्वभारती, लाडनूँ, 1984.

82. कुन्दकुन्द शब्दकोश, सं. उदयचन्द्र जैन, श्री दिगम्बर जैन साहित्य संस्कृति संरक्षण समिति, दिल्ली.

83. जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश (भाग–1, 2, 3, 4), जैनेन्द्र वर्णी, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली.

84. देशीशब्द कोश, प्रधान सम्पा. आचार्य तुलसी, युवाचार्य महाप्रज्ञ, सम्पा. मुनि दुलहराज, जैन विश्वभारती, लाडनूँ, 1988.

85. प्राकृत हिन्दी कोश, के.आर. चन्द्रा, प्राकृत जैन विद्याविकास फण्ड, अहमदाबाद, पार्श्वनाथ विद्या आश्रम शोध-संस्थान, वाराणसी, 1987.

86. पाइअ–सद्द-महण्णवो, हरगोविन्ददास विक्रम सेठ, प्राकृत ग्रन्थ परिषद्, वाराणसी, 1963.

87. भारतीय साहित्य शास्त्र कोश, राजवंश 'हीरा' सहाय, विहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, 1973.

88. मानक हिन्दी कोश, रामचन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग.

89. रत्नत्रय परिभाषिक शब्दकोश, गणिनी आर्यिकाश्री विशुद्धमतीजी कृत, सम्पा. प्रो. टीकमचन्द जैन, दिल्ली.

90. राजभाषा शब्द कोश, हरदेव बाहरी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1997.
विश्वलोचन, श्रीधरसेन, निर्णय सागर प्रेस, 1962.

91. संस्कृत–हिन्दी कोश, शिवराम आप्टे, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स, दिल्ली, 1973.

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.

www.vitragvani.com

92. हिन्दी पर्यायवाची कोश, भोलानाथ तिवारी, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 1999.

93. हिन्दी विश्वकोश, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 1973.

हस्तलिखित ग्रंथ-सूची

94. कैलाश श्रुतसागर ग्रन्थ सूची, आ. पद्मसागर सूरीश्वर, श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र, कोबा तीर्थ, गांधीनगर, 2003.

95. जोधपुर जैन हस्तलिखित ग्रन्थों का सूची पत्र, सेवा मंदिर रावटी, जोधपुर, खण्ड I,1988.

96. राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ-सूची, सम्पा. कस्तूरचन्द कासलीवाल, श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, श्रीमहावीरजी, जयपुर, तृतीय भाग, 1957.

97. राजस्थान के शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ-सूची (चतुर्थ भाग), सम्पा. कस्तूरचन्द कासलीवाल,

98. श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, श्रीमहावीरजी, जयपुर, 1962.

99. Catalogue of Manuscripts, L.D. Institute of Indology-Collection, Volume-V, VI,

100. Gen. Editor, Jitendra & Shah, L.D. Institute of Indology, Ahmadabad.

101. Catalogue of Sanskrit and Prakrit Manuscripts, Jesalmel Collection, General Editor, Dalsukh Malvania, L.D. Institute of Indology, Ahmadabad [First Edition, 1972].

102. Descriptive Catalogue of Manuscripts in the Bhattarkiya Granth Bhandar, Nagaur, Vol. III, By P.C. Jain, Centre for Jain Studies, University of Rajasthan, Jaipur, 1985.

103. Jain Granth Bhandars in Jaipur and Nagaur, Edited by Premchand Jain, Centre for Jain Studies, University of Rajasthan, Jaipur, 1978.

104. Jain Granth Bhandars in Rajasthan (A Thesis), By Kastoorchand Kasliwal, Shri Digambar Jain Atishaya Kshetra, Shri Mahavirji, 1967.

पत्र-पत्रिकाएँ

105. अनेकान्त, वीर सेवा मन्दिर, दिल्ली.

106. अपभ्रंशभारती, अपभ्रंश साहित्य अकादमी, श्री दिगम्बर जैन अतिशयक्षेत्र, जैन विद्या संस्थान, श्रीमहावीरजी, जयपुर.

107. जैन विद्या, जैन विद्या संस्थान, श्रीमहावीरजी, जयपुर.

108. तुलसीप्रज्ञा, जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूँ, राजस्थान.

109. प्राकृत विद्या, कुन्दकुन्द भारती, नई दिल्ली.

110. श्रमण, पार्श्वनाथ विद्यापीठ, बनारस.

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust, Mumbai.